* ओ३म्—खम्ब्रह्म *

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति ।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अर्थ—इसी एक सर्व साक्षी परमात्माको जानकर जन्म मरण से छूट सकता है । अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥ य. अ. ३१।१८ ॥

तीर्थदर्पण-पण्डाअर्पण

* जिसको *

भोजन-विचार, भिक्षा-ग्राही-कुलीन-दर्पण और
दानदर्पण ब्राह्मणअर्पण आदि
पुस्तकोंके रचयिता ।

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी
कृष्णपुरी-निवासी ।

मंत्री=गंगासालिग्राम-पुस्तकालय मथुराने
बनाया ।

श्रीमद्दयानन्दाब्द २६

प्रथमावृति १००० प्रति) (मूल्य प्रति पुस्तक १)

Printed by B. Kishanlal at his own
Bombaybhushan press Muttra.

* ओ३म्—ब्रह्म *

॥ निराकार ईश्वर अपने सामर्थ्य से सब कार्य्य करता है ॥

देखो ! श्वेताश्वतर उपनिषद् अ० ३ मं० १९ में लिखा है । कि—परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्ति रूप हाथ से सबका रचन ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं उसीको सनातन सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं । यथा—

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्य चक्षुः सशृणोत्य कर्णः ।
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

इसी आशय को लेकर श्री कविवर अनन्यजी ने कहा है—

बिन रूपहि रूप रचै सबही, बिन थाम्हन देत सर्व थुनिया ।
बिन पावन पावै न कोऊ तिन्हैं, बिन हाथन हाथ धरै दुनिया ॥
बिन नैनन दृष्टि करै सब पै, बिन कानन शब्द सुनै सुनिया ।
बिनही अनभेद अनन्य भनै, शिव शक्ति गुणान गुनै गुनिया ॥

श्री गोसांई तुलसीदासजी नेभी कहा है—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी ॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्राण बिनु बास अशेषा ॥
असस बभांति अलौकिककरणी । महिमाजासु जायनहिं बरणी

श्री दादू दयाल जी ने भी कहाहै—

हस्त पाव नाहिं सीस मुख । स्रवन नेत्र कहु कैसा ।
दादू सब देखइ सुनइ । कहइ गहइ है ऐसा ॥

दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दाऊ—त्याग,
सीतला—पाइसा—मथुरा ।

दानदर्पण—ब्राह्मणअर्पण

द्वितीय–भाग का सप्तमोऽध्याय

अर्थात्

तीर्थदर्पण–पण्डाअर्पण

जिसको

भोजन–विचार, भिक्षा–ग्राही–कुलीन–दर्पण

और दानदर्पण—ब्राह्मणअर्पण तृतीय भाग के रचयिता

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी

कृष्णपुरी–निवासी

मंत्री–गङ्गासालिग्राम–पुस्तकालय

मथुरा ने बनाया

❋ श्रीमद्दयानन्दाब्द ८२ के

प्रथमावृत्ति एक सहस्र प्रति

मूल्य—सोरठा

दर्पण तीर्थ अमोल, करिश्रम विरच्यो ग्रन्थ मैं।
रुपा १) गांठि ते खोल, देखतही लै मोल यह ॥

बाबू किशनलालके "बंबईभूषण" प्रेस मथुरा में छपा ।

सूचीपत्र ।

सूचीपत्र।

सूचीपत्र ।

* ओ३म्–खम्ब्रह्म *

॥ ईश्वर–प्रार्थना ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ यजुः० अ० ३० मं० ३ ॥

हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये जो कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हम को प्राप्त कीजिये ॥

बाबू गोविन्द दास छत्रपुर कृत ॥ ईश्वर–महिमा ॥

ईश्वर तू है पिता हमारा । रचा तुही ने सब संसारा ॥
दीनों का प्रति पालक है तू । दुष्ट जनों का घालक है तू ॥ १ ॥
एक तुही है सच्चा सांई । नहीं दूसरा तेरी नाईं ॥
तेरा एक भरोसा सच्चा । और भरोसा सबका कच्चा ॥ २ ॥
बैठा बैठा बस पर्दा से । तू करता है अजब तमासे ॥
जिसको आज रुलाताहै तू । प्रातहि उसे हँसाता है तू ॥ ३ ॥
पतझड़ में तू पत्ते झारै । फिर वसन्त में नये निकारै ॥
ज्योंहीं चिरिया पंखगिरावे । ताके तुरतै फेर जमावे ॥ ४ ॥
बच्चा नहीं जन्मने पाता । क्षीरहु मातस्तन में आता ॥
प्रातकाल नहिं होने पावे । रोज़ी का तू ठीक लगावे ॥ ५ ॥
खान पान जिसका है जैसा । पहुँचाता है उस को वैसा ॥
जो मरालगण मोती खावैं । तो अपनी रुचि भरिवे पावैं ॥ ६ ॥
हाथी को मन भर देता है । चींटी की भी सुधि लेता है ॥
जल थल पाहन में रहते हैं । विथा भूखकी नहिं सहते हैं ॥ ७ ॥
ग़रज़ शाम तक सारे प्राणी । पा लेते हैं दाना पानी ॥
दाना पानी क्यों नहिं पावैं । तेरा नाम विश्वम्भर गावैं ॥ ८ ॥
ऐसी तेरी बात न कोई । जो बिन बुद्धिमत्ता के होई ॥
इसको यह उसको वह दीन्हा । सबका भाग बराबर कीन्हा ॥ ९ ॥
जिसको विद्या दान दियाहै । उसे नहीं धनवान कियाहै ॥
अरुजिसकोधनदानकियाहै। उसे न विद्या दान दिया है ॥१०॥

रूपवान की नारि कुरूपा । अरु कुरूप की नारि स्वरूपा ॥
जाको तू परिवार दियो है । ताको नहिं धनवान कियो है ॥११॥
गज की गरदन लघु दरसाई । तो तू लांबी सूंड़ लगाई ॥
टांग ऊँट की लम्बी कीन्हीं । लम्बी ग्रीवा ताप्रकारि दीन्हीं ॥१२॥
बाघों से रक्षा करने को । धावन शक्ति दई हिरने को ॥
अजगर को जो अचल बनाया । श्वास से चितिन भोजन पाया ॥१३॥
तू दिन में सबको दिखरावै । पर उलूक को नहीं लखावै ॥
सो बदलो यहि भांति चुकावे । अंधियारे में ताहि लखावे ॥१४॥
ऐसी प्रभु तेरी प्रभुताई । जग में सबको परे लखाई ॥
प्रगट हमें जो दुःख दरसाता । वही अन्त में सुख सरसाता ॥१५॥
जो नर सज़ा नहीं पाते हैं । तो वे तुझे भूल जाते हैं ॥
इससे तू दुःख का मिस लेकर । तिन्हें चितावे ठोकर देकर ॥१६॥
याविधि तू है त्रिभुवन त्राता । निद्रित को है अवशि जगाता ॥
जै जै बोलो जगत पिता की । त्रिभुवन के कर्त्ता धर्त्ता की ॥१७॥

* महर्षि-महिमा *

उपज्यो दण्डी छिपे पाखण्डी, डरे हैं घमण्डी धूर्त्त अन्याई ॥
विद्या पाकर निकला दिवाकर, तिमिर हटाकर ज्योति दिखाई ॥
आये हैं स्वामी दयानन्द नामी, गर्जे सभा में सिंह की नाईं ॥
सत्य का मंडन दम्भ का खंडन, कर पाप दलक की धूल उड़ाई ॥
डरे हैं प्रमादी अनीश्वर वादी, पौराणिक दें राम दुहाई ॥
बड़े२ नास्तिक हो कर आस्तिक, हाथ जोड़ आये शरणाई ॥
कर शास्त्रार्थ रच सत्यार्थ, सत्योपदेशों की धूम मचाई ॥
लोकलोकान्तर मत मतान्तर, कर न सका कोई उनसे लड़ाई ॥
देश देशांतर द्वीप द्वीपांतर, मानचुके उनकी पण्डिताई ॥
वेदों के बल से युक्ति प्रबल से, कलियुग की काया पलटाई ॥
तप अखण्ड से तेज प्रचण्ड से, रिपुअन की छतियां धड़काई ॥
योगीन्द्र महर्षि आत्मदर्शी, दिग्विजय जिनके हिस्से में आई ॥
अमीचन्द ऐसा होना कठिन है, धर्म्म अवलम्बी वेद अनुयाई ॥
कष्ट उठाये नहीं घबराये; धर्म्म न हारा यदि विष खाई ॥

॥ जैजै गंगा सालिगराम ॥

विद्या बुद्धि धर्म के धाम । ईश्वर पद प्रेमी अभिराम ॥
सरल प्रकृति शुभ गुण गण ग्राम । जैजै गङ्गा सालिगराम ॥ १ ॥
पुत्र आप का ही कहलाय । हूं मैं मान प्रतिष्ठा पाय ॥
बिगड़े नहीं जगत् में नाम । जै जै गङ्गा सालिगराम ॥ २ ॥
शुचिकर प्रेम पयोनिधि आप । सुनलीजै यह मधुरालाप ॥
अपना जान बनाओ काम । जै जै गङ्गा सालिगराम ॥ ३ ॥
यद्यपि वर्त्तमान् जग मांहि । देखे जाते हो अब नांहि ॥
तौ भी तुम से प्रीति मुदाम । जै जै गङ्गा सालिगराम ॥ ४ ॥
धर्म कर्म संयम व्रत नेम । जीवन भरकर खूब सप्रेम ॥
पहुंचे हो सीधे सुरधाम । जै जै गङ्गा सालिगराम ॥ ५ ॥
भेंट आप के किया सहर्ष । अहो! तीर्थ-दर्पण इसवर्ष ॥
रहै अनुग्रह आठों याम । जै जै गङ्गा सालिगराम ॥ ६ ॥

श्रीमती तोप कुमारी—देवी जी—चहँडौली ॥

निर्म्माता मम तनु धन धाम । निष्प्रह निष्प्रपंच निष्काम॥
ज्ञान परायण गुण गण ग्राम । जै जै गंगा सालिगराम ॥१॥
त्यागन कर पूरब वपु गेह । अवनि अवतरे हमरे नेह ॥
प्रेम पयोनिधि पूरण काम । जै जै गंगा सालिगराम ॥२॥
प्रथम कुक्षि में वासा दीन्ह । प्रकटत लालन पालन कीन्ह ॥
शिक्षा दिक्षा दी निशि याम । जै जै गंगा सालिगराम ॥३॥
पुन सुत नेह नेह हित त्याग । दाम उदर बांधी हित लाग॥
दामोदर राख्यो मम नाम । जै जै गंगा सालिगराम ॥४॥
कृपा प्रहार न्याय अन्याय । हित अनहित पुन भायअभाय॥
प्रकट गुप्त सब हितकर याम । जै जै गंगा सालिगराम ॥५॥
गंग मातु पितु सालिगराम । मथुरा वासी सुखमा धाम ॥
चतुर्वेदि दामोदर नाम । जै जै गंगा सालिगराम ॥६॥

श्री मान् पण्डित गणेशीलाल जी शर्म्मा—मथुरा ॥

* ओ३म्–खम्ब्रह्म *

॥ धन्यवाद और आशीर्वाद ॥

१–सब से प्रथम मैं ईश्वर–सच्चिदानन्दस्वरूप–सर्वशक्तिमान–सर्वाधार –सर्वेश्वर-सर्वव्यापक–सर्वान्तरयामी–निराकार–निर्विकार–– न्यायकारी –दयालु–अजन्मा-अनन्त-अनादि–अनुपम–अजर–अमर–अभय–नित्य– पवित्र–परब्रह्म–परमेश्वर–परमात्माकोअनेकानेक धन्यवाद देता हूं कि जिसने मुझको सब प्रकार के सुख दिये हुए हैं ॥

२–द्वितीय महर्षि दयानन्द को अनेक धन्यवाद देता हूं कि जिनके सत्योपदेशोंने मुझको मिथ्यामार्ग = कुधर्मसेहटाकर सत्यमार्ग = सुधर्मपरलगायाहै

३–तृतीय उन कवीश्वरों को धन्यवाद देता हूंकि जिन्हों ने अपनी अपनी सुन्दर२ काव्यरचना भेजकर इस लघु पुस्तक के गौरव को बढ़ायाहै ॥

४–चतुर्थ अपनी उत्तम कुलोत्पन्न श्रेष्ठ = आर्य्या भार्य्या श्री मती दयादेवी जी * को धन्यवाद देता हूं कि जिन्हों ने इस पुस्तकका एक बड़ा भारी भार = भाग अपने सिरपर लिया अर्थात् जिन्हों ने मुझ को इस पुस्तक के छपवाने के लिये प्रसन्नता पूर्वक निज धन दिया ॥

५–मैं अब अपनी परम प्यारी = दुलारी आज्ञाकारी सुपुत्रियों (चन्द्रवती और सूर्य्यवती) को आशीर्वाद देता हूं कि जिन्हों ने इस पुस्तक के आद्योपान्त = समस्त संशोधन में सहर्ष बड़ा भारी परिश्रम किया ॥

हे प्रिय पुत्रियो ! सुनो— * सवैया *

बैस बढ़े धन धाम बढ़े परिवार बढ़े यश होय तुम्हारो ।
ज्ञान बढ़े जग मान बढ़े अरु दान बढ़े कुल हो उजियारो ॥
जोर बढ़े बल पुन्ज बढ़े तन तेज बढ़े हिय होय सुखारो ।
आनन्द मंगल होय सदा तुमको यह आशिरवाद हमारो ॥

धन्यवाद और आशीर्वाद दायक

दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्यागी ॥

* आप (श्री मती दयादेवी जी) नेही पहिले "दानदर्पण–ब्राह्मण अर्पण" नामक पुस्तकको भी खास अपने ही धनसे छपवा दिया था ॥

हे समस्त भूमण्डल के सर्व तीर्थक्षेत्रों के सब परम पूज्य पण्डो ! आप के तीरथराज = प्रयाग जी के माहात्म्य में मैं ने पढ़ा है—

तस्मात्तीर्थेषु पात्राय दद्यादेव स्व शक्तितः ।
यद्यात्प्रियतमं लोके तत्तद्द्यात् द्विजाति षु ॥

अर्थात् मनुष्य को वो वस्तु, जो इस संसार में सब से अधिक प्यारी लगती हो, तीर्थ के पंडों को अवश्य देदेनी चाहिये । बस यही कारण है कि राजा से लेकर रङ्क तक सब लोग अपने अपने प्रिय पदार्थ आप की भेट कर देते हैं अर्थात् धन, धना, धान, धाम और धरादि अनेक वस्तुऐं आपको अर्पण कर देते हैं । यहां तक कि एक बड़े से बड़ा महाराजा भी अपनी अर्द्धांगनी आपको दे देता है । कोई अपनी पुत्री, भगनी, भानजी, भतीजी आदि को आप की चेली बना देता है । बहुधा लोग नवीन और महँगे फल जब तक तुमको नहीं दे देते तब तक आप स्वयं नहीं खाते । और आपहौ भी इसी योग्य क्योंकि आप पापी से पापी = महापापी के पापों को भी पलभर में पलायन कर देते हो और जिसकी पीठ पर तीन हाथ मार देते हो वही विचारा चन्द्र और सूर्य को पार करता हुआ सीधा वैकुण्ठ धामको जा पहुँचता है । कारण हिन्दू ब्रह्मा, हिन्दू विष्णु, हिन्दू महेश और हिन्दू राम—कृष्ण आदि जितने हिन्दू देवता हैं । (आज कल अनुमान ६६ करोड़ के हैं) वे सब आपके आधीन हैं । यथा—

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः ।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मण दैवतम् ॥

बस इसी लिये हे हिन्दुओं के परम पूजनीय मेरे प्यारे पुजारि, पुरोहित और पंडो ! मैं आज अपने इस छोटे से पुस्तक नाम "तीर्थदर्पण-पण्डा अर्पण" को, जोकि मुझे अति ही अति=अत्यन्त प्रिय है, आप के सुन्दर कमल रूपी करों में समर्पण करता हूं । कृपाकर स्वीकार करियेगा और सदैव कृपा दृष्टि की वृष्टि करते रहियेगा ॥

आप पुजारि, पुरोहित और पंडों का कृपाभिलाषी—
दामोदर--प्रसाद—शर्म्मा—दान--त्यागी—मथुरा ॥

॥ भूमिका ॥
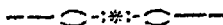
प्रिय पाठक महाशयो ! बहुत दिनों से इस देश की जो दुर्दशा हो-रही है उस के बहुत से कारण बतलाये जाते हैं परन्तु उन में से मुख्य एक कारण केवल मिथ्या तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए स्वार्थी और मूर्ख पुजारि, पण्डों और पाधा, पुरोहितों को दान देना है । ये प्रतारक, प्रपञ्ची पुरोहित जड़ और अयथार्थ तीर्थों के मिथ्या माहात्म्य सुनाकर यात्रियों को अपने वाग्जाल में ला ऐसा लुभा देते हैं = फंसालेते हैं । कि—वो (यात्री) इन को (धूर्त्त पण्डों को) देते देते नहीं अघाते (फिर-पीछे चाहें मूंड़ पकर रोते ही क्यों न फिरते फिरें) । कोई कोई तो इन छली, कपटी, ठगियों की मसखरे पन की, बे सिर पैर की, बेबुन्यादी, झूटी मूटी, चिकनी चुपड़ी, लच्छेदार बातों पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि अपना सर्वस्व दे सदा के लियें दरिद्रता को बुलालेते हैं और फिर उस निर्धनता के आक्रमणों और झोकों को सहते हुए सदैव दुःख = क्लेश पाते रहते हैं । बस ऐसे ही सीधे साधे भोले भाले दाता लोगों को सुचेत कराने के लिये इन स्वार्थी, धूर्त्त पुरोहित पंडों की धूर्त्तता भरेहुए चरित्रों को प्रकट करने के कारण इस छोटे से पुस्तक को लिखता हूं। निश्चय है कि सज्जन जन इस लघु पुस्तक को आद्योपान्त अवलोकन करके वञ्चकों की वञ्चकता से बचते हुए मूर्ख, स्वार्थी सण्डों पण्डों को दान न देकर अपना और अपने देश का सुधार करेंगे ॥

प्रिय पाठक महाशयो ! यह भी स्मरण रखियेगा । कि—मेरा लक्ष्य केवल उन्हीं लोगोंपर है जो कि अनेक प्रकार के प्रपञ्चों द्वारा पराया धन उड़ा नाना प्रकार के सुख भोग करना चाहते हैं और शरीर को विद्याध्ययन के लिये किञ्चित् भी कष्ट देना नहीं चाहते और अपने घृणित आचार व्यवहार को शास्त्र विहित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । मैं उन पूजनीय विचारवान सज्जनों पर भूलमें भी आक्षेप करना नहीं चाहता जो कि यथा लाभमें सन्तुष्ट रहतेहैं और पर धन हरण की कांक्षा नहीं रखते । वरन ऐसे सन्तोषी, त्यागी, सुधर्मी सज्जनों को सविनय नमस्ते करताहूं ॥

तीर्थों में मनुष्य बहुधा पाषाण आदि धातुओं की प्रतिमाओं को ईश्वर की मूर्ति समझ कर पूजा करते हैं पर वह भोले भाले यह नहीं जानते। कि—ईश्वर निराकार है—देखिये! यजुर्वेद अ० ३२ । ३ में लिखा है कि परमेश्वर की, जिसका अखण्ड यश और प्रताप है, मूर्ति नहीं होती। यथा—न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥

पुराणों में भी ईश्वर को निराकार कहा गया है। यथा—

हस्त पादादि रहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम् = ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ॥
निर्विकारो निराकारो निरवद्योहमव्ययः = तत्त्वबोध ॥
निर्गतःसच्चिदानन्दः=गरुड़पुराण । निराकारं निरन्तरम्= अवधूतगीता । निर्विकारं निरञ्जनम् = आ० रामायण ॥

अनन्य भक्त जी ने ईश्वर को निराकार माना है। यथा—

सर्व परे अरु सर्व तरे पुनि सर्व विषै परिपूर रहो है ।
वार न पारअपारअखण्डसो पिण्डब्रह्माण्डसमानलहो है ॥
पूरन सर्व अनन्य भनै पर आवहि दृष्टि न मुष्टि गहो है ।
सूछम रूप अरूप सदाइमि ब्रह्म अगोचर रूप कहो है ॥ १ ॥
आदिअनादिअनन्तअनूपअछेदअभेदअलेखअखण्डित ।
अच्युतनाथअचिन्त्यअभयपदअद्भुतभूतअभूतसुमण्डित ॥
आनन्दमूलअमूल्यअगाधअनाहदआदितेकोटप्रचाण्डित ।
जासुअनन्यभनै सुखरूपसो रूपनिरूपनिरूपति पण्डित ॥२ ॥
निर्गुन सरगुन कौन गुनै, पुनुरूप नहीं वह को लखि आयो ।
एक अनेक विशेष नहीं, अरुदूर नजीकनहींठिक ठायो ॥
अनिर्बचनिय अनन्यभनै, कहते न बनै है बिना ही बनायो ।
पूरन ब्रह्म सबै पर पूरन, पूर्ण भये तिन पूर न पायो ॥ ३ ॥

महात्मा दादूदयाल ने भी ईश्वर को निराकार कहा है। यथा—

अविनासी सो सत्य है, उपजइ बिनसइ नाहिं ।
जेता कहिये काल मुख, सो साहिब किस माहिं ॥
साईं मेरा सत्य है, निरंजन निराकार ।
दादू बिनसइ देवता, झूँठा सब आकार ॥

तिर सन्ध नूर अपार है, तेज पुंज सब माहिं ।
दादू जोति अनन्त है, आगा पीछा नाहिं ॥
वार पार नाहिं नूर का, दादू तेज अनन्त ।
मूरत नहिं करतार की, ऐसा है भगवन्त ॥
परम तेज परकास है, परम सो नूर निवास ।
परम जोति आनन्द है, हँसा दादू दास ॥
परम तेज परात्परं, परम जोति परमेश्वरम् ।
स्वयं ब्रह्म सदैव सदा, दादू अविचल अस्थिरम् ॥

भक्त सुन्दरदास जी ने भी ईश्वर को निराकार माना है। यथा—

जा प्रभु ते उतपत्ति भई यह सो प्रभु है उर इष्ट हमारे ।
जो प्रभु है सब के शिर ऊपर ता प्रभु कूं शिर ही हम धारे ॥
रूप न रेख अलेख अखंडित भिन्न रहै सब कारज सारे ।
नाम निरंजन है तिन को पुनि सुंदरता प्रभुकी बलि हारे ॥
जो उपजै विनसै गुन धारत सो यह जानहु अंजन माया ।
आव न जाय मरै नहिं जीवत अच्युत एक निरंजन राया ॥
ज्यूं तरु तत्व रहै रस एकहि आवत जातफिरै पत्र छाया ।
सो पर ब्रह्म सदा शिर ऊपर सुंदरता प्रभु सूं मन लाया ॥
शेष महेश गनेश जहां लगि विष्णु विरंचिहु के शिर स्वामी ।
व्यापक ब्रह्म अखंड अनाव्रत बाहरि भीतर अंतर जामी ॥
वोर न छोर अनंत कहे गुन या हित सुंदर है घन--नामी ।
ऐसु प्रभू जिन के शिर ऊपर क्यूं परि है तिनकूं कहि स्वामी ॥

बहुधा तीर्थों में माला धारी मनुष्य अनेक पाप ऐसे किया करते हैं। कि—जिनको लोग पहचानभी नहीं सकते । यथा—
"हाथगोमुखी मेंऔर मन गुमुखी में"

भजन—साधो भाई मनकी मौज करो ॥
बड़ि बड़ि गांठ काठ की माला खट खट जपत फिरो ।
मनकी बात कौन खल जाने मुख से राम नाम उचरो ॥
साधो भाई मनकी मौज करो ॥ इत्यादि

ख्याल—भक्त बने दिखलाने को माला सटकाते न्हा करके।
जपें हजारा करें इशारा माथे तिलक लगाकर के ॥
पर नारी को प्रेम से घूरैं पूरण आंख घुमाकरके ।
कहैं देखने वाले यह हैं बड़े भक्त ढिग आ करके—इत्यादि ॥

तीर्थों में बहुधा पूजारि भी होते हैं। पर पूजारि कहते हैं पूजा के अरि अर्थात् सत्कर्म के शत्रुओं को अर्थात् उन को जो पत्थर और मिट्टी आदि धातुओं की मूरतियों को चटकीली, मटकीली, भड़कीली, चमकीली, झलकीली बना ठना आप ठग के तुल्य बन ठन के बिचारे निर्बुद्धि मूढ़ अनाथों का माल मार कर मौज करते हों और——

तालेवर आवैं तिन्हैं निकट बुलावैं, और नगद जो चढ़ावैं तिन्हैं मगद खिलावैं हैं। ग़रीब लोग आवैं शिर ठाकुर को नवावैं, खाली चरणामृत प्यावैं पात तुलसी के चबवावैं हैं॥ घंटा बजावैं गूठा ठाकुर को दिखावैं, और भोग जो लगावैं सो अलग सरकावैं हैं। पर नारी आवैं परकम्मा में गिरावैं, माल दौना भर झुकावैं ते पूजारी जी कहावैं हैं॥

प्यारे तीर्थ यात्रियो! तीर्थोंमें जाकर कभी कोई लाभ नहीं उठा सक्ता। देखिये! श्रीमान्वर चतुर चतुर्वेदी पण्डित श्री १०८ धूजीसिंह जी महाराज रईस मथुरा अभी सारे तीर्थों में भ्रमण करके आयेहैं। आपनें वहांपर (तीर्थों में) जो जो दुःख सहन किये=कष्ट उठाये वह सब कह सुनाये। तीर्थोंके पुजारि पुरोहितोंके दुराचारों का वृत्तान्त भी खूब कह बताया जिसको सुनकर सुनने वालों के रोमाञ्च खड़े हो गये। मैं महाराज की दुःख भरी सारी कथा को यहां पर स्थानाभाव के कारण नहीं लिख सक्ता। परन्तु हां! महाराज ने अपने सच्चे आर्त्तस्वर से जो एक भजन गायाथा उसे यहां पर पाठकों के लिये लिखेदेताहूं——

भजन—नाहिं मतलब कुछ संसारसे। सद्धर्म १ मेरे मन माना ॥
काशी गया प्राग भरमाया। जगन्नाथ का दर्शन पाया।
रामेश्वर कांची हो आया। कहिं पाया नहीं ठिकाना ॥१॥
गोदावरि कावेरी न्हाया। पंचवटी वट की वसि छाया।

१८त्रिम्बक नासकादि लौं धाया। होकर के दिल दीवाना ॥२॥
पुरी द्वारका में तन ताया। धरणी धरका छाप लगाया।
रणछोर टीकम टकराया। वन बैहर सब छाना ॥३॥
हरिद्वार में ख़ूब अन्हाया। हर की पैरी पर शिर नाया।
हर चरणों से ध्यान लगाया। रूप बनाकर नाना ॥४॥
हृषीकेष औ लछमन झूला। फिरा भटकता भूलाभूला।
अपनी दुर्मति के अनुकूला। फिरा बहुत बौराना ॥५॥
चारो दिशा फिरा घहराया। उसका पता कहीं नहिं पाया।
हमदम अपने दिल में पाया। जब दिल अपने को ताना ॥६॥
जहँ पाया तहँ पत्थर पानी *। और न दूजी कछू निशानी *।
अजहू चेत अरे अज्ञानी। जो पै चाहत कल्याना ॥७॥
सिंह२ कहैं बिनती सुनलीजे। सत असत्यका निर्णय कीजै।
अमृत छांड़ि विषहि मत पीजै। तुम पाओ पद निर्वाना ॥८॥

शब्दार्थ—१=वैदिक धर्म्म। २=धुजीसिंह ॥

*=ये अक्षर सुवर्ण से लिखने योग्य हैं ॥

नोट—बस इसीप्रकार सैंकड़ों मनुष्य इननाम मात्रके कपोल कल्पित मिथ्या जड़ तीर्थों में भटकने के पश्चात् घर पर आकर दुःख पाते हुए पश्चात्ताप करके अपने कपाल को धुना करते हैं। * दोहा *

यहि प्रकार सतसःपुरुष, दुःख पावहिं यहिकाल।
ह्वै निराश गृह बैठिके, ठोकहिं स्वकर स्वभाल ॥
तिनके१ हित करि श्रम रच्यौ, यह विचित्र लघु ग्रन्थ२।
याहि निरखि क अज्ञनर, तजि हैं बेगि कुपन्थ३ ॥

शब्दार्थ—१तीर्थ यात्रियों के। २ तीर्थ दर्पणपण्डा अर्पण।
३ काशी मथुरा और अयोध्या आदि शहरों में भटकते फिरना ॥

स्थान—मथुरा
आषाढ़ कृष्ण ९ मी
संवत् १९६९

देश हितैषी
दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा
दान—त्यागी
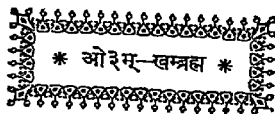
* दानदर्पण-ब्राह्मणअर्पण *

के

द्वितीय-भाग

का

सप्तमोऽध्यायः

दान स्थान के विषय में

* अर्थात् *

* तीर्थदर्पण-पराडाअर्पण *

॥ प्रथम-परिच्छेद ॥

॥ तीर्थ-स्थान ॥

प्रश्न-अरे भाई! तेरे कहने से दान का अर्थ, दान का महत्त्व, दान के भेद, दानके पदार्थ, दानके दाता और दान का समय, इन सब विषयों को हम भले प्रकार समझ गये। परन्तु अब यह और बतादे कि दान कहां पर (किस ठौर) करना चाहिये?

उत्तर-दानदाता और दानग्रहीता की धर्म्मानुकूल इच्छानुसार प्रत्येक स्थान में दान देना चाहिये॥

प्रश्न—हमने तो सुना है। कि—तीर्थस्थानों में, जोकि मोक्षके देने वाले हैं, दान देना चाहिये। क्योंकि वहां पर दान देने से अधिक पुन्य होता है ॥

उत्तर—महाराज ! भला बतलाइये तो सही। कि—वे कौन से तीर्थ—स्थान हैं ?

प्रश्न— अच्छा भाई ! अभी सुनातेहैं। ले सुन——

गङ्गा गोदावरी रेवा तापनी यमुना सती।
क्षिप्रा सरस्वती पुण्या गौतमी कौशिकी तथा ॥ १ ॥
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा।
चित्रोत्पला वेत्रवती शरयूर्वेणु मत्यपि ॥ १ ॥
चर्मण्वती शतरुद्रा पयस्विन्यंत्र संभवा।
गंडकी बाहुदा पुण्या सर्वाः सर्वार्थ साधनाः ॥ ३ ॥

अर्थ—गंगा, गोदावरी, रेवा, तापनी, यमुना, सती, क्षिप्रा, सरस्वती, गौतमी, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, सरयू, वेणुमती, चर्मण्वती, शतरुद्रा, पयस्विनी, अंत्रसंभवा, गंडकी, बाहुदा; इतनी सब नदियां पवित्र हैं और सर्व प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली हैं ॥ १—२—३ ॥ देखो ! महेशानन्द शर्म्मा कृत बद्रीनारायण महात्म्य पृष्टि ९—१० श्लोक २१—२२—२३ ॥

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायकः ॥ ४ ॥

अर्थ—अयोध्या, मथुरा, माया—हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जयनी, द्वारिकापुरी ये सातों पुरीं मोक्ष देने वाली हैं ॥ ४ ॥ देखो ! बद्री-महात्म्य पृ० ११ श्लो० २५ ॥

कुरुक्षेत्रं हरिक्षेत्रं गया च पुरुषोत्तमम्।
पुष्करं दर्दुरक्षेत्र वाराहं विधि निर्मितम् ॥ ५ ॥

वदर्य्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थ साधनम् ।
यस्य दर्शन मात्रेण पापराशिः प्रणश्यति ॥ ६ ॥

अर्थ—कुरुक्षेत्र, हरिक्षेत्र, गया, पुरुषोत्तमक्षेत्र, पुष्कर, दर्दुरनामक्षेत्र, वाराह क्षेत्र, ब्रह्मनिर्मित क्षेत्र और सर्वार्थ देने वाला श्री वदरी क्षेत्र महा पवित्र हैं जिस के दर्शन मात्र ही से पापों का पुञ्ज नष्ट होता है (ऐसे महान् फलदाता ये ९ क्षेत्र पूजनीय कहे हैं) ॥ ५–६ ॥ देखो ! वद्री महा० पृ० ११ श्लोक २६–२७ ॥

द्वितीय——परिच्छेद

पाप नाशक वृथा वाक्य

तीर्थों पर पण्डे लोग पाप निवृत्ति के लियेही वहुधा वाक्य सुनाया करते हैं ॥

उ०—हे महाराज कृपानिधे ! यह श्लोक तो आपने ऐसे ही पढ़ सुनाये हैं जैसे कि और लोग पाप नाशन में निम्न लिखित व्यर्थ वाक्य गढ़ सुनाया करते हैं । यथा—

नंदं स्कंदं तथा रुद्रं देवेंद्रं वटमेव च ।
प्रयाग पंचकं नित्यं स्मरेत् पातक नाशनम् ॥ ७ ॥
केदारं मध्यं तुंगं रुद्रं गोपेश्वरं तथा ।
केदार पंचकं नित्यं स्मरेत् पातक नाशनम् ॥ ८ ॥
अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा ।
पञ्च कन्याः स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम् ॥ ९ ॥
त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्र्यायुधम् ।
त्रिजन्म पाप संहारं बिल्वपत्रं शिवाऽर्पणम् ॥१०॥

दृष्ट्वा जन्म शतं पापं पीत्वा जन्म शतत्रयम् ।
स्नात्वा जन्म सहस्राणि हरति गंगा कलौयुगे ॥ ११ ॥
गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ १२ ॥
रोगं हरति निर्म्माल्यं शोकन्तु चरणोदकम् ।
अशेषं पातकं हन्ति सम्भोर्नैवेद्य भक्षणम् ॥ १३ ॥
मद्यं मांसं च मत्स्यश्च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकार पञ्च कश्चैव महा पातक नाशनम् ॥ १४ ॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ।
आजन्म कृतं मध्यान्हे सायान्हे सप्त जन्मनाम् ॥ १५ ॥
हरिर्हरति पापानि हरि रित्यक्षर द्वयम् ॥ १६ ॥

इत्यादि, कहां तक लिख सुनाऊं ? ऐसे कल्पित=बनावटी वाक्य तो अपस्वार्थी लोगों ने अनगणित=बेशुमार बना रक्खे हैं। अस्तु, अब आप इन अस्तव्यस्त श्लोकों के अर्थ भी सुन लीजिये—

अर्थ=पहिले चार श्लोकों (७ से १० तक) के अर्थ बहुतही सरल हैं इसलिये नहीं लिखता ॥ गंगा दर्शन करने से सौ जन्म के, पीने से तीन सौ जन्म के, और स्नान करने से सहस्रों जन्म के पाप कलियुग में नाश करती है॥ ११॥ गंगा का नाम सौ योजन (४०० कोस) से भी लेले तो पाप का नाश हो जाता है और विष्णुलोक को पाता है ॥ १२ ॥ निर्माल्य (प्रसाद) रोग को और चरणोदक शोक को हरता है और शिव का नैवेद्य भक्षण सर्व पापों को नाश करता है ॥ १३ ॥ मद, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन ये पांच मकार महा पाप के नाश करने हारे हैं ॥ १४ ॥ अन्यच—

मद्य मांस अरु मीन चतुर्थी कही जो मुद्रा ।
पञ्चम मैथुन जान यही हैं भोग समुद्रा ॥
कर इन से तन पुष्ट इष्ट को करै सुध्याना ।

भोग मोक्ष का द्वार यही हमने मत माना ॥ १४ ॥

मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्ति के दर्शन करे तो उस का रात्रि में किया हुआ, मध्यान्ह में दर्शन करे तो जन्म भर का, सायं काल में दर्शन करे तो सात जन्मों का पाप छूटजाता है ॥ १५ ॥
" हरि " इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पाप को हरलेता है ॥ १६ ॥

तृतीय—परिच्छेद

जड़ तीर्थों की मिथ्या महिमा

काशीवासी—उक्त वाक्यों को श्रवण करके बोला। कि—और तो मैं कुछ नहीं जानता किन्तु यह मुझे निश्चय है। कि—सारे संसार में मुक्ति पाने के लिये कोई दूसरा स्थान काशी के समान नहीं है। यथा—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्य पूर्वं पुनः पुनः ।
न काशी सदृशी मुक्ती भूमिरन्या महीतले ॥ १७ ॥

देखो ! काशी खण्ड अध्याय ९४ ॥

क्योंकि और स्थानों के किये हुए पाप काशी में नष्ट हो जाते हैं। यथा—

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं काशी क्षेत्रे विनश्यति ॥१८॥

देखो! काशी महात्म्य ॥

और जिनकी गति कहीं नहीं होती उनकी गति=मुक्ति काशीजी में होजाती है। यथा—

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥१९॥

देखो ! भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्रकृत सत्य हरिश्चन्द्र नाटक पृष्ठ २५ पंक्ति १०

और भाई ! देख—काशी खण्ड के ३५ वे अध्याय में लिखा है। कि—जो जीव काशी पहुंच जाता है उसी की मोक्ष होती है और की कहीं नहीं होती

इसलिये वह क्षेत्र अति पवित्र और सुचित्र है । यथा—

प्राप्य काशीं भवेन्मुक्तो जन्तुर्नान्यत्र कुत्रचित् ।
अतएव हि तत्क्षेत्रं पवित्र माति चित्रकृत् ॥२०॥

देखो! काशी खण्ड अध्याय ३५ ॥

अरे! और सुन काशी की चट्टान की चोटी को भी देखकर कोई इस जगत् में फिर जन्म नहीं लेता और जो वास करे तो न जाने उसका क्या ही फल हो। यथा—

काशी सौध शिखां दृष्ट्वा भुवि कश्चिन्न जन्मभाक् ।
भविष्यति पुनस्तत्र वासे जाने न किं फलम् ॥२१॥

देखो! काशी खण्ड अध्याय ६ ॥

अरे देख! एक और काशी प्रेमी ने कहा है—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर ।
जहं बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥

पञ्चवटी दास—कासीवासी की बात पूरी होते ही कहने लगा। कि–अरे कशिया! तू क्या अनाप सनाप बकताहै? अरे ले! हम तुझे अपने तीर्थ का महत्त्व कह सुनाते हैं—जो फल जन्म पर्य्यन्त काशी वास करने से होता है। वह फल पंचवटी में एक पहर निवास करने से होता है। एकही स्थानपर शिव, राम और गंगाजी का दर्शन कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। जो वहां स्नान करते हैं वह जीवन मुक्त होजाते हैं ॥

नोट—यह महात्म्य गोदावरी जिसको गौतमी कहते हैं उसका है ॥

देखो—अभ्युदय भाग २ संख्या २७ पेज ६ का. १ लाइन १९ ॥

अयोध्या निवासी—यह सुनतेही बोल उठा कि श्रीअयोध्या जी के स्वर्गद्वार नाम तीर्थमेंस्नान करके श्रीभगवान् रघुनाथजी का दर्शन जिसने करलिया है उस को अन्य कर्म करने की आवश्यकता नहीं अर्थात् दूसरे तीर्थ क्षेत्रों में जाना व्यर्थ है। यथा—

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ।
न तस्य कृत्यं पश्यामि कृत कृत्यो भवेद्यतः ॥ २२॥
देखो ! बद्री महात्म्य पृ० १३ श्लो० ३० ॥

जगन्नाथी बाह्मन—इस वाक्यको सुनतेही बोल पड़ा कि अरे भाई ! तुम लोग क्यों ऊट पटांग मारते हो ? देखो—श्रीजगन्नाथ तीर्थ के महात्म्य को । कि—पृथिवी, आकाश और वैकुण्ठ में बरन साढ़े तीन कोटि मुक्ति देने वाले तीर्थों में जगन्नाथ तीर्थ उत्तम और श्रेष्ट है । इसलिये और तीर्थों का त्याग के केवल इसी एक जगन्नाथ तीर्थ को मानना चाहिये अर्थात् और तीर्थों को न मानना चाहिये । यथा—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि गगने च त्रिविष्टपे ।
सार्द्धं त्रिकोटि संख्यानि स्वर्गमुक्ति प्रदानि वै ॥ २३ ॥
तेषामयं क्षेत्रराजः कीर्त्तितः पुरुषोत्तमः ।
सर्वेषां क्षेत्रवर्गाणां अयं सायुज्यदं हरेः ॥ २४ ॥
देखो ! उत्कल खण्ड अध्याय ४ ॥

गयाली—जगन्नाथीकी वाणीके सुनतेही भवक कर भवकी देने लगा—क्योंरे उत्कल बामन ! तू क्या बकता है ? क्या तू नहीं जानता ? कि गयाजी का महात्म्य कैसा श्रेष्ट है ? देख—गयाक्षेत्र के भीतर तीर्थ छोड़कर और कोई स्थान नहीं दिखाई देता, क्योंकि इस स्थान में सब तीर्थ विराजते हैं, इसी से गया क्षेत्र सब तीर्थों से श्रेष्ट है । यथा—

गयायां नहि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।
सान्निध्यं सर्व्वं तीर्थानां गया तीर्थं ततोवरं ॥२५॥
देखो ! (बंगवासी ष्टीम-मेशीन प्रेस का छपाहुआ)
श्रीगया महात्म्य अध्याय १ श्लोके ५५

और भी सुन ! देख ! योंभी कहा करते हैं ! कि—

गया न गया सो भया न भया ॥

अर्थात् गया के अतिरिक्त दूसरे तीर्थ स्थानों में जाना व्यर्थ है ।

वृन्दावनी बह्मन—इन बातों को सुनतेही चिल्ला उठा—क्योंरे !

तुम सब लोग क्या आंय वांय बकतेहो ? क्या तुमने कभी हमारे तीर्थ का महात्म्य नहीं सुना ? लो ! मैंही सुनाये देता हूँ—

वृन्दावन की लता सम, कोटि कल्प तरु नाहिं ।
रज की सम वैकुण्ठ नहीं, और लोक केहि माहिं ॥

क्या अबभी कहोगे ? कि वृन्दावन से परे कोई और भी तीर्थ है । लो ! और भी सुनौ—

वृन्दावन की गैल में, मुक्ति पड़ी किल्लाय ।
मुक्ति कहै गोपाल से, तू मेरी मुक्ति बताय ॥

बद्रीनाथी पुरोहित—वृन्दावनी के शब्दोंको श्रवण कर बोला--कि इस तीर्थ(बद्री क्षेत्र) के तुल्य काशी, कांचीपुरी, मथुराजी, गया, प्रयागराज (गंगा जमना का संगम), अयोध्याजी, अवंतिकापुरी और कुरुक्षेत्र भी नहीं हैं। यथा—

न काशी न तथा कांची मथुरा न तथा गया ।
प्रयागश्च तथायोध्या नावंती कुरुजांगलम् ॥२६॥

अरे ! और भी सुनौ ! स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल में बहुत से तीर्थ हैं परन्तु बदरिकाश्रम के समान कोई तीर्थ न हुआ और न होगा । यथा—

बहूनि संति तीर्थानि दिवि भूमौ रसासु च ।
बदरी सदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२७॥

क्योंकि—बदरीक्षेत्र के स्मरण करने ही से महापातकों का नाश होजाता है और पापों से छूट के उसी समय मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। यथा—

क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातक नाशनम् ।
विमुक्ताः किल्बिषात्सद्यः स्मरणात् मुक्तिभागिनः॥२८॥

देखो ! महेशानन्द शर्म्माकृत बद्रीनारायण महात्म्य पृष्ठ ४५-४६ श्लोक ३-६-४ क्रमानुसार ॥

प्रयागी पण्डा—बद्रीनाथ के पण्डा का कथन सुनते ही धाड़ कर

बोला--क्योंरे वदरिया के ! तू क्या बकबक करताहै ? अबे देख ! हम तुझे तीर्थराज की महिमा अभी कह सुनातेहैं । सुन ! प्रयागराज के दर्शनमात्र से ही तत्काल पाप नष्ट होजातेहैं । यथा—

प्रयाग दर्शनादेव पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥ २९ ॥

देखो ! मथुरा निवासी पं० श्रीधर पाठक विरचित प्रयाग महात्म्य पृष्ठ ११ ॥

क्योंकि ६० करोड़ १० सहस्र तीर्थ प्रयाग में रहतेहैं । यथा--

दश तीर्थ सहस्राणि षष्टि कोस्यस्तथापराः ॥ ३० ॥

देखो ! प्रयाग महात्म्य पृ० २३--२४ ॥

इसलिये ब्रह्माजी ने कहा है । कि--जैसे ब्राह्मणों से परे और कोई नहीं है वैसे ही प्रयाग तीर्थ से परे और कोई तीर्थ नहींहै । यथा—

ब्राह्मणेभ्यः परं नास्तिएव माह पितामहः ।
तद्वत्प्रयाग तीर्थात्तु तीर्थ मन्यन्न विद्यते ॥ ३१ ॥

देखो ! प्रयाग महात्म्य पृष्ठ ६८ ॥

श्रीहिरण्य नदका–भक्त––

प्रयागी पण्डा से प्रयागराज की महिमा सुनते ही बड़बड़ाते हुए चिड़चिड़ा कर कहने लगा कि अरे बाबा ! मेरी समझ में तो आप की अटकटोंटी बातें ठीक नहीं जचतीं । मैं तो यह निश्चय करके जानता हूँ । कि- हिरण्य नद के दर्शन तथा स्पर्शन से मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है । यथा—

दर्शनात्स्पर्शनान्मर्त्यो विष्णुलोक मवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

॥ अर्थ–गजल ॥

इक बार दर्शन करन से, इक बार परसन धरन से ।
जिय छूटै जम्मन मरन से, हो जग से बेड़ा पार है ॥

क्योंकि पृथिवी में और बहुत से तीर्थ अपने २ पराक्रम से बहते हैं, परन्तु ब्रह्मपुत्र हिरण्य नद की समान कोई तीर्थ नहीं । यथा—

पृथिव्यामन्य तीर्थानि स्व स्व वीर्य प्रभावतः ।
प्रसरन्ति प्रगच्छन्ति ब्रह्मपुत्र समं नहिं ॥ ३३ ॥
देखो ! हिरण्यनद महात्म्य श्लोक ३२–३४

मथुरा और जमुना

अभी उक्त, छोटा, मोटा, बहन ढोटा, बिचारा चुप भी न होने पाया था; कि मथुरा के तीर्थ पुरोहितों में से एक नाम बजरंगा घोटा, सोटा, लोटा, लंगोटा लिये हुए एक दमसे गरज कर बोला कि अरे ! अभी तक तुम्हें माल्म नांयनें, कि श्रीवाराह जू महाराजने अपने म्हौंड़े सों कह्यो है । कि–मथुरा के–बराबर तीनों लोकन में और कोऊ दूसरो तीरथ ही नांयनें जैसें —

मथुरायाःपरंक्षेत्रं त्रिलोक्यां च नविद्यते ॥ ३४ ॥
देखो ! वाराह पुराण मथुरा माहात्म्य अध्याय १८ श्लोक १ पृष्टि१५९॥

इस पर एक मथुरा वासी पण्डित ने कहा कि यह पुरोहित सच कहताहै । देखिये ! पद्म पुराण के बीच यमुना महात्म्य में लिखाहै कि हरि व्रत, दान और तप से प्रसन्न नहीं होते । केवल श्रीयमुनाजी के स्नानसे ही प्रसन्न होतेहैं । इस लिये जमना जल बिना गति नहीं होसक्ती ॥

इस से यह स्पष्ट विदित होताहै कि श्रीयमुनाजी के अतिरिक्त अन्य असंख्यात तीर्थों में जाना निष्प्रयोजन=व्यर्थ है ॥

श्रीगंगा–दासजी ने कहा—अरे मेरेप्यारे भाई जमनादास जी ! (मथुरा वासी पण्डितका नामहै जिसने ऊपर जमुनाजीकी श्रेष्टता दिखलाई है) तुम तो बड़े एकाक्षि हो, जो तुम श्रीगंगाजी की प्रशंसा नहीं करते और केवल श्रीजमुना जी ही की बड़ाई करते चले जाते हो । लो ! सुनो ! हम हीं तुम्हें कह सुनाते हैं—

श्रीगङ्गाजी का महत्त्व

गङ्गे तव दर्शनान् मुक्ति र्न जाने स्नानजं फलम् ॥ ३५ ॥

अर्थात् हे गंगे ! तेरे दर्शन से ही मुक्ति होती है, तो फिर न जाने स्नान का क्या फल होगा ? ॥ देखो ! गंगा स्तोत्र ॥

आरोग्यं वित्तसंपत्तिः गंगा स्मरणजं फलम् ॥ ३६ ॥

अर्थात् गंगा के जपने का यह फल है कि रोग नाश होता और धन जुड़ता है ॥ देखो ! प्रायश्चित्ततत्व ॥ अच्छा और भी सुनो—

चौपाई— **दरस परस मज्जन अरु पाना ।**
हरे पाप कह सब हिं पुराना ॥

देखो ! गंगा स्तोत्र

अर्थ—गंगा के देखने, छूने, उसमें स्नान करने और उसके पानी पीने से, सब पुराण कहते हैं, पाप नाश होते हैं ॥

नास्ति गंगासमं तीर्थं कलिकल्मष नाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—कलियुग में पाप के काटने के लिये गंगा सब से अच्छा तीर्थ है ॥

देखो ! काशी खण्ड अध्याय २७ ॥

और भी सुन ! गंगा दर्शन करने से सौ जन्म के, पीने से तीन सौ जन्म के और स्नान करने से हजारों जन्म के पाप कलियुग में नाश करती है । यथा-

दृष्ट्वा जन्म शतं पापं पीत्वा जन्म शतत्रयम् ।
स्नात्वा जन्म सहस्राणि हरति गंगा कलौयुगे ॥ ३८ ॥

देखो ! गंगा माहात्म्य

यदि कोई गंगा गंगा ऐसा कहे सौ योजन (चार सौ कोस) से तो वह सब पापों से छूट कर विष्णुलोक को जाता है । यथा—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ ३९ ॥

देखो ! गंगा स्तोत्र

गंगादत्तजी ने कहा है—

गंगाजी की धारा । है पाप काटने का आरा ॥

भारतेन्दु श्रीबाबू हरिश्चन्द्रजी के पिता श्रीबाबू गोपालचन्द्रजी ने कहा है—

* सवैया *

जम की सब त्रास विनास करी मुख तें निज नाम उचारन में ।
सब पाप प्रतापहि दूर दरयो तुम आपन आप निहारन में ॥
अहो गंग अनंग के सत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में ।
गिरिधारन जू कितने विरचे गिरिधारन धारन धारन में ॥

श्रीगंगालालजी कहते हैं। कि–हे तरनतारिणी, पापहारिणी, मोक्ष कारिणी, दुःखनिवारिणी, परम पुनीता, पुराण प्रणीता भागीरथी गंगे ! तीन लोक के बीच ऐसा कौन है ? जो तेरे गुणों का गान कर सके ।

उत्तर— " कोई नहीं "

श्री पण्डित राज जगन्नाथजी महाराज ने श्रीगंगाजी की प्रशंसा में " गंगा लहरी " नाम पुस्तक बनाई थी, जो अबतक प्रचलित है। और जब काशी के विद्वेषी पण्डितों ने उनका अनादर किया तो आप अपनी बनाई हुई गंगालहरी का पाठ करते हुए भगवती भागीरथी की गोदमें शयन करके सदैव के वास्ते इस असार संसार से विदा होगये । यह वही पण्डित वरहैं जिनको यवन मुगलवंशी दिल्लीश्वर औरङ्गजेब बादशाहके बाप बादशाह शाहजहां ने यवन मौलवियों और काज़ीयों से शास्त्रार्थ में विजय पाने के कारण पण्डित राज की पदवी से विभूषित करके इतनी भारी वृत्ति नियत करदी थी कि जिस के गर्व से वह अच्छे अच्छे नरेशों को भी तुच्छ समझते थे। एक दिन एक राजा ने पण्डित राज से कहा कि आप बादशाह से मेरी सिफ़ारिश (परार्थ प्रार्थना) कर दीजिये मैं आपको तीन लक्ष रुपये दूंगा, इस के उत्तर में पण्डित राज ने निम्न लिखित श्लोक पढ़ सुनाया—

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान् पूरयितुं समर्थः ।
अन्यैर्नृपालैः किलदीयमानं, शाकायवास्याल्लवणायवास्यात् ।४०

देखो ! पण्डित राज जगन्नाथजी का जीवन चरित्र ॥

लिखित ऋषि कहते हैं कि जबतक मनुष्य का हाड़ गंगा जल में स्थित रहता है उतनेही हजार वर्ष तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में निवास करताहै । यथा—

यावदस्थि मनुष्य स्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्ग लोके महीयते ॥ ४१ ॥

नोट=स्यात इसी लिये स्वर्ग के लालची लोग अपने मुरदों की हड्डियों को सैंकड़ों कोस से लेजा कर गंगा में धड़ाधड़ डाला करते हैं ॥

सनत्कुमार की संहिता में लिखा है कि त्रिदिव में बैठे हुए त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भी श्रीगंगाजी की उपासना किया करते हैं । यथा–

ब्रह्मा विष्णु महेशाद्यास्सर्वे गंगा मुपासते ॥ ४२ ॥

नोट=वाहरे हिन्दू धर्म्म ! धन्य है तुझ को कि तूने गंगा को ऐसी बड़ी पदवी प्रदान करदी कि जिसके आगे त्रिदेव को भी सिर झुका कर गिड़गिड़ाना पड़ा ॥

उक्त संहिता में यह भी लिखा है । कि-जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं कहा है वे पाप गंगा में स्नान करने ही से दूर होजाते हैं । यथा—

येषां येषान्तु पापानाम्प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
तानि तानि विनश्यन्ति गंगायां स्नान मात्रतः ॥ ४३ ॥

भागवतमें लिखा है । कि–जो मनुष्य गंगा के स्नान या पानके निमित्त जाता है वह पग पग में राजसूय अश्वमेध का फल पाता है । यथा—

यस्यां स्नानार्थं पानार्थम्बागच्छतः पुंसः पदे पदे ।
राजसूयाश्व मेधयोः फलम्म दुर्लभमिति ॥४४ ॥

चतुर्थ–परिच्छेद

॥ गंगा–महात्म्य–निषेध ॥

गंगादास की निर्भय वाणी के सुनतेही जमनादास गड़गड़ा कर बोला–अरे गगनौटा (गंगादास) ! तू कुछ नहीं जानता, अभी कुछ पढ़ ! सुन ! देख ! एक पुराण में लिखा है । कि–जो बेर बेर पाप करता है उसे गंगा पवित्र नहीं करती । यथा—

कुर्य्यात् पुनः पुनः पापं न च गंगा पुनातितं ॥ ४५ ॥

देखो ! गंगा वृत्तांत पृष्ठ ८ पं० १६ ॥

फिर देख! शुद्धतत्व में लिखा है। कि--गंगा किसी अपवित्र मनुष्य को पवित्र नहीं कर सक्ती। यथा——

गंगातोयेन कृत्स्नेन मृद्गारैश्च न गौपमैः।
आमृत्योः स्नातकश्चैव भाव दुष्टो न शुध्यति॥ ४६॥

देखो! ना० शि० पृ० ४४६ पं० १

अर्थ—चाहे पर्वत के समान मिट्टी मलै और गंगा के सारे जल से मृत्यु पर्य्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता॥

एक ऋषि ने कहा है। कि--गंगाजल किसी प्रकार से भी पाप को नाश नहीं करता क्योंकि जो काम इच्छा पूर्वक किये जाते हैं उनका फल अवश्य मिलता है। यथा——

न मार्जयति पापानि गंगाम्भोपि कथंचन।
काम कारकृतं कर्म फलभुतपादयति ध्रुवम्॥ ४७॥

देखो! स्वर्ग में सबजैक्ट कमैटी पृ० ४४ श्लोक १८

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने कहा है। कि—जिनका भोजन, वस्त्र और निवास ठीक ठीक नहीं हैं उनको काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली है। यथा——

असनं वसनं वासो येषांचैवा विधानतः।
मगधेन समा काशी गंगाप्यं गारवाहिनी॥ ४८॥

देखो! सत्य हरिश्चन्द्र नाटक पृ० २८--२९

इसी तरह एक और ऋषि ने कहा है। कि--गंगा पापों को कदापि दूर नहीं कर सकती, क्योंकि शास्त्रिय प्रमाण है। कि--किये हुए बुरे भले कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। करोड़ों वर्ष होने पर भी किये हुए कर्म्म विन भोगे नहीं मिटते। यथा--

अवश्यमेवहि भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम्।
ना भुक्तं क्षियिते कर्म्म कल्प कोटि शतैरपि॥ ४९॥

देखो ! दानदर्पण ब्राह्मण अपर्ण नाम पुस्तक पृ० १३० श्लो० २६

इसी आशय पर गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने भी कहा है—

चौ०—कर्म प्रधान विश्व कर राखा ।
जो जस करै सो तस फल चाखा ॥

इसी अभिप्राय पर एक विद्वान कवि कहता है । कि--किये हुए कुकर्मों के फल भोगने में कोई भी सहायता नहीं दे सक्ता । यथा--

दो०—कोऊ दूर न कर सकै उलटे विधि के अंक ।
उदधि पिता तउ चन्द को धोय न सको कलंक ॥

इस उक्त वाक्य से भी स्पष्ट विदित होता है । कि--जब पिता (समुद्र) ही अपने प्रिय पुत्र (चन्द्रमा) का कलंक=पाप न मिटा सका=धो सका तो गंगा बिचारी औरों के पाप कैसे दूर कर सक्ती है ? अर्थात् गंगा पापों का नाश कभी भी नहीं कर सक्ती ॥

इसी प्रकार कलियुग की काया पलटानेवाले, लंगोटधारी, बालब्रह्मचारी, वेद प्रचारी महर्षि दयानन्द जी ने भी कहा है--गंगा गंगा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती आदि नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता । जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे असे आज कल पोप लीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी । इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं । पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है ॥

देखो ! सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३२५ पंक्ति १७—२३

यह कहकर जमनादास फिर बोला । कि—अब तक तो मैंने तुझ को कुछ शास्त्रिय प्रमाण दीये । किन्तु अब आगे चलकर युक्त युक्ति से भी सिद्धि करें देता हूँ । कि--गंगा बिचारी कभी किसी के पाप दूर नहीं कर सक्ती--सुन ! गंगा के जपने से जो पाप दूर होजाते हैं तो पाप का फल भोगने वाले सैकड़ों, सहस्रों बरन लक्षों रोगी जन जैसे कोढ़ी, कलंकी,

बहरे, गूंगे, अन्धे, लंगड़े, लूले, लुञ्जे, टोंटे, नकटे, कनकटे और गञ्जे आदि, जो कि रात्रि दिवस गंगा के किनारे पर पड़े हुए गंगा २ जपा करते हैं, क्यों नहीं चंगे होजाते हैं? मैं तो देखता हूं कि वह रोगी जन तब ही निरोग होते हैं जब कि वह लोग किसी अच्छी औषधि का सेवन करते हैं। रोगी मनुष्य केवल गंगा जल--पान से निरोग तो नहीं होते किन्तु निरोगी लोग गंगा—पानी पीने से बहुधा रोगी तो अवश्य हो जातेहैं। देखिये! प्रायः सब लोग इस बात को जानते हैं कि जो कोई वर्षा ऋतु में गंगोदक पीता है उस को ज्वर आने लगता है, पेट बड़ा होजाता है, गला बढ़जाता है, शरीर पीला पड़ जाता है और उसके तन में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होजाते हैं। जिन को नाश करने के लिये उस को गंगा—नीर के तीर से दूरतर भाग जाना पड़ता है, धन अधिकतर व्यय करना पड़ता है, रोगरोकूसे रोगरिपु लेना पड़ता है और अनेक प्रकार के दुःख=कष्ट सहन करने पड़ते हैं। यदि इस बात को कोई सत्य न समझे तो उसको उचित है कि वह कानपुर, मिरज़ापुर, शिवपुर, गाज़ीपुर, दानापुर, भागलपुर और कलकत्ता आदि शहरों में जाकर स्वयं निज नेत्रों से देख ले, वहां उस को ऐसे मनुष्य बहुत से दिखलाई पड़ेंगे। और यही कारण है कि गंगा तट के रहने वाले लोग बहुधा गंगा—जल को त्याग कूप—तोयको पिया करते हैं। खैर, अब तो गवर्नमेंएट ने वाटर—पाइप=जल—कल लगादीं हैं॥

नोट=यहां मथुरा में तो मैं भी जमना के सहस्रों भक्तों को रात दिन देखता हूँ। कि—वह लोग रोग होने के भय से अर्थात् जमना—जल को रोग का मूल कारण समझ के जमना—जल से घृणा=घिन=ग्लानि=नफ़रत =हेट करते हैं और कूओं के जल को सादर पीते हैं॥

यहां वैद्य लोग तो, जमना के पूर्ण भक्त होने पर भी, निज शरीर की रक्षा के निमित्त कभी जमना-जल पीते ही नहीं और न कभी अपने रोगियों को पीने देते। कारण वह लोग भली भांति जानते हैं कि जमना जल रोगों का मूल कारण है॥

यहां के वह पवित्र पुरोहित लोग भी, जो कि जमना–पुत्र होने का दावा रखते हैं, वात रोग के भय से जमना–जल पान नहीं करते और " नसवारे " आदि कूपों के खारी पानी को बड़े प्रेम से पीते हैं चाहे उसके मँगाने में दूना, तिगुना या चौगुना भी ख़रच क्यों न पड़े ॥

गंगा के जाप से कोई धनी भी नहीं होता । देखिये ! गंगा के पुत्र (गंगा पुरोहित) ही रात दिन एक एक कौड़ी और तनक तनक कनक= आटा मांगा करते हैं। गंगा से किसी के पाप भी दूर नहीं होते । देखिये ! गंगा से लौटे हुए मनुष्य पाप के फल=तीनों प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक एक, आधिभौतिक दो, आधिदैविक तीन) को भोगा करते हैं । गंगा किसी को पार भी नहीं कर सक्ती । आप देखते हैं कि मनुष्य गंगा को पुल, पोत, पवन पोत, अग्नि पोत, नाव, घरनई, तुम्बा, पटड़ा, मशक, वेड़ा आदि जल–यानों या हाथ पांव द्वारा पार करते हैं । यदि मनुष्य हाथ पैर न हिलावे तो निश्चय है कि गंगा उसी क्षण डुबा कर मार डाले । गंगा के भक्त कहते हैं कि चार सौ कोस की दूरी पर भी गंगा का नाम उच्चारण करे तो उच्चारण करने वाले के पापों का नाश हो जाता है और स्वयं विष्णु लोक को सीधा चला जाता है अर्थात् मुक्ति पा जाता है । यदि ऐसा है ? तो फिर मनुष्य (गंगा–भक्त) सैंकड़ों और हज़ारों रुपये व्यय करके गंगा–तट दर्शन के लिये क्यों आते हैं ? यदि दर्शन से मोक्ष होती है तो पर्शन क्यों करते हैं ? यदि पर्शन से मुक्ति होती है तो पीते क्यों हैं ? यदि पीने से छुटकारा होता है तो उस में स्नान क्यों करते हैं ? यदि न्हानेसे परम पद मिलताहै तो फिर जप–तप और दान–व्रत क्यों करते हैं ? और पुनः अन्यान्य तीर्थ क्षेत्रों में भी क्यों मारे मारे भटकते फिरते हैं ? इस भटकन से स्पष्ट सिद्धि होताहै । कि–गंगा न रोग निवारण कर सक्ती है और न सम्पति, सन्तति और सुख देसक्ती है । तो फिर, भला देखो ! पापों के काटने और मुक्ति के देने की तो बात ही निराली है अर्थात् उन का तो कहना ही क्या है ?–

अच्छा एक बात और भी सुनिये ! यदि गंगा सत्यही दुःख निवारिणी होती तो आप को सैंकड़ों, सहस्त्रों, लाखों, वरन करोड़ों रोगीये=बीमार और कंगाल—जोकि गंगोत्तरी से लेकर गंगासागर तक १५ सौ माइल के बीच हृषीकेश, हरिद्वार, कनखल, गढ़मुक्तेश्वर, अनूपशहर, रामघाट, राजघाट, करणवास, सोरों, फरुखाबाद, कन्नौज, कान्हपुर, बिठूर, प्रयाग, मिरज़ापुर, चिनार, बनारस=काशी, गाज़ीपुर, दानापुर, मुँगेर, पटना, भागलपुर, राजमहल, मुर्शिदाबाद, हुगली और कलकत्ता आदि अनेक स्थानों में गंगा तट पर पड़े हुए रोग और भूख की पीड़ा से पीड़ित होते हुए बिलबिलाते दीखते हैं—कभी भी दृष्टि न पड़ते=नज़र न आते ॥

और भी देखो ! खास हरिद्वार में ही कुम्भ के मेले पर गंगा के लाखों भक्तों में, जो कि बड़ी बड़ी दूर से अनेक प्रकार के बड़े बड़े कठिन कठोर कष्ट सहन कर स्नान करने को पहुंचते हैं, विशूचिका आदि बीमारियां फैल जातीं हैं, जिस से अनेक मनुष्य मर जाते हैं उन में से कितने हीं अनपराधी बच्चे अनाथ हो जाते हैं, कितनी हीं दीन स्त्रियें विधवा हो जाती हैं, कितने हीं कुलों के कुलदीपक नष्ट हो जाते हैं और कितने हीं घरों के ताले बन्द हो जाते हैं परन्तु गंगा किसी को कुछ सहायता नहीं देती । वरन गवर्नमेंएट तो ऐसे महा भयानक रोगों के दूर करने को अनेक उपाय करती है ॥

जमना--दास जी के चुप होतेही चट से गंगा—दास जी बोल उठे कि महाराज ! तो यही हाल जमनाजी काभी जानो=समझो । क्योंकि——

१ मूंग मोठ में कौन । छोटा कौन बड़ा ॥
२ जैसे ही सांप नाथ । वैसे ही नाग नाथ ॥
३ जैसे ही भूत नाथ । वैसे ही प्रेत नाथ ॥
४ जैसे उद्धव तैसे भान । इन के चोटी न उनके कान ॥
५ धोबी से क्या तेली घाट । उस पै मोंगरा उस पै लाट ॥
६ जैसी सञ्जा वैसी मञ्जो । इसपै कठौती न उसपै तञ्जो ॥

७ जैसे तुम तैसे तुमारे सगा । तुम पै पाग न उनपै झगा ॥

८ एक थैली के चट्टे बट्टे । कौन हट्टे कौन कट्टे ॥

आख़िर को तो ये दोनों बहिनें (गङ्गा—जमना) एक ही पहाड़ हिमालय से निकालीं हुई हैं न ॥

इस पर श्री जमनादास जी ने मौन साध शिर झुका लिया ।

सच है—सत्य के सम्मुख सब ही को शीश नवाना पड़ता है ॥

सम्पादक का विचार=मैं साहस पूर्वक कहता हूँ । कि—निस्सन्देह गंगा जल में स्नान करने से शरीर शुद्ध होता है, मन मगन होता है, रोग घटता है और बल बढ़ता है । परन्तु मोक्ष का पाना, पापों का कटना और अन्तःकरण का शुद्ध होना शास्त्र और युक्ति दोनों के विरुद्ध है। क्योंकि मुक्तिदाता तो केवल एक वही पूर्णब्रह्म परमेस्वर ही है । जैसा कि यजुर्वेद अ० ३१ मंत्र १८ में लिखा है । कि—केवल उसी एक सर्व साक्षी परमात्मा को जान कर मनुष्य जन्म मरण से छूट सकता है । अन्य कोई भी मोक्ष का पन्थ=मार्ग नहीं है । यथा—

तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ९० ॥

सम्पादक=दामोदर—प्रसादशर्म्मा—दान—त्यागी ॥

पंचम—परिच्छेद

॥ सत्यार्थीजी और देवदत्तजी के सत्य कथन ॥

इस वादानुवाद को सुनकर सत्यार्थी जी बोले । कि— सदैव "जैहोय" कहने वालो ! और सदा आशीर्वाद देने वालो ! किन्तु यदि दाता कुछ भी [एक टूटे हाड़ की फूटी=कानी कौड़ी भी] न देतो शाप देने वालो । और ऐंडी बेंडी सुनाकर दुर्वचन कहने वालो ! और साथ ही इस के यदि दाता थोड़ा सा भी कुक्कड़ हुआ तो उस के आगे=सामने अपनी बत्तीसी दिखाकर, मस्तक झुकाकर, नाक रगड़कर, निज कान पकड़कर, नेत्र नीचेकर, मुख तिरछाकर शरीर से कांपते हुए,

जिन्हा से तुतलाते हुए, पेट कूटते हुए दोनों कर जोड़ कर घिघिआने= गिड़गिड़ाने= रिरियाने वाले तीर्थ पण्डो ! आप बड़ी भारी भूल करते हो जो आपस में एक दूसरे की निन्दा कर कट मरते हो ॥

और इस भूल (कट मरने) के कारण मुझे दो प्रतीत होते हैं—

१= या तो आपने और सब, तीर्थों के, जो कि अनगणित कल्पित किये हुए हैं, असम्भव महात्म्य नहीं देखे। देखते कहां से विद्या तो आपने पढ़ी ही नहीं। और विद्या ही आप क्यों पढ़ते ? जब कि आप को इस स्वार्थ पूर्ण वाक्य पर पूरा भरोसा होने के कारण पूरण अभिमान है कि चाहे अविद्वान= मूर्ख हो चाहे विद्वान= पण्डित हो ब्राह्मण तो मेरा ही शरीर है। यथा—

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनूः ॥ ५१ ॥

२= या आप अपने पेट की लपेट में लिपट जाने के कारण स्वार्थान्ध होकर औरों को (उन की आंखों में धूल झोंककर) अपने फन्दे में फंसाने के लिये निज२ तीर्थ स्थान की अधिक, केवल अधिक ही नहीं वरन एक महान से महान महिमा कह सुनाते हो और दूसरों की निन्दा कर दिखाते हो। वाह जी वाह ! धन्य है आप की आप स्वार्थता को ॥ सत्यार्थी जी के वचनों को श्रवण कर—

श्री मान् पण्डित देवदत्तजी शर्म्मा, जो कि एक ओर चुपचाप बैठे हुए उक्त तीर्थ पुरोहितों की गपशप सुन रहे थे, कहने लगे। कि—भाई ! आप इन की बातों में क्या लोगे ? यह लोग तो अहर्निश ऐसेही गपोड़े हांका करते हैं। सब ही तीर्थ वासियों ने अपने अपने तीर्थों की प्रशन्सा लिख दिखाई है। और दूसरों के तीर्थों की निन्दा कह सुनाई है। और इसी आपापूती ने सारे संसार में झगड़े की जड़ जमाई है। यथा—

एक एक को मण्डन करैं। खण्डैं दूजे जाय।
लोगन यहि विधि जगत में। दिये जाल फैलाय ॥
याही ते भई जगत में। वैर तर्क की खानि।

एक एक को शत्रु हुइ गयां । कहंलग कहौं वखानि ॥
निज स्वारथ वस होय के । दिय जड़ धातु पुजाय ।
मात पिता प्रत्यक्ष जे । तिनको ऋण विसराय॥
एक एक से द्वेष बढ़ाता । अपनेथलकोश्रेष्ठवताता ॥

वस यही कारण है कि लोगोंने अपनी अपनी मनमानी घरजानी तो की किन्तु सच्चे धर्म्म की पहचान न की । यथा--

अपने अपने मनन की । सवने लीनी मान ।
सत मत में दुवधा रही । पड़ी न काहू जान ॥

उक्त वाक्यानुसार लोगों को आपापूती के झगड़े करते हुए देखकर किसी कवि ने सत्य कहा है---

यह नाहिं न्याय कहावे वन्धो। यह तो अति अन्धेर कोधन्धो॥
करोन करम धरम हितलागी । रहो निजस्वारथहिरस पागी॥

षष्ठम्—परिच्छेद

* मोक्ष प्राप्त के मिथ्या उपाय *

अव देखिये ! यहां पर पौराणिक लोग मुक्ति पाने के लिये मिथ्या तीर्थों की परवाह न करतेहुए अन्य अयथार्थ उपाय वतातेहैं ॥ दा.प्र. श.दा.त्या ॥

ऊपर के सत्य वाक्यों को श्रवण कर एक वाम मार्गी उठकर कहने लगा । कि---महाराज ! केवल अज्ञानी लोग ही सैकड़ों कोस चलकर सहस्रों रुपये व्यर्थ व्यय किया करते हैं । देखिये ! हमतो घरपर ही सव तीर्थ कर लेते हैं अर्थात् वेश्यासे मिला तो मानों प्रयाग में स्नान किया, धोवी की स्त्री से मिला तो मानों पुष्कर जी की यात्रा की, चमार की स्त्री से मिला तो मानों काशी जी की यात्रा कर गंगाजी में स्नान किया और जो रजस्वला से भेटकी तो मानों सव तीर्थ यात्रा करली । यथा—

वारांगना प्रयागश्च रजकी पुष्करस्तथा ।
चर्मकारी भवेत् काशी सर्वे तीर्था रजस्वला ॥ ५२ ॥

देखो ! रुद्रयामल नाम ग्रंथ ॥

दूसरा वाम मार्गी बोला—महाराज ! वो लोग तीर्थ यात्रा क्यों किया करते हैं ? कुछ तीर्थ यात्री जो कि वहांपर एक ओर बैठेथे चिल्लाकर बोल उठे । कि- मोक्ष प्राप्त को अर्थात् फिर जन्म नहो ॥

तीसरा वा० मा०—तो महाराज ! आप इसके लिये इतना कष्ट क्यों उठाते हो ? मैं आप लोगों को एक सहजसा उपाय बताये देताहूं । आप मदिरा को पीओ, पीओ और फिर पीओ, जब तक भूमि में गिरो । फिर उठो और पीयो, ऐसा करने से फिर पुनर्जन्म न होगा । यथा—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले ।
पुनरु त्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५३ ॥

चौथा वा० मा०—महाराज ! इसी प्रकार हमारे उड्डीस तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलयहों उन में मद्य के बोतल भरके धर देवे इन आलयों में से एक बोतल पीके दूसेर आलय पर जावे उस में से पी तीसरे और तीसरे में से पीके चौथे आलयमें जाये खड़ा खड़ा तबतक मद्य पीवे कि जबतक लकड़ीके समान पृथिवी में न गिरपड़े फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े पुनः तीसरी बार इसी प्रकार पीके गिरके उठे तो उसका पुनर्जन्म नहो ॥

शैवी बोला—वाममार्गीजी महाराज ! आपतो मदिरा पीकर बे सुधि होनेसे मोक्ष प्राप्ति करते हैं । किन्तु हम तो शिव लिंग पूजन से ही मुक्ति पालते हैं । यथा—

बहुनोक्तेन किं विप्र ! महादेवस्य पूजनात् ।
निकृष्टो विनिर्मुच्येतस्वसंसार महोदधेः ॥ ५४ ॥

देखो ! लिंग पुराण ॥

अर्थ = हे विप्र ! अधिक कहनेसे क्या ? महादेव के पूजन से तो तुच्छ मनुष्य भी संसार रूपी समुद्र को तरजातेहैं अर्थात् मुक्त होजाते हैं ॥

दूसरा शैवी—अरे भाई ! हमतो २–३ वेलपत्र चढ़ाकर ही संसार पार करते हैं । यथा—

द्विन्त्रीण्यपती वरम्पाणि विल्व पत्राणि सादरम् ।
ये नार्पितानि मे लिङ्गे तेन मुक्तिर वाप्यते ॥ ५५ ॥
देखो ! शिव रहस्य ॥

अर्थात्=महादेवजी कहतेहैं । कि—जिसने दो या तीन सुन्दर बेल-पत्र आदर से मेरे लिंग पर चढ़ादिये उसने मुक्तिको पालिया ॥

तीसरा शैवी—अरे बाबा ! हमतो शिव लिंग के पास एक दीपक जलाकरही इस भवसागर से पारहो जाते हैं । यथा—

यावत्कालं प्रज्ज्वलन्ति दीपास्ते लिंग मग्रतः ।
तावद्युग सहस्राणिगतःस्वर्गे महीयते ॥ ५६ ॥
देखो ! पद्मपुराण नारदीय खण्ड ॥

अर्थ = जितने कालतक दीपक शिव लिंगके पास जलते हैं उतने सहस्र युग तक (मरकर) स्वर्ग में जाते हैं ॥

चौथा शैवी—अरे प्यारे ! मैं तो एक कदली फल ही चढ़ाकर मोक्ष पाता हूं । यथा—

एकं मोच फलं पक्वंयः शिवाय निवेदयेत् ।
सर्वं भक्ष्यैर्महाभोगैः शिव लोके महीयते ॥ ५७ ॥
देखो ! स्कन्दपुराण ॥

अर्थ=पकी हुई केले की एक फली जो मनुष्य शिवजी के भोग लगाते हैं, वे सब भोग सहित शिव लोक में पुजते हैं (मोक्ष पाते हैं) ॥

पांचवां शैवी—अरे भाई ! तुम तो मान्दिर में भी जाने का कष्ट उठाते हो परन्तु मैं तो रुद्राक्ष के २५ दानों की माला से ही मुक्त पाने की आस रखता हूँ । यथा—

पञ्चविंशति संख्यातैः कृता मुक्ति प्रदा भवेत् ॥ ५८ ॥
देखो ! शिव रहस्य ॥

छट्वां शैवी—अरे भाई ! तुम को तो २५ दाने की भी चिन्ता करनी पड़ती है पर हम तो केवल शिव को "नमस्कार" कर के ही परम पद=मोक्ष पाते हैं । यथा—

ये नमन्ति विरूपाक्ष मीशानं कृत्तिवाससम् ।
प्रसन्न चेत सा नित्यन्ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५९ ॥

देखो ! कूर्म पुराण ॥

अर्थ=जो मनुष्य शिवजी को प्रणाम करते हैं वह परम पद (मोक्ष) पाते हैं॥

इन लोगों की वाणियोंको श्रवण कर एक वृती बोला। कि—महाराज! आप लोगों की बातों को तो आपही जानें परन्तु मैं तो यह समझताहूँ। कि—एकादशी के वृत से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सक्ता है। यथा—

एवंयः कुरुतेराजन् ! मोक्षामेकादशी मिमाम् ।
तस्य पापाः क्षयं यान्ति मृतो मोक्ष मवाप्नुयात् ॥ ६० ॥
नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा ।
चिन्ता मणि सभा ज्ञेया स्वर्ग मोक्ष प्रदायिनी ॥ ६१ ॥

देखो ! एकादशी महात्म्य ॥

अर्थ=श्रीकृष्ण कहते हैं। कि—हे राजन्! जो पुरुप इस मोक्ष नाम एकादशी का इस तरह से वृत करते हैं। उन के पाप दूर हो जाते हैं और मरने के पीछे मोक्ष को पाते हैं॥ इस से परे मोक्ष की दाता पवित्र और कोई एकादशी नहीं है। यह चिन्ता मणि के समान स्वर्ग मोक्ष की दाता है॥

नोट—हाय! श्रीकृष्णदेवजी महाराज ने ऐसे भ्रामक वाक्य काहे को कहे होंगे? किन्तु अपस्वार्थी लोगों ने अर्थात् मतलबी यारों ने तो अपना मतलब गांठने के लिये कृष्ण महाराज ही को घर घसीटा॥

सच है—स्वार्थी दोषो न पश्यति ॥ ६२ ॥

वृती के बैठतेही वैष्णव बोला। कि—महाराज! आप को तो सारे दिन लंघन करना पड़ता है किन्तु हम तो केवल चरणामृत पीकर हीं वैकुण्ठ वास पा लेते हैं। यथा—

अकाल मृत्यु हरणं सर्वं व्याधि विनाशनम् ।
विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ६३ ॥

* भावार्थ *

मरे नहीं अकाल मृत्यु से सर्व व्याधि मिट जाई ।
विष्णु पादोदक पीकर फिर नहीं जन्मे आई ॥

आर्य्य—विष्णु-पद कहां मिलते हैं? जिन को धोकर पीवें ॥

हिन्दू—प्रत्येक हिन्दू मन्दिर में आप को विष्णु की मूर्ति मिलेगी। बस उसी के पगों को धोकर पीओ ॥

आ०—नहीं महाराज ! प्रत्येक देवालय में विष्णुकी मूरत नहींहोती । कहीं गणेश—महेश, कहीं राम—श्याम, कहीं काली—काली, कहीं कच्छ मच्छ, कहीं कूकर—सूकर, कहीं रुद्र—भैरव आदि पुरुषों की होतीहैं—

दो०—कहीं कृष्ण बलदेव की । मूरत कहीं हनुमान ।
कहीं गोपाल वराह की । कहीं गणेश की जान ॥

चौ०-कहीं गणेश की जान मूरतें और अनेक बनी हैं ।
ईश्वर की कहीं कोई किसी मन्दिर में नहीं बनी हैं ॥
जल्दी देउ जवाब आज तक किसी ने कहीं सुनी हैं ।
धर के नाम जो सत् पुरुषों के द्रव्य तुम्हें हरनी हैं ॥

हिन्दू—महाराज ! प्रत्येक देवालयमें इन सबर मूर्तियों के अतिरिक्त विष्णु की मूर्ति तो अवश्य ही होती है ॥

आर्य्य—तो वह मूरत किस धातु की और कितनी बड़ी होतीहै ?

हिन्दू—वह मूरत एक काले पत्थरकी गटियाकी बटिया होतीहै। उस के आकारका कोई ठीक ठिकाना नहीं । क्योंकि कोई तो चना—मटरसी छोटी और कोई टैर सी बड़ी होती है ॥

आ०— तो महाराज ! काले पत्थर के ऐसे छोटे— बड़े टुकड़े यानी चिकने—चुपड़े, चटरे—बटरे, अर्थात् गोल—मटोल, नकटी—चपटी, बटियां बहुत सी मेरे मकान पर पड़ी हुई हैं । क्या वैसी ही होती हैं?

हि०— लाकर दिखाओ तो बताऊं ॥

आर्य्य लाकर दिखाता है ॥

हि०— (देखकर) हां हां, यही विष्णु भगवान की मूर्तियां हैं ॥

आ०— पर यह तो कहो । कि— विष्णु जी पत्थर क्यों होगये ?

हि०— अरे ! क्या अपने बस होगये । अरे ! वह तो वृन्दा के श्राप से हुए हैं ॥

आ०— महाराज ! वृन्दा ने श्राप क्यों दियाथा ?

हि०— विष्णु ने छल करके उस का सतीत्व नष्ट कर डाला था ॥

आ०— विष्णु तो ईश्वर को ही कहते हैं न? क्या ईश्वर भी छली और जारादि के कर्म करता है ?

हि०— हां हां, वह सब कर्म करता है ॥

आ०— क्या खोटे कर्म्म भी ?

हि०— हां, खोटे कर्म्म भी ॥

आ०— नहीं नहीं, जगत— ईश्वर कुकर्म्म कभी नहीं करता ! परन्तु तुमारे कहने से मालूम हुआ कि हिन्दू— ईश्वर सब खोटे काम करताहै। बस जान पड़ाकि इसीलिये तुमने (हिन्दुओं ने) अपने ईश्वरको निम्न लिखित पदवियां=खिताब दिये हुए हैं—रणछोर—माखनचोर—दही लुटेरा—चीरचुरैया—बांसुरीबजैया—राधारमण—राधाविहारी आदि। और अन्त को यह भी कह पुकारे हो । कि—

चोर जार शिखा मणिः ॥६४॥

देखो ! गोपाल सहस्र नाम

जिज्ञासु—क्या इन काली चपटी या गोल गोलियों के धोवन पीने से मुक्ति हो जायगी ?

हि०—हां हां, मोक्ष अवश्य हो जायगी ॥

आ०—पर तुम हिन्दू मत पर रुचि रखना और उस मत की अंड-बंड कहानियों पर सन्देह न करना ॥

जिज्ञासु—मिथ्या कथाओं पर भी ॥

आ०—अवश्य ॥

जै०—यदि इतने पर भी मोक्ष न हो तो ?

आ०—समझ लेना कि हिन्दू मत मिथ्या है ॥

नोट—मिथ्या तो है ही क्योंकि वेदों के विरुद्ध कार्य्य करता है ॥

दा. प्र. श. दा. त्या. ॥

चरणामृत के इस उक्त महात्म्य को सुनकर तिलक=प्रेमी जी ने कहा कि महाराज ! पादोदक के प्राप्त करने में तो बहुत कष्ट होता है । देखिये ! प्रथम विष्णु मन्दिर में जाना, पुनः दर्शन करना, फिर कर जोड़ कर " शान्ताकारं " वाला श्लोक पढ़ते हुए ध्यान धरना, पश्चात् पुजारि को दण्डवत करना, तदोपरान्त पुजारि से चरणामृत मांगना, तत्पश्चात् हाथ पसारना, पुनि लेकर पीना । यदि पुजारि लोभी हुआ तो उस के प्रसन्नार्थ कुछ भेट चढ़ाना और अन्त में पुजारि को पुनः शिर नवाना । इतने खेल खेलने पड़ते हैं तब कहीं पादोदक पीने को पल्ले पड़ता है । यदि पैर धोअन कहीं तेल—फुलेल का मिलाहुआ हुआ तो खांसी होने का डर रहता है, क्योंकि इन पाषाण मूर्तियों में तेल फुलेल भी तो लगाया जाताहै । यदि चन्दन मिलाहुआ हुआ तो मन ही बिगड़ जाता है और वमन होने का भय लगा रहता है और वमि होने से जो कुछ क्लेश सहन करने पड़ते हैं सो सब आप को मालूम हीं हैं । इससे आप का यह उपाधि भरा हुआ उपाय मेरी समझ में न आया ॥

वैष्णव—अच्छा ! तो अब आपही कोई सहज सा जतन जताइये ॥

तिलक-प्रेमी—अच्छा लो सुनो ! तुलसी और आंवले का रस बराबर लेकर उसमें तुलसी के बीज, हड़ताल और मैनसिल मिलाकर मरण समय में उसके तिलक करने से यम के दूत मृतक के वश में होजाते हैं इस कारण से पापी, पापी क्या महापापी भी वैकुण्ठको चला जाताहै । यथा—

तुलसी रसं गृहीत्वा धात्री रस समन्वितम् ।
तुलसी बीज संयुक्तं हरताल मनः शिलम् ॥ ६५ ॥

देहान्ते तिलकं कृत्वा यम दूतो वशी भवेत् ।
पापी चैव महा पापी वैकुण्ठं गच्छंते नरः ॥ ६६ ॥

उक्त बातों को सुनकर एक ग़रीब बनिया कहने लगाकि महाराज ! आप का कहना तो सत्यहै। किन्तु सन्देह इतना ही है कि मरते समय उक्त तिलक लगाने का स्मरण किसी को रहे या न रहे । यदि ध्यान न रहा तो तो सारा काम ही बिगड़गया । यदि सुधि रही तो न माल्म उस समय वो सब पदार्थ (तुलसी, आंवला, हड़ताल और मैनासिल) मिलेंगे या नहीं । यदि न मिले तो तो मोक्ष ही हाथ से निकल गई । यदि वह पदार्थ मिल भी गये तो न जाने कोई उन के घोटने पीसने का श्रम अपने ऊपर लेगा या नहीं । इससे आप के कथित कथन में संशय ही संशय उत्पन्न होते हैं। मेरी मतिमें तो जीते हुए ही एक पाई देकर के पाई पुरोहित से तिलक करवा कर चारो पदार्थ अर्थात् अर्थ-धर्म्म-काम-मोक्ष प्राप्ति कर ले । यथा—

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद् गणाः ।
तिलकं च प्रयच्छन्ति धर्म कामार्थ सिद्धये ॥ ६७ ॥

तिलकिया — लालाजी ! आप सत्य कहते हो, तिलक देने के ऐसे ही महात्म्य लिखे हुएहैं ॥

सत्यार्थी जी — अरे मेरे प्यारे भोरे भारे भाइयो ! क्यों भ्रममें पड़े हुए हो ? तिलक लगाने से कुछ लाभ नहीं होता । देखो ! तुमारे ही समान चक्राङ्कित-लोग भी कहा करते हैं—

दोहा-बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप और माल ।
यम डरपै काल कहे, भय माने भूपाल ॥

परन्तु इन बिचारे भोले भाले धर्म के प्यासे और स्वर्ग के भूखों को यह माल्म नहीं है । कि-रुद्राक्ष, कमलाक्ष, भस्म, तुलसी, घास, गोपी-चन्दन, रक्त चन्दन और रोली हलदी आदि को कण्ठ और मस्तक में धारण करना है वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है ऐसे **वाममार्गी**, शैव,

शाक्त और वैष्णव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं उन में जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातों का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे। (परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता) जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो **न्यायाधीश** के गण क्यों डरेंगे ?

बुद्धिमान्=अजी सत्यार्थी जी महाराज! आप का कहना बहुत ठीक है मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि टीका=तिलक लगाने वाले स्वर्ग धाम को तो नहीं पासक्ते किन्तु भोले भाले गांठ के पूरे बुद्धि के अधूरे से छल—कपट करके कुछ धन या माल टाल अवश्य छीन लेते हैं। इन धूर्त तिलकियों की धूर्त्तता का अनुभव करते करते, देखिये ! एक महात्मा ने कैसा अच्छा सार निकाला है। वह कहता है—

लम्बा टीका मधुरी बानी। दग़ाबाज़ की यही निशानी ॥

एक और महात्मा ने भी कहा है। कि—बहुधा छली, कपटी, पाखण्डी लोग ही सीधे—सादे मनुष्यों को धोखा देकर अपना पेट भरने के लिये तिलक—छापे लगा लेते हैं। यथा—

दोहा—तिलक छाप माला जटा, भगवें पट तन छार।
दण्ड कमण्डल भेष तन, उदर भरन व्यवहार ॥

वैदिक—धर्म्म के प्रचारक महर्षि **दयानन्द** जी ने कहाहै—

एक कथा भक्तमाल में लिखी है कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोता था सोता सोताही मर गया ऊपर से काक ने विष्ठा कर दी वह ललाट पर तिलकाकार होगई थी वहां यम के दूत उस को लेने आये इतने में विष्णु के दूत भी पहुंच गये दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है हम यमलोक में ले जायंगे विष्णु के दूतों ने कहा कि हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में लेजाने की देखो इस के ललाट में वैष्णवी तिलक है तुम कैसे ले जाओगे ? तब तो यम के दूत चुप होकर

चले गये विष्णु के दूत सुख से उस को वैकुण्ठ में ले गये नारायण ने उस को वैकुण्ठ में रक्खा देखो जब अकस्मात तिलक बन जाने का ऐसा महात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें तो इस में क्या आश्चर्य है ? हम पूछते हैं कि जब छोटे से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा काला मुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं ? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं ॥

देखो ! सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३५२ पंक्ति १६–२८

नोट–अरे ! ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो उक्त बनावटी बात=कथा पर विश्वास करे। न जाने इन पुजारि पण्डों ने ऐसी कितनी अयोग्य और असत्य बनावटी बातें बना रक्खी हैं। महर्षि का कहना सत्य है। **कि–ये सब बातें व्यर्थ हैं ॥**

दादूदयाल जी भी कह गये हैं। कि–माला कण्ठी पहरने व तिलक छाप लगाने से कुछ लाभ नहीं होता। यथा—

दो०–माला तिलक सो कुछ नहीं–काहू सेती काम ।
अन्तर मेरे एक है–अहनिसि उसका नाम ॥

तिलक धारी तिलक भी तरह तरह के लगाया करते हैं। देखिये ! कोई भस्म=खाक रमाता है। कोई रोली लगाता है। कोई रज पोतता है। कोई गोपी चन्दन मलता है। कोई स्वेत, कोई रक्त, कोई पीत, कोई श्याम रंग का प्रयोग करता है। कोई रेती ही की भरमार करता है। रामानन्दी बगल में गोपी चन्दन बीच में लाल लगाते हैं। नीमावत दोनों पतली रेखा बीच में काला विन्दु बनाते हैं। माधव काली रेखा खींचते हैं। गौड़ बंगाली कटारी के तुल्य तानते हैं। राम प्रसाद वाले दोनों चांदला रेखा के बीच में एक सफेद गोल टीका टिकाते हैं। शाक्त बिन्दी, शैव आड़ा, वैष्णव ठाड़ा, बैरागी चीराफाड़ा देते हैं। यथा–

वाणी–इन्दी बिन्दी देवी जी की महादेव को आड़ो ।
चीरो फारो बैरागी को चौबै जू को ठाड़ो ॥

तिलकधारियों की बातें सुन कर कथा—भक्त जी कहने लगे कि भाइयो ! और तो मैं कुछ नहीं जानता, किंतु मुझे यह निश्चय है कि कथा सुनने से मनुष्य इस संसार सागर को पार कर जीता है ॥

सत्यार्थी जी—कौनसी कथा सुनें ?

कथा-भक्त—कथा तो बहुत सी हैं पर तुम प्रथम सत्यनारायण ही की एक छोटी सी सुनों ॥

सत्यार्थी जी—अच्छा पहिले उसका माहात्म्य तो सुनादो ॥

कथा-भक्त—बहुत अच्छा ! लो ! धर ध्यान सुनों !

दुःख शोकादि शमनं धन धान्य विवर्द्धनम् ।
सौभाग्य सन्तति करं सर्वत्र विजय प्रदम् ॥ ६८ ॥

॥ अर्थ-दोहा ॥

दुःख हरणि सन्तति करणि । सम्पति की दातार ।
या व्रत कथा महात्म ते । विजय लहै संसार ॥

देखिये ! ऐसी कथाओं के सुनने में मनुष्यों को कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता । रस्ता चलते २ जहां कहीं कथा होती हुई देखी वहीं सुनने को ठठक गये ॥

सत्यार्थीजी—अरे ! ऐसी कपोल कल्पित कथाओं के सुननेसे कुछ भी नहीं होता ॥

॥ चौपाई ॥

कथा सुने नहिं पाप नशाई । व्रतते कहुं न दुःख टरि जाई ॥
कथा सुने यदि पाप नशाते । तौ सब लोग सुखी ह्वै जाते ॥
व्रत महात्म कथा अनुरागे । दुःख नहिं टरै पाप बिनत्यागे ॥

॥ दोहा ॥

माया के जंजाल में । फंस्यो बावरो चित्त ।
समझायो समझत नहीं । कथा सुनत है नित्त ॥
अर्थ न समझो बात को । ग्रन्थ न दियो मन्न ।
नगर लोग के देखते । भांड़ भयौ महा जन्न ॥

अरे भाइयो ! देखो ! भगतजी औरों को दिखाने के लिये आंख मींच कर इस मिथ्या–कथा के सुनने को अपने स्थूल शरीर से तो बैठ जाते हैं परन्तु चंचल चपल चित्त को कनक और कामिनी के कड़े फड़क्के में अड़ाये रहते हैं और यह नहीं समझते कि इस असार संसार में यही दो वस्तुऐं (कुच और कञ्चन) त्यागने के योग्य हैं । यथा—

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ॥ ६९ ॥

नारायणदास–हे सत्यार्थी जी महाराज ! आप का कहना सत्य है ऐसी मिथ्या कथा बिथा से कुछ नहीं होता । मेरी समझ में तो केवल "नारायण" नाम लैने से कोटान कोट जन्म के पाप दूर होकर मोक्ष मिल जाता है । देखिये ! श्रीमद्भागवत स्कंध ६ अध्याय २ श्लोक ८ में लिखा है । कि–जब उस (**अजामिल**) ने "नारायण" इन चार अक्षरों का उच्चारण किया तभी से वह निष्पाप होगया । यथा—

यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ७० ॥

सत्यार्थी जी–अरे ! यह कैसी ऊटपटांग कहानी है ? बताओ तो सही ! अजामिल कौन था ?

नारायणदास–महाराज ! अजामिल कन्नौज का रहने वाला एक ब्राह्मण था, जो अपने अनाथ वृद्ध माता पिता तथा अपनी सती कुलीन विवाहिता स्त्री को छोड़ दासी और उस के बालकों को प्यार करता हुआ निरंतर प्रेम प्रीति में मगन रहता था और उनके पालन–पोषणार्थ सदैव चोरी– ठगई, लूट–मार किया करता था, सदा जूआ खेला करता था, प्रत्येक प्राणी को दुःख देता था, कभी कोई सुकर्म न करता था, अन्त को ८८ वर्ष की आयु में मरते समय अपने सब से छोटे दासी–पुत्र नाम "**नारायण**" को स्नेह–बद्ध हो पुकारा । बस इन्हीं ४ अक्षरों (नारायण) कहने से मोक्ष पागया । यदि आप को यह कथा बिस्तार पूर्वक जाननाहो तो भागवत् स्कंध ६ अध्याय १–२ को पढ़ लीजिये॥

गोविन्द दास–अजी नारायणदास जी ! आप को तो ४ अक्षर कहने पड़ते हैं पर हम तो केवल "**गोविंद**" इन ३ अक्षरों से ही

अपना कान निकाल लेते हैं। देखिये! पांडव गीता में लिखा है। कि-ग्रहण के समय (उस समय का दान कोटि गुण फल प्रद होने को कहा गया है, सो) कोटि गौओं का दान काशीजी में देना; और प्रयाग में त्रिवेणी के संगम में मकर संक्रांति के समय कल्प भर स्नान करना; और यज्ञ करके ऊपर दक्षिणा में मेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण का दान देना इतना सब मिलकर गोविंद नाम के समान नहीं होता अर्थात् उक्त पुण्य से "गोविंद"- (केवल यही तीन अक्षर) कहना अधिक पुण्य होता है अर्थात् "गोविंद" कहने वाले मनुष्य का मोक्ष होजाताहै। यथा—

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी, मकर प्रयागायुत कल्पवासम्।
यज्ञेऽयुतं मेरु सुवर्ण दानं, गोविंद नाम स्मरणेन तुल्यम्॥७१॥

रामदास—अजी गोविंद दासजी! हम आप से भी अच्छे हैं। केवल ये दो अक्षर " राम " कहकर ही मुक्ति पर्य्यंत के सारे सुख प्राप्त कर ते हैं। "राम" इन दो अक्षरों का बड़ा भारी महात्म्य है। देखिये— गोसांई तुलसी दासजी ने कहा है— ॥ चौपाई ॥

महा मंत्र जोइ जपत महेशू। काशी मुक्ति हेतु उपदेशू॥
महिमा जासु जान गण राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
सहसनाम सम सुनि शिववानी। जप जेई पिय संग भवानी॥
नाम प्रभाव जान शिव नीके। काल कूट फल दीन अमीके॥
दोहा—ब्रह्म राम ते नाम बड़, वर दायक वरदान।
रामचरित्र शत कोटिमहँ, लिय महेश जिय जान॥
नाम प्रभाव शंभु अविनाशी। साज अमंगल मंगलराशी॥
शुक सनकादिसिद्धमुनियोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जगप्रिय हरि२ हर प्रियआपू॥
नाम जपत प्रभु कीन प्रसादू। भक्त शिरोमणि भये प्रहलादू॥
दोहा—राम नाम नर केसरी, कनक कशिपु कलिकाल।
जापकजन प्रहलाद जिमि, पालहिं दल सुर साल॥

सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने वश करि राखेउ रामू ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हितपरलोक लोक पितुमाता॥
नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू ॥
कालनेमि कलिकपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

तुलसी दासजी तो यहाँ तक कहते हैं। कि--

कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकैं नाम गुण गाई ॥

क्योंकि---

भाव कुभाव अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिशि दशहूं ॥

आगे बढ़कर आप ने यह भी कह दिया है। कि---

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥ ७२
श्री रामं राम रामेति ये जपंति च सर्वदा।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवत्येव न संशयः ॥ ७३

रामसनेही साधू रामचरण ने कहा है---

महमा नांव प्रताप की, सुणो सरवण चित लाइ।
राम चरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ ॥
जिन जिन सुमर्यां नांवकूं, सो सब उतर्या पार।
राम चरण जो वीसर्या, सो ही जम के द्वार ॥

राम विना सब झूँठ बतायो ॥

राम भजत छूट्या सब क्रम्मा। चंद अरु सूर देइ परकम्मा ॥
राम कहे तिनकूं भय नाहीं। तीन लोक में कीरति गाहीं ॥

राम रटत जम जोर न लागे ॥

राम नाम लिख पथर तराई। इत्यादि

साधु रामदास ने कहा है--राम भजो राम भजो राम भजो भाई॥
राम के भजे से गनिका तर गई, रामके भजे से गीध गति पाई ॥
राम के नाम से काम बनै सब, रामके भजनबिन सबहिनसाई ॥

राम के नाम से दोनों नयन बिनु, सूरदास भए कवि कुल राई ॥
राम के नाम से घास जंगल की, तुलसीदास भए भजि रघुराई ॥

हराम-में-राम

राम नगर के रामस्नेही पण्डित श्रीरामलालजी महाराज से राम गंगा के किनारे रामघाट के ऊपर रामबाग की रामकियारी के पास रामरविश पर राम सभा के मध्य राम नाम की महिमा में जो एक कथा मैंने सुनी थी उसे भी आप के कर्णगोचर करें देता हूं। अच्छा लो ध्यान धर सुनो—

दक्षिण प्रान्तान्तरगत राम राजा के राम राज्य में एक समय एक ब्राह्मण कुल घातक, आर्य्य परिवार नाशक, गोवंश विनाशक, महा दुराचारी, महा पापात्मा, महाधमाधम, महा मलीन, महा मलेच्छ मुसलमान=यवन (न नीचो यवनात परः) किसी खेत में बैठा हुआ पायखाना फिर रहा था=मल त्याग रहा था कि इतने में एक बड़े भारी भयंकर=भयानक सुअर ने आकर उसको एक ऐसी ठोकर दी कि जिसके जोर से उसी क्षण उस महा मलेच्छ चाण्डाल का प्राणान्त होगया। मरते समय उस महापापी मुसल्मान ने घबड़ाकर कहा—

हा ! हराम के बच्चे ने मारडाला

इस वाक्य के पद "हराम" में "राम" का नाम आगया इसलिये विष्णु के दूत दौड़े हुए आये और यम के हरकारों से, जोकि उसे महा रौरव नरक में ले जाने के लिये पहिले ही से तैयार थे, बलपूर्वक छुड़ा कर उस महा पापात्मा मुसलमान को हाथों हाथ विमान पर बिठलाकर वैकुण्ठ को ले चले, तब यम के दूतों ने उनको रोक कर पूंछा कि इस महा दुराचारी ने ऐसा कौनसा सुकर्म्म किया है कि जिस से इस की सालोक्य मुक्ति होगई और आप इसे विष्णु धाम को लिये जाते हो। तब विष्णु के दूतों ने कहा। कि—भाई ! इस ने "हराम" कहा था जिस में राम का नाम आया था। बस राम इतना ही कहने से इस

के सारे पाप छूटगये और मोक्ष पागया । अरे भाई ! राम नाम की महिमा बड़ी भारी है कि जिसका पार शेष और सरस्वती भी नहीं पासकते, तो फिर भला और किस की ताक़त है, जो राम नाम के प्रताप का पार पासके । अरे भाई ! अब तो मुझे पूर्ण निश्चय होगया कि आपने "हराम में राम" का अर्थ भली भांति समझलिया होगा । देख ! इसीलिये तुलसीदास जी ने कहा है— ॥ चौपाई ॥

चहुंयुग तीनकाल तिहुंलोका । भये नाम जप जीव विशोका ॥
वेद पुराण सन्तमत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
नाम रूप अति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परत बखानी ॥

सत्यार्थीजी—अरे भाई ! तू क्यों भ्रम में पड़ा हुआ है ? क्या ऐसे नामोच्चारण से कभी उद्धार होसकता है ? नहीं, नहीं, कदापि नहीं, अरे देख ! जम का भय तो बड़ा भारी है परन्तु राज सिपाही, चोर, डाँकू, व्याघ्र, सर्प, बीछू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता चाहे रात दिन " राम राम " रटा करो कुछ भी नहीं होता । देखो ! जैसे मिश्री खाये बिना केवल मिश्री मिश्री कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसेही सत्य भाषणादि सत कर्म किये और ज्ञान पाये बिना केवल " राम राम " कहने से मुक्ति नहीं होती । अरे ! यह " राम नाम " का मिथ्या महात्म्य तो केवल अपस्वार्थी लोगों ने अपना पेट भरने के लिये बना रक्खा है । और नहीं तो ज्ञान के बिना मुक्ति कभी होती ही नहीं । यथा—

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॥ ७४ ॥

अहम्ब्रह्मास्मी—अजी सत्यार्थीजी महाराज ! इसी प्रकार ब्राह्मसमाजी " पश्चात्ताप " से, प्रार्थना समाजी "प्रार्थना" से, जैनलोग "नवकार मंत्र, जप और तीर्थादि" से, ईसाई लोग "ईसाके विश्वास" से, मुसलमान लोग " तोबा " करने से पाप का छूट जाना बिना भोग के मानते हैं । परन्तु इन सब उपायों में से एक भी उद्योग मेरी समझ में तो न आया क्योंकि इन सब के करने में कुछ न कुछ परिश्रम करना ही पड़ता है

और किसी न किसी एक पर पुरुषके चरण की शरण लेनीही पड़ती है ॥

सब मिलकर=तो आपही कोई उत्तमोत्तम उपाय बताइये ॥

अहम्ब्रह्मासमी=अच्छा ! मैं ही अब आप को एक बहुत छोटासा सहज यत्न बताता हूँ। कि–जिस के करने में न कोई कष्ट सहना पड़ता है और न किसी अन्य मनुष्य से सहायता लेनी पड़ती है। या ऐसा समझिये ! कि–हरद लगे न फटकरी रंग चढ़े चोखा ॥

लो सुनों। जो कोई अपने मन में क्षण भर भी ध्यान करे कि मैं ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर हूँ। तो उसके सब पाप ऐसे दूर हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अंधेरा भाग जाताहै फिर भला ! मोक्ष होने में क्या संदेहहै ?

यथा–क्षणं ब्रह्माहमस्मीति कुर्यादात्मान चिन्तनम् ।
स सर्वं पातकं हन्यात्तमः सूर्योदयो यथा ॥ ७५ ॥

देखो–शिवलिंगार्चन पद्धति

सत्यार्थीजी–भाई ! तू सबसे बढ़कर रहा। बस, इसी लिये आज से हम तुझे "गुरू–घंटाल" की पदवी देते हैं ॥

॥ सुअर–दान ॥

शूकरदास=सत्यार्थीजी महाराज ! आपने सब की तो सुन ली, पर अब मेरी भी एक छोटी सी बात सुन लीजिये ॥

सत्यार्थीजी=अच्छा भाई ! तुम भी कहकर अपने मनकी निकाल लो

शूकरदास–महाराज ! मैं तो अच्छी तरह जानताहूँ। कि–मोक्षपाने के लिये "सुअर–दान" से बढ़कर और कोई अन्य उपायही नहीं है ॥

सत्यार्थीजी–अच्छा भाई ! तो अब इस का पूरा पूरा वृत्तान्त कह सुनाओ। कौन, कब, कहां और कैसे करे ?

शूकरदास–महाराज ! सुनिये–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वैष्णव, शैव, शाक्त में से बालक, युवा, जरठ, नर, नारी ये सबही संक्रान्ति, ग्रहण, द्वादशी, यज्ञोत्सव, विवाह, दुःस्वप्नदर्शन आदि सब ही समयोंमें

अथवा जब श्रद्धा हो तब ही कुरुक्षेत्र आदि क्षेत्रों में, गंगा आदि नदियों पर, शिवालयों और देवालयों में या अपने घर में ही आंगन के ईशान कौण में गोबर से लेपन कर उसपर कुशा बिछाय उस के ऊपर चार द्रोण या एक ही द्रोण अथवा चार सेर तिलों की "वराह-मूर्त्ति" बनाकर उस में स्वर्ण का मुख और चांदी के दन्त लगाकर पद्मराग मणि से भूषित करै, स्वर्ण की माला पहिनावे, शंख और चक्र उसके पास स्थापन करै, पुनः उस मूर्त्ति को अच्छे २ वस्त्राभूषणों से सजावै, फिर ये मंत्र—

> वाराह शेष दुःस्वानि सर्व पाप फलानि च ।
> त्वं मदीय महा दंष्ट्र भास्वत्कनक कुंडलम् ॥ ७६ ॥
> शंख चक्रासि हस्ताय हिरण्य कांति काय च ।
> दंष्ट्रोद्धृत क्षितिमूर्ते त्रयीः मूर्ते नमोनमः ॥७७ ॥

पढ़ विधि पूर्वक पूजन करै, फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार करै, पुनः उस मूर्ति को वस्त्र, भूषण और दक्षिणा सहित ऐसे ब्राह्मण को देवे— जो वेदवेदांग जानने वाला सुशील और सम्पूर्णांग हो । इस प्रकार दाता ब्राह्मण को दान देकर कुछ दूर तक पहुंचाने के लिये जावे और फिर क्षमा मांगे । बस इस दान के करने से जो फल प्राप्त होता है सो उस को भी सुन लीजिये । सब यज्ञ और सब दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल केवल इस एक "सुअर-दान" ही के करने से मिलजाताहै । वराह भगवान ने जैसे भूमि का उद्धार किया उसी तरह, यह दान (सुअर-दान) करने हारा पुरुष अपने कुल का उद्धार करता है और अपने मित्र और सम्बन्धियों सहित स्वर्ग होते हुए विष्णुलोक को पहुंचता है ॥

सत्यार्थी जी—अरे भाई ! तूने इस झूंठी कहानीको क्यों गढ़ा ?

सुअरदास—महाराज ! यह कथा मिथ्या नहीं है । यह एक सत्य कथा भविष्य पुराण में है जिसे कृष्ण भगवान ने, वराह और पृथ्वी के सम्भाषण में से लेकर राजा को सुनाई थी ॥

सत्यार्थीजी—अरे भाई ! तू अभी समझता नहीं है । पुराणों में धकोड़ मारने वालों ने बड़े बड़े कड़े कड़े गपोड़े गढ़ ठूंस दिये हैं कि जिनका कोई ओर छोर ही नहीं है । अरे भाई ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो इन मिथ्या नवीन पुराणों को तिलाञ्जली दे और सत्यवेद का सहारा ले ॥

देखो ! आर्य्यमित्र आगरा वर्ष ७ अंक ४२ पेज ७ कालम १—२ ॥

नोट—जब नकली सुअर के दान का इतना भारी माहात्म्य है तो असली सुअर के दान का न मालूम कितना बड़ा भारी माहात्म्य होगा ? इसलिये मेरी समझ में तो कल्याण (मोक्षपर्य्यन्त) के चाहने वाले पौराणिक भाइयों को और सब बखेड़े छोड़ कर केवल एक असली "सुअर दान" ही करना चाहिये न कि गोदान ॥

दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दान—त्यागी.

सप्तम—परिच्छेद

॥ तीर्थों पर जड़पदार्थ और पशु पक्षियों की पूजा ॥

नोट—वर्त्तमान कपोल कल्पित मिथ्या तीर्थों पर बहुधा जड़ वस्तुओं और पशु, पक्षी, कीट, पतंगादिकों की ही पूजा की जाती है ॥

चुन्नीलाल—(अहम्ब्रह्मास्मी की बातों को सुन कर अपने आप) हाय ! ऐसेही खुद खुदा बनने वाले लोगोंने भारतको गारत कर डाला ॥

मुन्नीलाल—अरे मेरेप्यारे भाइयो ! बहुत देर होगई अब तो इस मिथ्या प्रसंग को छोड़ो । अरे अभी तो सत्यार्थी जी को और भी बहुतसे सुकार्य्य करने हैं । देखो !यदि ऐसे अयथार्थ महात्म्यों को संग्रह करूं तो आज कल के कल्पित महाभारत से भी भारी एक थोथा पोथा बना डालूं । परन्तु उस से कोई सिद्धांत सिद्ध न होगा । पौराणिक पंडों के मत में तो ईंट—माटी,कंकर—पत्थर, घास—फूस,कूरा—कर्कट, गोबर—मूत्र,ओखली—मूसल, सिल—लोढ़ा, चक्की—चूल्हा, [illegible] भीत— [illegible]

पातर—दोना, देहली—खम्भ, जल—थल, ग्रह—उपग्रह, अग्नि—आकाश, समुद्र—पर्वत, नदी—नाले, ताल—तलैया, माट—मलैया, हाट—बाट, घाट—खाट, कूप—तड़ाग, मसीद—मकबरे, ताजिये—रोजे, कबरें—खानगाह, महल मकान, सांकर—कुन्दा और दुर्ग आदि जड़ वस्तुऐं; कीड़ी—मकोड़ी बिल्ली—कुत्ते, घोड़े—गधे, गीदड़—चमगीदड़, गाय—बैल, भेड़—बकरी, भैंसा—ऊंट, कूकर—सूकर, कछुआ—मछुआ, चील—कौए, बन्दर—छुछन्दर, सांड़—सांप, सिंह—हाथी, मूसा—मोर आदि जानवर; बड़—पीपल, बेर—गूलर, कूंचा—तुलसी, खेजड़ा—दूब, आंब—आंवला और केला आदि वनस्पति; माली—काछी, धोबी—धानुक, भंगी—चमार, आदि नीच वर्ण; पीर—पैगम्बर, मियां—मदार, भूत—प्रेत, डांकनी—सांकनी, भूतनी—प्रेतनी आदि काल्पित भावनाओं की पूजाकी जाती है। वहां तो कोई स्तोत्र, कोई पुराण, कोई उपपुराण, कोई कथा, कोई तिलक, कोई कण्ठी, कोई व्रत, कोई मास, कोई पक्ष, कोई तिथि, कोई वार और कोई नक्षत्रादि ऐसा न होगा जो एक मात्र मोक्ष का देने वाला न हो। इसीलिये वहां हिन्दू पुरोहित मतमें मुक्ती सस्ती से सस्ती यानी एक टके सेर बेची जाती है। अच्छा लो सुनो—

॥ भजन ॥

टके सेर मुक्ती बिके , लो सब इसे खरीद ।
रजिस्टरी करवाय लो , देहैं पोप रसीद ॥ हरे ॥
कुछ काम न जप तप दान से , लेलो सस्ती है मुक्ती ॥ टेक ॥
जगन्नाथ जाने से मुक्ती , झूंठा भात खाने से मुक्ती ।
अनन्त बंधवाने से मुक्ती , कहीं गंगा स्नान से ।
लेलो सस्ती है मुक्ती ॥ १ ॥
क्या खूब निकाली मुक्ती , एकादशी रहने से मुक्ती ।
मरा मरा कहने से मुक्ती , पिंड दान करने से मुक्ती ।
कभी चरणामृत पान से , कहते हैं कभी नहीं रुकती ।
लेलो सस्ती है मुक्ती ॥ २ ॥

काशी में मरने से मुक्ती , चार धाम करनेसे मुक्ती ।
ईश्वर से लड़ने से मुक्ती , जो है सिद्ध प्रमान से ।
उसकी नहिं करते भक्ती , लेलो सस्ती है मुक्ती ॥३॥
रुद्राक्ष अरु तिलक छाप से , दशम भागवतके प्रतापसे ।
कभी होवे बम् बम् के जाप से , कभी पूजन पापान से ।
शर्म्मा सुन तबियत फुंकती , लेलो सस्ती है मुक्ती ॥४॥

मोहनलाल—(मुन्नीलाल के वाक्यों को सुनकर) अरे !

इसी प्रकार ठाकुर गिरवरसिंहजी वर्म्मा ने कहा है—

दोहा—धन्य धन्य हो पोपजी, धन्य तुम्हें शतवार ।
सप्त दीप से आनि कर, लियो यहां अवतार ॥

* चौपाई *

कुटुम सहित जबसे तुमआये । पहले चारों वेद छिपाये ॥
फिर ईश्वर के पीछे धाये । बहुतक जाल गिरंथ बनाये॥
धन्य धन्य ये ग्रँथ तुम्हारे । जिन में ईश्वर न्यारे न्यारे ॥
ईश्वर निराकार अजन्मायी । जन्ममरण दिय ताहिलगाई॥
मिथ्या मत अनेक करिजारी । मूरत पूजा ख़ूब प्रचारी ॥
तेतिस कोटि देवता पूजे । अन्धा धुन्ध बहुत से सूजे ॥
चामुण्डा देवी अरु ज्वाला । ललिता माता सेंडू लाला ॥
चण्डी काली भैरव आठा । चौंसठ योगिनको ठठ ठाठा॥
छप्पन कलुआ बावन बीरा । नरसिंह बनखण्डी रनधीरा ॥
दश दिग्पाल द्वार रखवारे । दही मांस के खाने हारे ॥
क्षेत्रपाल सह दुर्गा माता । मद्य मांस ते नहीं अघाता ॥
हनूमान अरु भूत बुलावा । शंखिन डंकिन बूढ़ों बाबा ॥
सत्ती और अऊत बुलाये । मरे भये बालक पुजवाये ॥
क्षत्री एक बुँदेल मनायो । नगरसेन धोबी मन भायो ॥
लांगुर वीर किये अगमानी । आनि चमारी लोना मानी ॥

एक मसानि मसान बनायो । बकरा काटि कलेज चढ़ायो ॥
भंगी सँग जखैया आयो । सूअर काटि के लोहू प्यायो ॥
भैंसा बकरा जीव बिचारे । बलि दानन में जाते मारे ॥
नदी नाले कुआ पुजाये । तीरथ पोखर ग्राम बनाये ॥
श्वान वृक्ष गर्दभ नाहिं छोरे । कङ्कर पत्थर धातु बटोरे ॥
कहूँ कहांतक अधिक बड़ाई । जूता घूरे दिये पुजाई ॥
इतने हूँ पर नाहिं अघाये । मुसलमान मुर्दे मन भाये ॥
शेख़ सदो अरु सरवर पीरां । ख़्वाजा शाह मदारहु मीरां ॥
वीर मुहन्दा पीर बुखारी । कबरन की भई पूजा जारी ॥
हिन्दू वैदिक धर्म बिसारी । पूजें सय्यद मियां मदारी ॥
जाहर के डौरू बजवाये । बकरा मुर्गा बहुत कटाये * ॥

और इसी भांति एक और महात्मा कहगये हैं—

॥ छन्द ॥

ये चाल चलावें क्या उलटी जो पत्थर को पुजवाते हैं ।
क्यापत्थर फिर भगवान मिलें जब उनका ध्यान छुड़ातेहैं ॥
ये हाथी घोड़ा बैल गधा वो पर्वत भी पुजवाते हैं ।
अज्ञान बनाकर लोगों को येक्या क्या खेल रचाते हैं ॥
ये पेड़ पुजावें बड़ पीपल वो तुलशी का भी ब्याह करें ।
जो खावें बैठें अँवला तर वैकुण्ठ मिलै उपदेश करें ॥
सब नदी नाले ढूंढ़ चुके तब रेती पर भी वार करें ।
ये गौर पुजावें रेती की फिर रेती की भरमार करें ॥
ये कर्म करावें सब उलटे जो वेद विरुद्ध अरु मान्य नहीं ।
फिर श्राद्ध करावें मुर्दोंका भोजन भी किया मुर्दोंने कहीं ॥

अब श्रीमान् लाला ज्योतीप्रसादजी. ए. जे. देवबन्द—सहारनपुर निवासी कहते हैं—

ऊत भूत अरु पीर पैग़म्बर, मात सीतला भैरों पीर ।

सैद मसानी काली धौली, गोरख बाबा जाहर पीर ॥
इत्यादिक मिथ्या मत ध्यावैं, संडौं को मानैं गुरु देव ।
सत्य धर्म्म को भूले मूरख, करैं व्यर्थ मिथ्या मत सेव ॥

सोहनलाल—(मोहनलाल से) भाई ! आपका कहना सत्यहै । इन को आत्मबोध किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता। इसीलिये ये लोग इधर उधर भटकते फिरते रहतेहैं। इसी आशय का आपको एक भजनभी सुनाताहूं—

आत्म बोध बिन फिरें भ्रमते सब धोखे की टाटी में ।
कोई धातूमें ईश्वर मानत कोई पत्थर कोई माटी में ॥
वृक्ष में कोई जल में कोई कोई जङ्गल कोई घाटी में ।
कोई तुलसी रुद्राक्ष कोई कोई मुद्रा कोई लाठी में ॥
भगत कबीर कोईकहै नानक कोई शंकर परपाटी में ।
कोई नीमार्क रामानुज है कोई २ वल्लभ परपाटी में ॥
कोई दादू कोई गरीबदास कोई गेरू रंग की हाटी में ।
कहै आजाद भेष जो धारे चलै नर्क की भाटी में ॥

सत्यार्थीजी—अरे भाई सोहनलाल ! तूने भजन तो अच्छा ज्ञान भरा सुनाया, परन्तु ये लोग इस से क्या कुछ लाभ उठायेंगे ? नहीं कदी नहीं क्योंकि ये लोग अपने धर्म—शास्त्रसे भी तो परिचित नहींहैं। देख इन्हींके यहां लिखा हुआ है। कि—जो मूर्ख मृत्तिका, पाषाण, धातु, काष्ठ इत्यादि की मूर्त्ति को ईश्वर करके मानते हैं सो क्लेश को पाते हैं और मोक्ष को प्राप्त नहीं होते। यथा—

मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्त्तावीश्वर बुद्धयः ।
क्लिश्यन्तिं तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते ॥ ७८ ॥

तात्पर्य्य यह है कि इन लोगों के पूज्य पोपों ने—. ॥ दोहा ॥

टका कमाने के लिये, लिये ढोंग सब जोड़ ।
होकर स्वारथ के वशी, दिया धर्म्म को छोड़ ॥

इसी से— ॥ दोहा ॥

जगत पिता को छोड़ कर, करें और से प्रीति ।
पत्थर को पूजत फिरैं, खोकर कुल की रीति ॥

पर वह यह नहीं समझते कि पशु, पक्षी, वृक्ष, पाषाण इत्यादि के पूजने वाले जड़ पदार्थों से भी गये गुज़रे यानी लघु होते हैं। यथा— ॥ चौपाई ॥

जो नर पूजहिं काठ पषाना । सो उनसे हैं अति अज्ञाना ॥

क्योंकि— ॥ चौपाई ॥

जग महं जानत यह सब कोई । इष्ट बड़ो पूजक से होई ॥

और भी— ॥ दोहा ॥

जैसा पूजे देवता, तस स्वभाव हो जात ।
जड़वस्तुन को पूजिनर, आपहु मूढ़ बनात ॥

इस लिये मनुष्य को उचित है। कि— ॥ चौपाई ॥

शब्द स्पर्श रूप नहिं जाके । रस गन्धादि विषय नहिं ताके ॥
नित्य अनादि आदिहै जोई । अचल अनन्त श्रेष्ठ है सोई ॥

दोहा—लोभ मोह मत्सर नहीं, काम क्रोध मद कोइ ।
वस्तु छःओं से अलग वह, जन्म मरण नहिं होइ ॥

सोरठा—नहिं राखे मन पास, ऐसा वह परमात्मा ।
बनों उसी के दास, तज कर झूठे तीर्थ ॥
तीर्थ जल सब देव, मिट्टी पत्थर के बनें ।
करो न इनकी सेव, जपो ओ३म् एक केवल ॥

शास्त्र में यह भी लिखा है। कि—जो लोग मुझ सर्व भूत व्यापक ईश्वरको तज के प्रतिमाकी पूजा करतेहैं सो भस्ममें आहुति देते हैं। यथा—

यो मां सर्व्वेषु भूतेषु सन्तमात्मान मीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्यात् भस्मन्येव जुहोतिसः ॥ ७९ ॥

यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र ९ में लिखा है। कि—जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं

वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्य्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महा मूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महा क्लेश भोगते हैं। यथा—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूति मुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ५रताः ॥ ८० ॥

नोट—सारे सत्य शास्त्रों का निचोड़ एक यही है। कि—मनुष्य को परमेश्वर परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी उपासना न करनी चाहिये॥

❋ अष्टम—परिच्छेद ❋

॥ मिथ्या--तीर्थ ॥

प्रश्न—हरिद्वार, हरिहरक्षेत्र, काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, मथुरा, मालदह, बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर, मोरेश्वर, अयोध्या, अवंतिका, गया, गिरनार, अमरनाथ, सोमनाथ, गंगा, गोदावरी, ज़मुना, कृष्णा, कावेरी आदि हिन्दू तीर्थ और अजमेर, अमरोहा, मक्का, मदीना, क़ाबा, गंगोह, सरहिन्द, मकनपुर, पाकपटन, लएढौरा, बहरायच, पीरानेकलियर, गंगोह, शेखूपुरह, मुलतान, दजलह, फ़ुरात, नील आदि मुसलमानी तीर्थ और पालिटाना, शत्रुञ्जय, आबू, चितार, चंपापुर, राजगृही, तारंगाजी, कुण्डलपुर, पावापुरी, सिद्धक्षेत्र, श्री शैल्य, सम्मेदशिखरजी जिसको आजकल पारसनाथ पहाड़ कहते हैं, गढ़गिरनाल आदि जैनी तीर्थ और जरुसलीम, बेतलहम, रोम, बन, यर्दन आदि ईसाई तीर्थ और अमृतसर, आनन्दपुर, तरनतारन आदि नानकपंथी तीर्थ। तो क्या ये नगर और नदियां तीर्थ नहीं हैं?

उ०—नहीं महाराज ! यह तीर्थ नहीं हैं। आगे आप यह भी स्मरण रखियेगा कि थल और जल कदापि तीर्थ नहीं होसक्ते। क्योंकि

श्रीमद्भागवत पुराणमें लिखा है। कि—जलमय स्थान को तीर्थ नहीं कहते और न मिट्टी और शिलाओं की मूर्त्ति को देवता कहते हैं। जैसे—

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ८१ ॥

महाभारत' में लिखा है। कि—तीर्थ (नदी, नाले, झरने, तालाब, सरोवर और पोखर आदि जल—स्थान) और पशु हिंसक यज्ञों में और काष्ट पाषाण और मृत्तिका की प्रतिमाओं में जिन का मन है वे मनुष्य मूर्ख चित्त वाले हैं। यथा—

तीर्थेषु पशु यज्ञेसु काष्ठ पाषाण मृण्मये ।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नराः मूढ़ चेतसा ॥ ८२ ॥

नोट—इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि विद्वान लोग जल और थल को तीर्थ नहीं मानते ॥

उत्तर गीता में लिखा मिलता है। कि—वर्त्तमान में लोगों ने जलों को तीर्थ माना है औरामिट्टी पत्थर को देवता जानते हैं किन्तु परमात्मा का ध्यान करने वाले महात्मा लोग इन को नहीं पूजते। यथा—

तीर्थानि तोय रूपांणि देवान पाषाण मृण्म यान ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मध्यान परायणः ॥ ८३ ॥

नोट—इससे साफ विदित होता है कि जो मनुष्य ईश्वर से विमुख होतेहैं वही लोग जल थल को तीर्थ जानते हैं ॥ दामोदरप्रसाद.दा.त्या.

अब फिर श्री मत्भांगवत को देखिये। श्री कपिलदेव मुनि ने अपनी माता को कहा है। कि—त्रिधातु की मूर्त्तियों में जो आत्मनाम ईश्वर बुद्धि रखता है और जल को जो तीर्थ समझता है वह मनुष्य केवल बैल और गधा जैसाहै। यथा—

यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधात्तु के ,
स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः ।
यस्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कार्हिचित् ,
जनेष्व भिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ ८४ ॥

नोट—बैल और गधे जैसे मनुष्य अर्थात् मूर्ख मनुष्य ही जल और मिट्टी आदि जड़ पदार्थों को तीर्थ जान पूजते हैं। वास्तव में जड़ पदार्थ तीर्थ नहीं होते ॥ दामोदर.प्रसाद.शर्म्मा.दान—त्यागी

तनक और भी देखिये ! महाभारत में लिखा है। कि—आत्मा रूपी नदी, जिसका इन्द्रिय निग्रह अर्थात् इंद्रियों का जीतना पवित्र तीर्थ है, जिस में सत्य रूपी जल है, शील स्वभाव जिस के किनारे हैं और दया रूपी जिस की लहरें हैं। हे युधिष्ठिर ! ऐसी नदी में तू स्नान कर,जल से अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सक्ता। यथा—

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था: ,
सत्योदका शील तटादयोर्म्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र! ,
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ ८५ ॥

नोट—क्या गंगा गोदावरी आदि नदियों से आत्मशुद्धि की बुद्धि रखने वाले और महाभारत को पांचवां वेद समझने वाले मनुष्य भीष्मपितामहजीके इस उक्त वाक्य पर ध्यान न धरेंगे? दा.प्र.श.दा.त्या.

लिंग पुराण बतलाता है। कि— जिस का अन्तःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्ट भाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवरमें स्नान करनेसे शुद्ध होना कठिनहै। यथा-

भावदुष्टो ऽम्भसि स्नात्वा भस्मनाच न शुद्ध्यति ।
भाव शुद्धश्चरेच्छौ च मन्यथा न समाचरेत् ॥८६॥
सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वा प्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः ॥८७॥

नोट—जल किसी की आत्मा को शुद्ध नहीं कर सक्ता अर्थात् जल तीर्थ कदापि नहीं हो सकता है ॥ दामोदर. प्रसाद. श. दान. त्या.

ब्रह्मपुराण में भी लिखा है। कि—भीतर से दुष्ट चित्त को गंगा आदि तीर्थ का स्नान शुद्ध नहीं कर सकता। जैसे मद्य का अशुद्ध मिट्टी का बर्त्तन सौ बार जल के धोने से भी शुद्ध नहीं होता। यथा—

चित्त मन्तर्गतं दुष्टं तीर्थ स्नानं न शुद्ध्यति ।
शतशोऽथजलैर्धौतं सुरा भाण्डमिवाशुचि ॥ ८८ ॥

नोट—इस से भी जान पड़ता है कि गंगा आदि नदियां तीर्थ नहीं क्योंकि वह किसी की भी आत्मा को शुद्ध नहीं कर सकतीं ॥ दा.त्या.

श्री मनु महाराज कहते हैं । कि—जल से केवल शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से, आत्मा विद्या और तप से, और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है । अर्थात् जल से पाप दूर नहीं होते । यथा—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥८९॥

॥ अर्थ—दोहा ॥

जल सों तन मन सत्य सों, तप से आतम जान ।
शुद्ध होत बुधि ज्ञान तें, मनु यह करत बखान ॥

मनु अध्याय ५ श्लोक १०९

व्यासजी महाराज कहते हैं । कि—पराई स्त्री और पराये धन का चुरानेवाला मनुष्य यदि सारे तीर्थों को भी जावे तो भी उसका किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता अर्थात् सब तीर्थ मिलकर भी पाप दूर नहीं कर सक्ते । इस लिये मेरी समझ में तो ऐसे निरर्थक तीर्थों पर जाना ही व्यर्थ है । यथा—

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ।
सर्व तीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते ॥ ९० ॥

नोट—क्या जड़ पदार्थ भी कभी कुछ कर सक्ते हैं ?

उ०—नहीं, कभी कुछ नहीं । तो गंगा जमना आदि विचारे कल्पित तीर्थ कैसे पाप काट सकते हैं ? दामोदर प्रसाद शर्म्मा. दान-त्यागी

आगे चलकर व्यास जी महाराज फिर कहते हैं । कि—पुष्कर और केदार आदि स्थान तीर्थ नहीं हैं परन्तु इन्द्रियों का दमन करना सच्चा तीर्थ है । यथा—

इंद्रियाणि वशी कृत्य गृह एव वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ ९१ ॥
गंगाद्वारं च केदारं सन्नि पत्य तथैव च ॥ ९२ ॥

देखो ! व्यास स्मृति अ० ४ । १३–१४ ॥

नोट–पुष्कर आदि सरोवरों और हरिद्वार आदि नगरों को तीर्थ मानने वाले मनुष्यों को उचित है कि व्यासजी महाराज के इस उक्त वाक्य को ध्यानपूर्वक विचारें और अपने मन से मथुरा आदि नगरों का महत्त्व=तीर्थत्व विसारें ॥ दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्यागी

श्री शङ्कराचार्य्यजी महाराज कहते हैं । कि–गंगा सागर में स्नानार्थ जाना और व्रत रखना, ज्ञान रहित यह काम सौ जन्म तक करने से भी मुक्ति नहीं होती अर्थात् गंगा सागरादि तीर्थ किसी को भी शुद्ध नहीं करसक्ते । यथा—

कुरुते गंगासागर गमनं व्रत परिपालन मथवा दानम् ।
ज्ञान विहीनं सर्व मनेन मुक्तिर्न भवति जन्म शतेन ॥ ९३ ॥

एक और महात्मा ने कहा है । कि–दुष्ट आशय वाले दम्भी और व्यथितेन्द्रिय मनुष्य को न गंगा आदि तीर्थ शुद्ध कर सकतेहैं, न उपवास व्रत और आश्रम । यथा—

न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।
दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्यथितेन्द्रियम् ॥ ९४ ॥

नोट–अरे भाई ! मिथ्या, कल्पित, जड़ तीर्थों (गंगा, जमना आदि नदियों और मथुरा, वृन्दावन और काशी आदि शहरों)में आत्म शुद्धिके लिये क्यों भटकते फिरते हो ? आत्म शुद्धितो विद्या और तप से होतीहै । यथा—

विद्या तपोभ्यां भूतात्मा ॥ ९५ ॥ मनु अ. ५ श्लो. १०९

श्री महर्षि दयानन्द जी कहते हैं–जो जल स्थल मय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "**जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि**" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है जल स्थल तराने वाले नहीं

किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं प्रत्युत् नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उन से भी समुद्र आदि को तरते हैं ॥

देखो! सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३२५-३२६ पंक्ति २९-३० व १-२

महर्षि ने वेदादि भाष्य भूमिका में भी कहा है। कि—जल वा स्थल तारने वाले कभी नहीं हो सकते किस लिये कि जो जल में हाथ वा पग न चलावैं वा नौका आदि पर न बैठें तो कभी नहीं तर सकते इस युक्ति से भी काशी, प्रयाग, गंगा, यमुना, समुद्र आदि तीर्थ सिद्ध नहीं हो सकते इस कारण से सत्य शास्त्रोक्त जो तीर्थ हैं उन्हीं को मानना चाहिये जल और स्थान विशेष को नहीं ॥ देखो! पृष्ठ संख्या ३१९

महर्षि ने यह भी कहा है। कि—(गंगादि नदियों में स्नान और काशी क्षेत्रादि स्थानों की यात्रा से पाप नहीं छूटते) क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आंख मिल जातीं, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता (सो) ऐसा नहीं होता इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छुटता ॥

देखो ! सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३२५ पंक्ति २—३—४

मुनशी मथुरा प्रसादजी ने कहा है— ॥ चौपाई ॥

पोपन मिथ्या जाल बनाई। विविध भांति लिय जगत पुजाई ॥
श्रुति स्मृती सुनी नहिं काना। ताते मिथ्या वचन प्रमाना ॥
कछू न होत जलसे तन धोई। तप साधन बिन मुक्ति न होई ॥
सत्यधर्म बिन बिनतपसाधे। मुक्ति न लहै तीर्थ अवराधे ॥
गंग नीर सों जो नर तरते। तौ कत भीष्म तपस्या करते ॥
कृष्ण जन्म ते यमुन बड़ाई। यदु जजाति उबरे केहि न्हाई ॥
जड़को कछुक ज्ञाननहिंहोई। तीर्थ राज केहि विधि भा सोई ॥
रामचन्द्र के जन्म पिछारी। सरजू केर महातम भारी ॥
रघुदिलीपहरिचन्द्रभुवाला। मुक्ति लही किमि अज नर पाला ॥
मिलति न शिवपुर हरिपुर वासा। जल न्हाये केवल मल नाशा ॥

एक और कवि वर ने भी कहा है— ॥ चौपाई ॥

जल स्नान से शुद्ध न होई । जब लग मन वश करे नकोई ॥
क्रूर नास्तिक चंचल सोई । तीर्थ गये शुद्ध ना होई ॥

दोहा—गंगा जमुना नर्मदा । काशी और केदार ।
चित्त शुद्ध तो शुद्ध सब । जगन्नाथ हरिद्वार ॥

देखिये ! वृन्दावन वासी श्रीमान् गुपालजी कविराय ने इन जड़ तीर्थों के विषय में क्या अच्छे वाक्य कहे हैं—

दोहा—जो सांचो मन होइ तो । तीरथ मनहीं मांहि ।
कपट कतरनी पेट में । कहा होत है न्हाइ ॥

॥ कवित्त ॥

तीरथ गयौ तो न गयौ तौ भयौ कहा जाकें दया दान सचि-हिय तीरथ अभंगा है । हरि पद पाइवे कों सुख सरसाइवे कों-पापा के जराइवे कों अग्नि को पतंगा है ॥ सुकवि गुपाल भाव भगति हिय में धारि सांचो श्रीगुपालजी के रंग में जो रंगा है । होइ सत संगा कबू परे न कुसंगा सदा जाको मन चंगा तो कठौठी में गंगा है ॥

आगे कविवर श्रीवृन्दजी ने कहा है—

दोहा—चिदानन्द चित्त में वसैं । बूझत कहां निवास ।
ज्यों मृग-मद मृग नाभिमैं । ढूंढ़त फिरत सुवास ॥

कविवर श्रीचन्दजी ने कहा है— ॥ सवैया ॥

ढूंढ़ि फिरे चहुं खूंट के भीतर पूरण ब्रह्म बसे सब माहीं ।
केतिक तीरथ खोजि फिरे अरु केतिक त्यागि चले बनमाहीं ॥
केतिक सर्व पुराण को खोजत केतिक अंग विभूति रमाहीं ।
कहैं श्रीचंदविलास की मूरति है घट में घट की सुधि नाहीं ॥

नोट—क्या इन वाक्योंको सुनकर भी ईश्वर को नगर २ ढूंढ़ते फिरोगे ?

श्रीमान् कवि अनन्यजी, जोकि संवत् १७९० वि० में उपस्थित थे,

जड़ तीर्थों के विषय में कहते हैं— ॥ कवित्त ॥

वैष्णव कहत विष्णु बसत वैकुण्ठ धाम शैव कहत शिवजू कैलाश सुख भरे हैं। कहैं राधावल्लभी विहारी वृन्दावनही में रामानन्दी कहैं राम अवध से न टरे हैं॥ ए तो सब देव एक देसिक अनन्य भनै हम तुम सब आप ठौरन ज्यों धरे हैं। चेतन अखण्ड जासे कोटिन ब्रह्माण्ड उड़ैं ऐसो परब्रह्म कहा पुरिन में परे हैं॥

नोट—तात्पर्य यह है कि जो लोग ईश्वर को एक देशी समझ कर काशी, कांची, मथुरा, माया और अयोध्यादि पुरियों में जाते हैं वह बड़ी भारी भूल करते हैं॥

श्रीमान् शंकरजी कवि उन तीर्थ यात्रियोंको, जो कि ईश्वरको काशी, अयोध्या, मथुरा और द्वारिका आदि नगरों में बैठा हुआ समझते हैं, सुनाते हैं॥

॥ भजन ॥

बाहर ढूंढे वाको अन्तर का नहिं ज्ञान॥
कोऊ धावै प्राग बनारस मथुरा में हरि जान।
अवधि द्वारिका दौरे डोलें मिलत नहीं भगवान॥
बाहर ढूंढे वाको अन्तर का नहिं ज्ञान।
शंकर ने घट ही में चीन्हा अलख पुरुष निर्वान॥
जो है सो अपने में देखौ काहे कों बनाहै अजान।
बाहर ढूंढे वाको अन्तर का नहिं ज्ञान॥

नोट—इस से सीधा सिद्धान्त निकलता है। कि—प्रयाग और मथुरादि नगरों में ईश्वर प्राप्ति के लिये जाना व्यर्थ है॥ दान—त्यागी॥

इसी प्रकार श्रीमान् लाला सीताराम जी.बी.ए.डिप्टी कलेक्टर कहतेहैं-

घड़ी घड़ी में तू जो अपनो मन भटकावै।
बैठ अकेले हू तब कहा सफाई पावै॥

जो तेरे घर मांहि माल धन बनज घनेरो ।
घर ही में हरि मिलैं हेत जो हरि में तेरो ॥

देखो ! नीतिवाटिका पेज ५९

श्रीमत् काशीगिरि बनारसी परमहंसजी ने कहा है—

अरे मूढ़ अज्ञान तू क्यों भटके है चारों धाम ।
तेरे घट में हैं आत्मा रामजी ॥
उन्हें तू क्यों नहीं देखे जो हृदय में करें विश्राम ।
नाम जप तो तेरा हो नाम जी ॥
घट में आत्मा सूझ पड़े नहीं योंही गँवाई जिन्द ।
हुआ दुनियां को मोतिया बिन्द ज़ी ॥ १ ॥
गोदी में लड़का औ ढिंढोरा शहर में फिरवाते ।
मसल जो है वही हम गाते जी ॥
इसी तरह से घट में हर बाहर खोजन जाते ।
मिले नहीं उलटे फिर आते जी ॥
मुसलमान मक्के जा भटकैं हिन्दू भटकैं हिन्द ।
हुआ दुनियां को मोतिया बिन्द जी ॥ २ ॥
जगन्नाथ औ बद्रीनाथ सब हम भी फिर आये ।
विष्णु इस हिरदय में पाये जी ॥
देवी सिंह ने ज्ञान ध्यान के सदा छन्द गाये ।
राम के प्रेम चित्तलाये जी ॥
बनारसी ने ज्ञान दृष्टि से दिया जक्त को निन्द ।
हुआ दुनियां को मोतिया बिन्द जी ॥ ३ ॥
हर जगह पै देखा कहीं नहीं तू देखा ।
जहां याद है तेरी वहीं वहीं तू देखा ॥
गये बहिश्त में हम वहां न तुझ को पाया ।
बुतखाने में भी नहीं नज़र तू आया ॥

काबा किबला मक्का मसीत ढुंढ़वाया ।
काशी मथुरा में बहुत दिनों भरमाया ॥ ४ ॥
जा जा कर गङ्गा सागर सिन्धु नहाया ।
मैं तेरे इश्क में चारों तरफ उठधाया ॥
नहीं हमने प्यारे और कहीं तू देखा ।
जहां याद है तेरी वहीं वहीं तू देखा ॥ ५ ॥

नोट—इस से भी साफ़ ज़ाहिर होता है। कि—ऐसे तीर्थों पर जाना बेफ़ाइदा है ॥ दामोदर—प्रसाद—शर्मा—दानत्यागी

श्रीमान् महात्मा दादू दयाल जी कह गये हैं—

* दोहा *

घट कस्तूरी मिरिग के। भरमत फिरइ उदास ।
अंतर गति जानइ नहीं। तातें सूंघइ घास ॥ १ ॥
सब घट में गोविन्द हैं। संग रहहिं हरि पास ।
कस्तूरी मृग में बसइ। सूंघत डोलइ घास ॥ २ ॥
जीव न जानइ राम को। राम जीव के पास ।
गुरु के सबद तें बाहिरा। तातें फिरइ उदास ॥ ३ ॥
जा कारन जग ढूंढ़िया। सो है घट ही माहिं ।
मैं तैं परदा भरम का। ता तें जानत नाहिं ॥ ४ ॥
कोई दौड़े द्वारिका। कोई कासी जाहिं ।
कोई मथुरा को चले। साहिब घट ही माहिं ॥ ५ ॥
जिन्ह यह दिल मंदर कीया। दिल मंदिर में सोइ ।
दिल माहैं दिलदार है। और न दूजा कोइ ॥ ६ ॥
मीत तुम्हारा तुम्ह कने। तुम्ह हीं लेहु पिछानि ।
दादू दूर न देखिये। प्रतिबिम्ब ज्यों जानि ॥ ७ ॥
सच बिन साईं ना मिलइ। भावइ भेष बनाइ ।
भावइ कर ऊरध मुखी। भावइ तीरथ जाइ ॥ ८ ॥

पानी धोवहिं बावरे । मन का मैल न जाइ ।
मन निरमल तब होयगा । जब हरि के गुन गाइ ॥ ९ ॥
जब लग मन निरमल नहीं । तब लग परस न होइ ।
दादू मन निरमल भया । सहज मिलइगा सोइ ॥१०॥
मन लागइ जो राम सों । तीर्थ काहि को जाइ ।
दादू पानी नून ज्यों । ऐसे रहइ समाइ ॥११॥
दादू विषय विकार सों । जब लग मन राता ।
तब लग चित्त न आवइ । त्रिभुवन पति दाता ॥१२॥
इंद्री अपने बस करइ । काहे तीरथ जाइ ।
दादू तीरथ पै कहा । घरहीं बइठइ पाइ ॥१३॥
कहा हमारा मान ले । परिहर पापी काम ।
तीरथ—सनेह छांड़ि दे । दादू भज ले राम ॥१४॥

॥ चौपाई ॥

मन निरमल करि लीजइ नाम । दादू कहइ तहांहीं राम ॥१५॥

॥ दोहा ॥

ना तीरथ ना बन गया । ना कुछ किया कलेस ।
दादू मन हीं मन मिला । सत गुरु के उपदेस ॥१६॥
यह मसीति यह देवहरा । सत गुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बन्दगी । तीरथ काहे जाइ ॥१७॥
दादू मंझेही चेला । मंझे ही उपदेस ।
तीरथ ढूंढ़हि बावरे । जटा बँधाए केस ॥१८॥
दादू देखु दयाल को । सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रहा । तूं जिन जानइ दूर ॥१९॥
जल औ थल के आसरे । क्यूं छूटइ संसार ।
राम विना छूटइ नहीं । दादू भरम विकार ॥२०॥
तीरथ फिरते दिन गये । हुइ कछू नहिं पाया ।

दादू हरि की भगति बिन । मानी पछताया ॥२१॥
काया कर्म लगाइ कर । तीरथ धोवइ आइ ।
तीरथ माहैं कीजिये । सो कैसे करि जाइ ॥२२॥

नोट—पाठकों को यहां पर यहभी जान लेना आवश्यकहै। कि—दादू दयाल ने " राम " शब्द को केवल परमेश्वर के लिये प्रयोग कियाहै, जो कि सब में रमण कर रहा है या जिस में सब रमण करैं, न कि दशरथ पुत्र महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी के लिये । जैसा किं उन के वचन से स्पष्ट विदित होता है। यथा—

माया रूपी राम को—सब कोई धावइ ।
अलख आदि अनादि है—सो दादू गावइ ॥

श्रीमान् दादू दयालजी के परम भक्त श्रीमान् सुन्दरदास जी ने भी अयोध्या, मथुरा, काशी और गयादि नगरों को तीर्थ नहीं माना । यथा—

॥ इंदव—छंद ॥

कोउक जात प्रयाग बनारसि । कोउक गया जगन्नाथहि धावै ।
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु । कोउ गंगा कुरुक्षेत्र नहावै ॥
कोउक पुष्कर व्है पंच तीरथ । दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै ।
सुन्दरचित्त गड्यो घरमाहिंसु । बाहर ढूंढ़त क्यूं करि पावै ॥

श्रीमान् वर चातुर्वेदी पण्डित श्रीश्यामलालजी शर्म्मा—कवीश्वर राज्यसवाई जयपुर—राजपूताना कहते हैं— ॥ सवैया ॥

ज्ञान विना नहिं मुक्ति लहै भल कोटिन तीरथ अंग पखारे ।
ज्ञानी सदा ही विमुक्ति रहै तिन आगे ये तीरथ कोन बिचारे ॥
भाखंत वेद यही सो सही समुझौ चित दे कवि श्याम पियारे ।
क्यों भटको भ्रम से विरथा नित तीरथ है तन धाम तिहारे ॥

आगे चलकर आप फिर कहते हैं। कि—शरीर की शुद्धि के लिये भी इन कपोल कल्पित तीर्थों पर जाना निष्प्रयोजन है । क्यों कि स्थान स्थान पर कूए बावडी बने हुए हैं । यथा— ॥ दोहा ॥

सरिता ताल तलाइयां, वापी कूप तड़ाग ।
ग्राम ग्राम पुर नगर में, बने भये बड़ भाग ॥
तन पखार मन भावते, मन भर पीवो पानि ।
सुख से रहि निज गेह में, भजो सदा भगवानि ॥

श्री मान्वर पण्डित मोहनलालात्मज श्री मान्वर पण्डित गणेशीलाल जी उपनाम (देवगणेशजू) आदि वृन्दावन वासी वर्त्तमान मथुरा सुख निवासी कहते हैं—

न पातालं न च विवरं गिरीणाम् ,
नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधी नाम् ।
गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शास्वतम् ,
बुद्धि वृत्ति मवि शिष्टाम् कवयो वेदयन्ते ॥ ९६ ॥

❋ अर्थ—कवित्त ❋

उदधि महान मांहि गिरि कन्दरान मांहि हाटक वैडूर्य्य-खान मांहि गुहरायो ताहि । कुक्षि अंधकार मांहि ज्वाल झर झार मांहि धारि और कछार मांहि दृष्टि में न लायो ताहि ॥ गगन पाताल मांहि गुल्फगाल खाल मांहि द्रुम झुंड जाल मांहि ढूंढ़त थकायो ताहि । सत्‌चिदानन्द ब्रह्म कविन बतायो निज बुद्धि की गुहा के मध्य सद्य लखि पायो ताहि ॥ १ ॥

नोट—क्या इन वाक्यों को सुनकर भी मथुरा और काशी आदि क्षेत्रों में ईश्वर को ढूंढ़ते फिरोगे ?

बद्रीनाथ जगन्नाथ रामेश्वर द्वारिकादि मथुरा पयाग काशी कांची हू भ्रमायो मैं। गंडकी गंगा यमुन गोदावरी नर्मदादि सरयू त्रिवेणी नदी नदन नहायो मैं ॥ ज्वालामुखि हिंग-लाज विन्ध्याचल कांगड़ादि कामरू कमक्षा पीठ कुक्षिन को धायो मैं ॥ व्यर्थ श्रम लायो इतौ “ देव जू गणेश ” शुद्ध बुद्धि गुहा मध्य सद्य ध्येय निज पायो मैं ॥ २ ॥
मन्दिरन में न देख्यो मस्जिदन में न पेख्यो पोप गिरजान

में न दृष्टि विच आयो सो । मक्के औ मदीने में न वैतुलमक्दस में न काशी और प्रयाग में न पायो गुहरायो सो ॥ -
" देवजू गणेश " जो है दृश्यवान नाशवान प्रकृति विकार जाल जक्त मांहि छायो सो । ज्ञान कर देख्यो सदा बुद्धि की गुहा के मध्य सत्‌चिदानन्द ब्रह्मध्येय निज पायो सो॥३॥
तीर्थन में जाये ते न गंगा के नहाये ते न माला के फिराये-ते न तिलक चढ़ायेते । देवी देवतान के न मन्दिर झकायेते न होत फल झूठो जगन्नाथ भात खाये ते ॥ 'देव जू गणेश' अंग अग्निमें तपाये ते न द्वारिकादिकादि की न तप्त छाप खाये ते । पर्वत परिक्रमादिकादि के लगाये ते न तौन फल जौन सत संगति के पाये ते ॥ ४ ॥

अन्त को उक्त पण्डितजी कहते हैं । कि उक्त तीर्थादिकों में वास करने वा जाने से प्रायः कुसंग ही प्राप्त होता है । सुसंग तो ऐसे स्थानों पर मिलना महादुस्तर है । यथा—

दोहा—बहुधा तीर्थादिकन में, हो कुसंग ही प्राप्त ।
तहं थल सत संगति सदा, दुस्तर और अप्राप्त ॥

श्री मान्यवर चतुर चतुर्वेदी पण्डित श्रीराधाकृष्णजी शर्म्मा पारना आगरा निवासी कहते हैं— ॥ दोहा ॥

रहत मुनीश्वर जिन वनानि, तहँ गोवध नित होय ।
तीरथ कहँ कि कसाइ घर, जानि लेहु अब सोय ॥ १ ॥

॥ सवैया ॥

तीरथ जाहु जू तीरथ जाहु जू तीर्थ को कछु मर्म न जानत ।
भेड़ धसान कुआ में गिरें अपने मन में यह नेक न आनत ॥
बुद्धि दई परमेश्वर नें करि देखौ विचार ऋषी सब मानत ।
तीरथ शब्द कौ अर्थ यहै तरि जाइ जहां से ये शास्त्र बखानत ॥

(२)

नांहिं जू तीरथ पुण्य धरा ऋषि देव जहां ब्रह्म यज्ञ कराहीं ।
सो प्रिय आजु है विभ्रम थान लखात जु पंडनि मंदिर माहीं ॥
यात्री होंहि कुसंग से दीक्षित वेद और सास्त्रनि मार्ग पराहीं ।
निश्चय धारि अनर्थ निहारि दमोदर मित्र तहां कछु नाहीं ॥

(३)

कवि कृष्ण कहे गुनियो रे गुनी ये तीर्थ नांहिं बुड़ावन हारे ।
राह में मारत हैं बट मारू पंडनि के छल हैं बड़ भारे ॥
जाहि कहैं अटका अटका वह है गटका सुनों मित्र पियारे ।
एक छटांक हू रोज बढ़ै कहौ ताकौ प्रमाण करै को सम्हारे ॥

(४)

पोपनि ग्रंथ अनेक गढ़े गढ़ि तीर्थ महात्म अनेक बढ़ाये ।
एक सौ बर्ष की बात कहौं दतिया के महीप वटेश्वर आये ॥
पूँछौ महात्म वटेश्वर कौ गणपत्ति ने रात्रि श्लोक बनाये ।
दूसरौ तीरथ आन कहूँ नहिं प्रातहिं आइ नरेन्द्र सुनाये ॥

(५)

मुक्ति जो होती नहान में तात वृथा ऋषिदेव कियौ तप भारी ।
गात्र पवित्र करै जल निश्चय मानव शास्त्र कहै निरधारी ॥
न्हान में मुक्ति कहैं नर मूर्ख लगे निज स्वारथ में जु भिखारी ।
कृष्ण कहै यह पन्थ है अन्ध करौ वर आतम स्नान बिचारी ॥

(६)

आतम स्नान वशिष्ट कियौ अरु आतम स्नान ही कौशिक धारौ ।
आतम स्नान कियौ ध्रुव ने अरु आतम स्नान विदेह सम्हारौ ॥
आतम स्नान कियौ हरिचंद ने आतम स्नान श्रीराम बिचारौ ।
आतम स्नान सों मुक्ति लहै नर आतम स्नान ही तीरथ भारौ ॥

(७)

ईश्वर है सब के घट में अरु पूरि रह्यौ ब्रह्मांड के मांहीं ।
वेद पुराणरु शास्त्र भनें फिर क्यों भटकै नर मूढ़ वृथाहीं ॥
द्वारिका जाइ अघाने नहीं जगन्नाथ में जाइ कें जूठन खाहीं ।
आतम तृप्त भयौ न कहूं फिर अन्त समय योंहीं पछिताहीं ॥

श्रीमान् मुन्शी वृन्दावनजी अनुवादक आदाबुल हिन्द और व्यवहार भानु आदि काशीपुर निवासी कहते हैं—

जगन्नाथ, बद्रीनाथ, रामेश्वर, द्वारिका, गंगा, यमुना आदि तीर्थों में मोक्ष के लिये भ्रमण कर के धन का वृथा व्यय करना ज्ञानी पुरुष का काम नहीं। गंगा आदि नदी विशेष में तारने की शक्ति नहीं। इन में अपने हाथ पैर अथवा नौका द्वारा तरना सम्भव है अन्यथा डूबना। शास्त्रवेत्ताओं ने कहीं भी इन का नाम तीर्थ नहीं लिखा। शास्त्रों के तीर्थ वह हैं, जिन से प्राणी तरकर मोक्ष पर्य्यन्त के सुख प्राप्त कर सकता है अर्थात् वेदादि सत् शास्त्रों को पढ़ कर उन के गूढ़ आशय रूपी तीर्थ म जो स्नान करता है अथवा दर्शन करता है वही मनुष्य तीर्थ यात्रा का सुख लाभ करता है अन्यथा नहीं ॥

जो मनुष्य वा स्त्री जगन्नाथादि के दर्शन को जाते हैं उन को सब वर्णों की जूंठ खाने के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं। जूंठ खाने का शास्त्रों में अत्यन्त निषेध किया गया है इसे मूर्खों ने धर्म मान लिया। इस लिये कदापि अमूल्य समय को इन वृथा कामों [तीर्थ—यात्रा] में नष्ट करना नहीं चाहिये ॥ देखो ! " नारीभूषण " पृष्ठ ७७ ॥

नोट—वास्तव में इन जड़ तीर्थों में घूमना और धन व्यय करना वृथा है ॥ दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दान—त्यागी—मथुरा

श्रीमान् शास्त्री महादेवप्रसाद जी ने भी गंगा जमनादि नदियों को तीर्थ नहीं माना। यथा—

॥ कवित्त ॥

कोई कहे मुक्ति होत गंगा नर्मदा न्हाये, कोई कहे चारो धाम

तीरथ के करेते। कोई कहे मुक्ति होत एकादशी व्रत किये, कोई पुनि कहे मूर्ति पत्थर के पूजेते ॥ कोईकहे मुक्तिहोत ईसा अरु मूसा भजे, कोई कहे बिहिश्त होत कलमा के पढ़ेते। भने महादेव ये हैं मिथ्या भ्रम जाल सब, मुक्ति होत केवल ईश्वर ही के भजे ते ॥

श्रीमान् चौधरी नवलसिंहजी वर्म्मा मुज़फ्फ़राबाद ज़िला सहारनपुर निवासी कहते हैं—

॥ भजन ॥

चाहे फिर तू गया प्रयाग चाहे काशी में प्राण त्याग।
चाहे गंगा यमुना चाहे सागर में न्हावे।
बिना ज्ञान जीव कोई मुक्ति नांहिं पावे ॥
द्वारिका और रामेश्वर चाहे बद्रीनाथ पर्वत पर।
चाहे जगन्नाथ में तू भ्रष्ट भात खावे।
बिना ज्ञान जीव कोई मुक्ति नांहिं पावे ॥
शेर—मुक्ति के साधन मिले सब वेद के दरम्यान में।
सुन कथा तू वेद की क्यों भ्रमता अभिमान में ॥

* लावनी *

मन्दिर मसजिद मक्के में नहीं गिरजा ठाकुरद्वारे में।
नहीं शंख नहीं घण्टे में नहीं हूहू बांग पुकारे में ॥
नहीं धरती नहीं आकाश में नहीं सूर्य्य चंद्र तारे में।
नहीं गङ्गा नहीं यमुनामें नहीं सरयू सिन्ध किनारेमें ॥
तिलक छाप नहीं कण्ठी में नहीं गेरुआ वस्त्र धारे में।
नहीं मुक्ति बिन ज्ञान ज्ञान मिलता है वेद विचारे में ॥ १ ॥
जगन्नाथ के नहीं भात में नहीं जूंठ के खाने में।
नहीं काशी में नहीं प्रयाग में नहीं त्रिवेणी न्हाने में ॥
नहीं गोकुलमें नहीं मथुरामें नहीं नन्दगांव बरसानेमें।
नहीं द्वारिका रामेश्वर नहीं बद्रीनाथ के जाने में ॥
नहीं पीपल नहीं तुलसीमें कुछ नहीं बेल की पत्री में।

नहीं मुक्ति बिन ज्ञान ज्ञान मिलता है वेद विचारे में ॥ २

और भी——

दशवें द्वार का भेद न जाने द्वारका जावें क्या मतलब ।
हरिछाप है हृदय पै फिर देह दगावें क्या मतलब ॥
जगन्नाथ सारे जग में फिर उड़ीसा धावें क्या मतलब ।
सारे जगत की जूठ खाय के भ्रष्ट कहलावें क्या मतलब ॥
मात पिता को घर में छोड़कर इत उत जावें क्या मतलब ।
उलटे मार्ग में चल कर हम दुःख उठावें क्या मतलब ॥ ३ ॥

श्रीमान् बनारसीदासजी ने, जोकि लावनी के रंगरंगीले छैल छबीले मशहूर शायर थे, कहाहै ——

* लावनी *

कोई पुकारैं ईसा मूसा कोई महम्मद हद में हैं ।
कोई कृष्ण की कथा कहावैं कोई जिद बेहद में हैं ॥
कोई काशी कोई जाते मथुरा कोई मक्के की वद में हैं ।
कोई मर्दाना जाय पुकारैं भोगें राह के सदमें हैं ॥
कोई संग असवत को चूमें कोई पूजा के मद में हैं ।
कोई वपतिस्मा जल को छींटें कोई न्हाते महनद मेंहैं ॥
नहीं गिरजा मसाजिदमें वो और नहीं वो चारोंधाममें है।
सच पूछौ तो फ़कत आराम " राम के नाममें है " ॥

देखो ! आर्य्यमत—मार्तण्ड—नाटक पेज ९१—९२

नोट—" राम के नाम में है " अर्थ " ईश्वर की आज्ञा में है "

एक और महात्मा कहते हैं——

जिया जग भ्रमना यों तेरा मिटैना——टेक

शेर—पूजे है माता÷कभी सीतला÷भैरों÷काली÷ ।
देवी÷कभी दक्ष÷कभी यक्ष÷की शरणा जाली ॥
भूत कभी प्रेत कभी पूजे है पत्ता डाली ।
ब्रह्मा÷कभी विष्णु÷कभी पूजता शंकर ÷ बाली ॥ १ ॥
मिथ्या से मनुवा क्यों तेरा हटैना——

शैर—मानता मुक्ति कभी गंग के न्हाने से ।
पार होता है कभी काशी में मर जाने से ॥
वर्फ़ में गलने से कभी अग्नि में जल जाने से ।
यज्ञ के बीच कभी जीवों के मरवाने से ॥ २ ॥

श्रद्धा यह मन की क्यों तेरे घटैना—

शैर—पार होने की अगर दिल में हो वांछा तेरे ।
तज कर मिथ्यात धरम वेदका सरणा लेरे ॥ इत्यादि

नोट—यहां पर ÷ यह नाम ईश्वर वाचक नहीं हैं । यहां तो इनके अर्थ हिन्दुओं के चौमुखे, चौभुजे आदि मांस मदिरा खाने पीने वाले देवों के हैं जोकि गधा, कुत्ता, सिंह, हंस, गरुड़, बैल आदि पशु पक्षियों पर चढ़कर भ्रमण किया करते हैं ॥

श्री मान् बाबा जोधासिंह जी ने कहा है— ॥ वचन ॥

तीरथ छेत्र जाय के कीन्हा । जड़ वस्तुन पर ध्यान ।
पाप कटा न लाभ भया । अरु मिला न कुछ भी ज्ञान ॥
तीरथ गये का यही महातम । फिर फिर पूजें पानी ।
एकहु मत सुमन नाहिं आवे । बूड़ मरे वड़ ज्ञानी ॥

कबीर साहब ने भी इन बनावटी तीर्थों का खण्डन किया है और सच्चे तीर्थों के करने का उपदेश दिया है । यथा— कबीर साहब की यह एक कथा प्रसिद्ध है कि एक बार उनके घर में कई साधू आये जोकि तीर्थ यात्रा के लिये भ्रमण करने चले थे । कबीर जी ने उनका आदर सत्कार किया और चलते समय अपना तुम्बा दिया और कहा कि आप जिस स्थान स्नान करें उस स्थान पर कृपा करके मेरे तूंबे को भी स्नान करादेना । साधूओं ने ऐसाही किया और दो चार वर्ष पीछे जब वह लौटकर कबीर जी के घरपर आये तो उनका तूंबा उन को दिया और कहा कि आप की इच्छानुसार हमने इस को सारी सरिता, सारे सरोवर और सरित्पति में स्नान करादियाहै । रात को कबीर साहब ने साधुओं को जो भोजन जिमायाथा वह बहुत ही

कड़वा था जिसे वह लोग खा न सके। तब साधुओं ने कबीर जी से पूंछा कि क्या आपने हम से ठठ्ठा किया है? कबीर जी बोले कि नहीं, मैं ने तो परीक्षा लीथी कि इतने तीर्थों में गोते खाने पर भी मेरा तुम्बा मीठा हुआ या नहीं? सो मैं ने दिखलाया है कि जैसा यह पहिले कड़वा था वैसाही अब भी है तीर्थों ने इसका कुछ भी सुधार न किया ॥

॥ वचन ॥

काशी गया द्वारिका सब तीरथ भटकत फिरया।
टाटी खुली न भर्म की तीरथ किया तो क्या किया॥

शब्द—गंगा फिरा हरद्वार का गुदड़ी लिया मन चारका।
भटका फिरातो क्या हुआ जिन इश्क़ में शिरना दिया॥
क़ाबा गया हाज़ी हुआ मन का कपट मिटा नहीं।
हाज़ी हुआ तो क्या हुआ क़ाबा गया तो क्या हुआ॥
बोस्तां गुलिस्तां पढ़गया मतलब न समझा शेखका।
आलिम बनातो क्या हुआ फ़ाजिल हुआ तोक्याहुआ॥

दोहा—न्हाये धोये क्या हुआ—जो मन मैल समाय।
मीन सदा जल में रहे—धोये बास न जाय॥

वचन—माला पहरी तिलक लगाया लंबियां जटा बढ़ाताहै।
अन्दर तेरे कुफ़्र कटारी यों नहीं साहब मिलता है॥

नोट—मतलब यह है। कि—जब तक मन शुद्ध नहीं होता तब तक ईश्वर का मिलना मुश्किल है॥

आगे चलकर कबीर साहबने यह भी कहाहै। कि—जब तक मन मैला रहेगा तब तक सिर मुड़ाने, दण्डवत करने, नदी में न्हाने, माला फेरने, मुसलमानको नमाज़ पढ़ने, रमज़ानमें रोज़ा रखने और हिन्दूको एकादशी का व्रत करने से कुछ भी फ़ाइदा न होगा। यदि परमेश्वर मन्दिर में ही मिले तो सारी सृष्टि किस के रहने का स्थान है? भला किसी को राम मन्दिर में भी मिला है? हरि का पुर पूर्व में और अली का शहर पश्चिम में कहतेहैं परन्तु अपने मनको खोजो वहीं राम रहीम = करीम दोनोंहैं।

जिसने यह जग रचा और जिसको सन्तति अल्ला और राम दोनों हैं वही मेरा गुरु है वही मेरा पीर ॥ देखो ! धर्म्म प्रचार पेज ५६॥

यह कह कर कबीर साहब ने अपने मित्रों को उपदेश दिया कि भाई ! जल और थल तीर्थ नहीं हैं। सच्चे तीर्थ तो मन की शुद्धि, पवित्राचार, विद्याभ्यास और ईश्वर-स्मरणादि कर्म हैं कि जिन करके मनुष्य भव सागर से पार होते हैं अन्यथा नहीं ॥

श्रीगुरू बाबा नानक देवजी ने भी जलस्थल आदि जड़ पदार्थों को तीर्थ नहीं माना। देखिये ! आप एक बार सं० १५६३ वि० के २७ चैत्र को उड़ीसा में जगन्नाथ पुरी पहुंचे और मन्दिर की आरती के समय वहां के पण्डों से अलग होकर आप ईश्वर स्तुति के गान गाने लगे तब पण्डोंने कहा—हमारे संग क्यों नहीं गाते ?

गुरूजी—हमारी और तुमारी आरती में बहुत भेद है ॥

पण्डे—क्या अन्तर है ?

गुरूजी—आप की आरती तथा जगन्नाथ दोनों कृत्रिम हैं। और हमारी आरती तथा जगन्नाथ दोनों स्वतः सिद्ध हैं ॥

पण्डे—बाबा ! हमारे जगन्नाथ से भिन्न वह कौन तुमारा जगन्नाथ है जिसको तुम स्वतः सिद्ध मानते हो। जगन्नाथ तो संसार मात्र में यह एक ही हैं ॥

गुरूजी—जगन्नाथ नाम सर्व जगत के स्वामी का है। वह कदापि किसी एक देश में नहीं रहसक्ता। किन्तु सर्वत्र रहना चाहिये। अथवा जो एक देशी होगा वह कृत्रिम विनाशी होने से सर्व जगत् का स्वामी ही नहीं होसकता ॥

पण्डे—बाबा ! जो आपने कहा सभी यथार्थ है। तो भी सेवा पूजा के लिये परिच्छिन्न की कल्पना करनी ही पड़ती है ॥

गुरूजी—धर्मी में विरुद्ध धर्म की कल्पना धर्मी के मूलका विघातक होती है इसलिये कल्पना भी उचित ही करनी चाहिये ॥

पण्डे—बाबा ! भला तुम ही अपनी कल्पना कहो ॥

गुरूजी—हमने तो आप लोगों को: प्रथम ही कहा था कि हमारी कल्पना नहीं है किन्तु सब ही ठाट स्वतः सिद्ध हैं ॥

पण्डे—कौन सभी ठाट आपने स्वतः सिद्ध मान रक्खे हैं ?

गुरूजी— जगन्नाथ और उसकी आरती इत्यादि ॥

पण्डे— स्वतः सिद्ध जगन्नाथ की कौन स्वतः सिद्ध आरती है ?

गुरूजी— सर्वान्तर्यामी परमेश्वर हमारा जगन्नाथ है । उस की आरती भी सदा आप से आप हुआ करती है । उस स्वयं होने वाली आरती का यह सारा आकाश मण्डल थाल रूप है । सूर्य्य तथा चांद यह दो उस में प्रज्वलित दीपक हैं । तारागण का मण्डल उस महाथाल में विचित्र मोती हैं । मलयगिर चन्दन से आदि लेकर अनेक सुगन्धित पदार्थ धूप रूप हैं । चमर रूप वायु है । संसार मात्र की वनस्पति प्रफुल्लित पुष्प हैं । स्वयं होने वाला पांच प्रकार का अनहद शब्द घण्टे, घड़ियाल, भेरी, मृदंगादि रूप हैं इत्यादि स्वतः सिद्ध पदार्थों से स्वतः सिद्ध जगन्नाथ की आर्ती स्वतः सिद्ध सर्वदा हो रही है । उस महा प्रभु की आरती करने की हमारे में सामर्थ्य नहीं । किन्तु हम स्वयं उस की आर्ती होती को देख विचार कर आश्चर्य्य हो सकते हैं। तथा उस को महिमा सहित स्मरण कर कृतार्थ हो सकते हैं ॥ देखो— इतिहास गुरू खालसा पन्ना १०७-- १०८ ॥

आगे बाबा नानक देव जी ने निम्न लिखित वाणी कहते हुए पोप कपोल कल्पित वर्तमान प्रचलित तीर्थ, तिलक, छाप, माला, कण्ठी और मृतक श्राद्ध—तर्पण का भी भली भांति खण्डन किया है । यथा—

॥ चौपाई ॥

शांत सरोवर मंजन कीजै । जित की धोती तनपर लीजै ॥
ज्ञान अंगोछा मैल न राखो । धर्म जनेऊ सत मुख भाखो ॥
मस्तक तिलक दया का दीजै । प्रेम भक्ति का अचमन कीजै ॥

जो जन ऐसे कार कमावे । माला कण्ठी सकल सुहावे ॥

॥ वाणी ॥

जीवित पितर न माने कोऊ मूए श्राद्ध कराहीं ।
पितर बपरे को क्या पावे कौवा कूकुर खाईं ॥

॥ वार्त्ता ॥

नहाये धोये हरि मिलें तो मेंडक मच्छियां १ ।
दूध पिये हरि मिलें तो बालक बच्छियां २ ॥
तिलक लगाये हरि मिलें तो हस्ती हस्तियां ३ ।
मूड़ मुड़ाये हरि मिलें तो भेड़ बस्तियां ४ ॥

नोट– १मछली । २ गायके बच्चे । ३ हथिनीं । ४ एक प्रकार की बकरियां ॥

इसी भांति श्रीमान् पण्डित श्रीश्यामजी शर्म्मा काव्य तीर्थ हेड पण्डित जिला स्कूल पुर्णियां व हाई स्कूल भागलपुर–बिहार कहते हैं—

शीश पै लगावो सत्य भाषण के चंदन को ,
चादर अहिंसा की शरीर पै धरे रहो ।
ज्ञान का अंगोछा हाथ लेके मन मैल पोंछ ,
दया की लंगोटी दिन रात ही कसे रहो ॥
तोष की नदी में नित स्नान करो प्रेम साथ ,
पर उपकार माल गले में धरे रहो ।
धीरज के आसन पर बैठो दिन रात प्यारे ,
ईश्वर के ध्यान रूप तीर्थ में पड़े रहो ॥

देखो–" खड़ी बोली पद्यादर्श " पृष्ठ ३७ ॥

श्रीमान् लाला चिम्मनलाल जी वैश्य कासगञ्ज निवासी कहते हैं– हे प्रिय वर पाठक गणो ! तनक ध्यान दीजिये ! यदि जल में स्नान करने या दर्शन करने या रेणु का के मुंह में डालने [या कण्ठी बांधने या माला जपने या तिलक लगाने या नाम लेने] से ही मुक्ति और

पापों की निवृत्ति होती तो फिर वेदोंके यह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य्य व्रतधारण करो, धर्मानुसार धन को उपार्जन करो, सत्पुरुषों का संग करो, सत्पुरुषों को दानदो, यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जायंगे। इस के उपरान्त जब स्नान करने ही से मोक्ष मिलता है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाताहै कि " ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः "। यदि स्नान ही मुक्ति का कारण होता तो प्रयाग में भारद्वाज, हरिद्वार में मैत्रय, सोम क्षेत्र पर कण्व जी, नीम सारण्यमें सूतजी, सिद्धाश्रममें विश्वामित्रजी, चित्रकूट में वाल्मीकजी, दण्डक वन में अत्रि जी, शरभंग जी, मधुवन में ध्रुव जी आदि ऋषि मुनि हवनादि, यम, नियम, योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट कदापि सहन न करते ॥

इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्र महाराज ने रामायण में निज मुख से वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है इसकी क्या आवश्यकता थी। राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे, श्रीकृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करने का महात्म्य वर्णन किया है ॥ देखो " नारायणी शिक्षा " पेज ४४९ ॥

नोट--यदि सरजू और जमुना में स्नान करने से मोक्ष होजाती होती तो राम और कृष्ण ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना कदापि न करते और न औरों को ऐसा करने के लिये उपदेश देते। परन्तु वो [राम अरु कृष्ण] तो सदैव दोनों समय [प्रातः और सायं) परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करते थे। यथा—

॥ चौपाई ॥

बिगत दिवस मुनि आयसु पाई।
संध्या करन चले दोउ भाई ॥

नोट—दोउ भाई= राम—लक्षमण ॥ अर्ध सोरठा ॥

ताहि दियो उपदेश । गायत्री गुरु गर्ग मुनि ॥

अर्थात् गर्गमुनि ने कृष्ण को ईश्वर की प्रार्थना करना सिखाया ॥

नूतन सनातन धर्म्म के स्तम्भ [स्तम्भ] श्रीमान्यवर पण्डित श्रीभीमसेन जी शर्म्मा सम्पादक " ब्राह्मणसर्वस्व " मासिक पत्र इटावा भी इन नगर नदियों को तीर्थ नहीं समझते । देखिये ! आप स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य आजकल तीर्थ सेवन से मुक्ति मानते हैं और वैसे ही प्रमाण भी बनालिये हैं " काशी मरणान्मुक्तिः " काशीमें मरने से मुक्ति होजाती हैं इस प्रकार मानने वाले लोगों से कोई पूछे कि यदि कोई मनुष्य जन्मभर ब्रह्म हत्यादि महापातक करे और मरते समय काशी में पहुंच जावे तो क्या वह महापातकों का फलभागी नहीं होगा ? यदि महापातकी जन उस काशी मरण मात्र से मुक्त हो जावें तो उन के लिये फल कहने वाले धर्म्म शास्त्र व्यर्थ होजायंगे । देखो ! मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ५३ से ८२ तक ॥

यदि काशी में मरने से मुक्ति होती है तो कीट पतंग पशु पक्षी मण्डूकादि जल जन्तु जो सैंकड़ों मरते हैं उन की भी मुक्ति होती होगी । और जो ऐसा माने उन के प्रिय को यदि काशी में कोई मार डाले तो प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि उस की तो मुक्ति होगई इसीलिये काशी में हत्या करने वाले को पाप न होना चाहिये किन्तु पुण्य होना ठीक है और जितने लोग काशी में तीर्थ करने जाते और वहां के मरण से मुक्ति समझते हैं तो उन को वहां से फिर लौट आना उचित नहीं क्योंकि मुक्ति का द्वारा छोड़ के चले आवें फिर मरते समय वहां पहुंचना कठिन है इस लिये शरीर को वहीं समाप्त कर मुक्ति को प्राप्त करें । और गंगा जी के दर्शन से मुक्ति मानली तो उस के लिये काशी में मरने से मुक्ति मानना व्यर्थ हुआ इत्यादि असंख्य शंका इन तीर्थों में उत्पन्न होती हैं जिन का समाधान होना महा असम्भव है । ऐसी शंका करने वालों को लोग अपनी अज्ञानता से नास्तिक कहने लगते हैं और यह

भी विचार में नहीं आता कि जन्म भर के पाप एक वार किसी पदार्थ के दर्शन करने मात्र से छूट जावें यह कैसे सम्भव है ? । योग शास्त्र की रीति से जब तक अविद्यादि क्लेशों का मूल रहता है तब तक उस का फल, जाति, आयु और भोग होता रहता है सो किसी गंगादि के दर्शन से अविद्यादि क्लेशों की निवृत्ति कर्म। त्याग से सिद्ध हो सकती है ? अर्थात् कदापि नहीं । और बड़ा विरोध वेदादि सत्य शास्त्रोंसे आता है वेद में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय॥९७॥

अर्थ—उसी एक सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को ही जान के मनुष्य जन्म मरण से छूटता है अर्थात् आत्म ज्ञान से भिन्न मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं है ॥

परन्तु आजकल इस भारत वर्ष में भिन्न २ मतानुसार अनेक मुक्ति के मार्ग प्रचरित हो रहे हैं । जो लोग वेदको सर्वोपरि मानने वाले हैं वे तो कदापि उस से विपरीत को न मानेंगे । और जो लोग पाप निवृत्ति होना तीर्थों का फल मानते हैं वह भी यथार्थ नहीं ज्ञात होता क्योंकि पाप पुण्य का आश्रय अन्तः करण है उस में संस्कारों की वासना रूप से पाप पुण्य स्थित रहते हैं उन अन्तः करणस्थ मलीन वासनाओं की निवृत्ति अन्तः करण की शुद्धि से होती है और वह शुद्धि शुभ कर्मानुष्ठान की वासना बढ़ने से होती है । किन्तु किसी जलाशय के विशेष स्नान वा दर्शन से होना दुस्तर है ॥ देखो ! तीर्थ विषयःनामक पुस्तक पृष्टि २–३–४ ॥

नौ योगीश्वरों ने महाराजा जनक से कहा था—

सर्व भूतेषु यः पश्येद्भगवत् भाव मात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ९८ ॥

श्री मद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २ श्लोक ४५

अर्थ— जो मनुष्य सब जगह, सब प्राणियों में, परमात्मा का अनुभव

करता है, सब जगह परमात्मा ही को देखता है। वही उत्तम भगवद्भक्त है। वही उत्तम ईश्वर का प्रेमी है॥

नोट– इस के विरुद्ध वह मनुष्य जो ईश्वर को एक स्थान पर बैठा जान कर उस की झांकी–यात्रा को जाता है, बड़ा मूर्ख है अर्थात् जड़ वस्तुओं को तीर्थ समझना अज्ञानता का कार्य्य है॥ दान–त्यागी॥

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
नतद्भक्तेषु चान्येषु सभक्तः प्राकृतः स्मृतः॥ ९९॥
भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २ श्लोक ४७॥

अर्थ– जो मनुष्य बुद्धि से प्रतिमा ही में श्रद्धा रखता है, जो रात दिन, सारी आयु मूर्तियों ही की पूजा किया करता है और भगवान् के भक्तों में जिस की कुछ भी श्रद्धा नही है, वह मनुष्य मूर्ख है, अधम है, नीच है॥

नोट—केवल अज्ञानी ही लोग पाषाण और मिट्टी की मूर्तियों को पूजते हैं और जल–स्थल को तीर्थ समझ यात्रा करने जाते हैं॥ तात्पर्य्य यह है कि जड़ पदार्थों में न तीर्थभाव करना चाहिये और न ईश्वर भाव रखना चाहिये॥ दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा– दान–त्यागी॥

श्री कृष्णचन्द्र जी ने उद्धव जी से कहाथा—तुम सब जगह ईश्वर की भावना रक्खो। ऐसा समझ ने वाला पुरुष परम गति को पाता है, वह संसार से छुट जाताहै॥ देखो–भागवत स्कन्ध ११ अध्याय ७ और बाल भागवत पृष्ठ १३८॥

नोट—क्या श्रीमद्भागवत को पढ़ने और सुनने वाले श्री कृष्णचन्द्र के भक्त श्री कृष्णमहाराज के इस वाक्य परभी ध्यान न धरेंगे। अर्थात् क्या अबभी ईश्वर को एक देशी जान या मथुरा, वृन्दावन, काशी, केदार आदि स्थानों में बैठा हुआ समझ उक्त स्थानों की यात्रा करते फिरेंगे? नहीं भाई नहीं! ईश्वर प्राप्ति के लिये शहरों में घूमना और नदियों में न्हाना अत्यन्त वृथाहै॥ दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्यागी॥

महाभारत, आदि पर्व, अध्याय: २८ में लिखा है। कि— सत्यवतीके प्रिय पुत्र कृष्ण द्वैपायन = श्री वेद व्यास जी ने पाण्डवों की मृत्यु के पश्चात् अपनी माता से कहा था— अब दुष्ट समय आवेगा तुम यहां से वन में अम्बिका और कौशल्या को लेकर चली जाओ और योगाभ्यास करो जिससे तुम्हारा कल्याण हो। यथा——

संमूढां दुःख शोकार्त्तां व्यासो मातरम ब्रवीत् ॥१००॥
बहु माया समा कीर्णो नाना दोष समाकुलः।
लुप्त धर्म क्रियाचारो घोरः कालो भविष्यति ॥१०१॥
कुरूणाम न याचापि पृथिवी न भविष्यति।
गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने ॥१०२॥

नोट— यदि व्यास जी गंगा आदि जड़ तीर्थों से कल्याण या पाप का नष्ट होना मानते तो अपनी माता को इन तीर्थों में ही स्नान या यात्रा करने को कहते और वन में योग करने का कष्ट न सहने देते परन्तु वह महर्षि इन नगर— नदियों को तीर्थ नहीं समझते थे बस इसी लिये उन्हों ने अर्थात्——

अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः १ ॥१०३॥

ने अपनी माता को अनुमतिदी= प्रार्थना की। कि——

वन में जाकर योगाभ्यास करो॥

हिन्दुओं के—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवतों और नारद आदि मुनियों ने भी जगन्नाथ आदि धामों को तीर्थ नहीं माना। देखिये—— एक समय देवताओं में झगड़ा हुआ कि पूजा प्रथम किस की होनी चाहिये। यह सुन ब्रह्मा ने कहा कि जो कोई " पृथ्वी—प्रदक्षिणा " करके अर्थात् पूर्व में जगन्नाथ उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारिका, दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर और इन के मध्य में जितने तीर्थ क्षेत्र हैं उन

१— पौराणिक लोग ऐसा कहते हैं किन्तु वास्तव में व्यास जी ने इन पुराणों को नहीं बनाया॥

सब की यात्राकर के और जितनी नदियां हैं उन सब में स्नान करके सब से पहिले आजायगा वही प्रथम पूजनीय होजायगा । यह सुन सब अपने अपने वाहन पर चढ़ चढ़ के दौड़े परन्तु गणेशजी पीछे रहगये और घबड़ाये क्योंकि उन का वाहन एक छोटा सा बिचारा मूसा था जोकि बहुत हौले हाले चलता था और आप का शरीर बहुत स्थूल था (क्योंकि बहुत खातेथे) । तब नारदजी ने कहा कि तुम ! रामकी, जो कि सब में रम रहा है या जिस में सब रम रहे हैं, मानासिक परिक्रमा करलो । बस यही तुम्हारी सच्ची पृथ्वी प्रदक्षिणा होजायगी क्योंकि पृथ्वी भी तो **राम**=ईश्वर रचित है । और नहीं तो केवल **पृथ्वी**=जड़ पदार्थ की परिक्रमा करने से कोई लाभ न होगा । नारद के इस उपदेश से महेश के पुत्र गणेश ने ऐसाही किया और उन सब हिन्दू देवों ने मिलकर नारद के प्रस्ताव को प्रसन्नता पूर्वक पास करके गणेश को सब देवों में प्रथम पूज्य बनादिया । बस इसी कथा का आशय लेकर गोसाईं तुलसीदास जी ने कहा है— ॥ चौपाई ॥

महिमा जासु जान गण राऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥

नोट—क्या इस कथा को श्रवण करके भी मेरे प्यारे तीर्थ प्रेमी पौराणिक भाई राम=ईश्वर को छोड़कर नगर नगर की डँगर डगर में और नदियों के तटों पर मटकते हुए अटकते भटकते ही फिरते फिरेंगे ? और क्या अब भी इन जड़ तीर्थों की यात्रा के लिये सैंकड़ों कोस चल कर अपने सहस्रों रुपयों को, जिनको एक बड़े परिश्रम से पैदा किया है, व्यर्थ व्ययही किया करेंगे ? प्यारो ! खूब याद रखना इन दर्यायों और शहरों की सैर करने से आप को कोई फ़ाइदा न होगा, लेकिन दौलत, ताक़त और अक़्ल का नुक़सान तो ज़रूर होजाइगा ॥

ज्ञान संकलिनीतन्त्र श्लोक ४८ और ४९ में शंकर ने कहा है—

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः ।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानने ॥ १०४ ॥

अर्थ = हे पार्वती ! तमोगुण युक्त लोग शिव को कहीं अन्य स्थान में और शक्ति को कहीं अलग स्थान में जानकर और गंगा जमनादि नदियों को देखकर, "यही तीर्थ है--यहां तीर्थ है" ऐसे भ्रम में पड़कर सर्वत्र घूम रहे हैं। हे वरानने ! आत्मतीर्थ के ज्ञान बिना जीव को किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सक्ती अर्थात् नगर नदी और जड़ मूर्त्तादिकों को तीर्थ समझना और उन के सहारे भवसागर पार होना मानना एक महान अज्ञानता है ॥

यथार्थ वार्त्ता यह है। कि-- जल के स्नान करने से, नगरों में भ्रमण करने से और जड़ मूर्त्तियों के पूजने से मुक्ति नहीं होती और नहीं पाप कटते। वरन आत्मिक ज्ञान ही मुक्ति का कारण है। जैसा य० अ० ३१ मं० १८ में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥१०९॥

अर्थ = उसी एक सर्व साक्षी परमात्मा को जान कर जन्म मरण से छूट सकता है अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥

❀ नवम—परिच्छेद ❀

॥ मिथ्या तीर्थों पर कौन और क्यों जाते हैं ? ॥

प्रश्न—यदि यह उक्त नगर और नदियां तीर्थ नहीं हैं तो सहस्रों वरन लक्षों मनुष्य वहां मेलोंपर तीर्थ—यात्रा को क्यों जाते हैं ?

उत्तर—जितने लोग वहां जाते हैं उतने सब तीर्थ—यात्री नहीं होते और न वह सब लोग उन स्थानों को पुण्य—क्षेत्र या पवित्र स्थान ही समझते हैं। उन में से कुछ व्यौपारी, कुछ भिखारी, कुछ रोज़गारी, कुछ लबारी, कुछ ज्वारी, कुछ टण्टारी, कुछ व्यभिचारी, कुछ धर्मप्रचारी जैसे आर्य्य, कुछ मत पसारी जैसे ईसाई, कुछ प्रबन्ध कारी जैसे पुलिस, कुछ चोर, कुछ जार, कुछ उठाईगीरे, कुछ लुटेरे, कुछ गठ कटे, कुछ बतंकटे कुछ कौतुक कारक, कुछ कौतुक दर्शक होते हैं। और जो कुछ शेष

मनुष्य इन इस्थानों को तीर्थ जान कर आते हैं उनमें से कुछ थोड़े से पढ़े लिखे होते हैं परन्तु यह पढ़े लिखे हुए भी सत्यासत्य का निर्णय न करने वाले, निज पन्थ के पक्षपाती और हठीले होते हैं। और बाकी के सब अनपढ़ और अज्ञान = मूर्ख लोग आंखें बन्द करके, हानि लाभ न सोच के, धर्माधर्म न विचार के और अन्ध विश्वास पर आरूढ़ हो के भेड़िया धसान कर एक दूसरे के पीछे चल पड़ते हैं। जैसे अंधा धुन्ध भेड़ के पीछे भेड़ और ऊंट की दुम से ऊंट बन्धे हुए बिना देखे भाले घोरमवार दलदले कूप में जा गिर पड़ते हैं। यथाः—

॥ दोहा ॥

देखा देखी करत सब। नाहिंन तत्त्व विचार।
याको यह अनुमान है। भेड़ चाल सन्सार॥
अन्धा अन्धे मिल चले। दादू बांधि कतार।
कूप पड़े हम देखते। अन्धे अन्धा लार॥

श्रीमान् पण्डित बंशीधर जी पाठक तो यहां तक कहते हैं कि जमना, कृष्णा, गंगा, गोदावरी आदि नदियों के मेलों पर जाने वालों में से तीन चौथाई प्रायः स्त्रियों के दर्शन के लिये ही जाते हैं॥

देखो—गंगा माहात्म्य पृष्ठ ३४ पंक्ति ९॥

एक महात्मा कहते हैं। कि—उक्त तीर्थ स्थानों पर तीर्थ यात्रा के बहाने से सैंकड़ों बरन सहस्रों पापात्मा, दुष्टात्मा, दुरात्मा, दुराचारी, कुविचारी, अविचारी, भृष्टाचारी, व्यभिचारी, अधर्मी, कुकर्मी, हत्यारे जाते हैं क्योंकि उन को वहां कुकर्म जैसे व्यभिचार और भ्रूणहत्यादि करने के लिये बड़ा सुभीता मिलता है॥

इस बात को सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि जितनी भ्रूणहत्या = गर्भपात और जितने व्यभिचार, इन तीर्थ क्षेत्रों पर होते हैं उतने और कहीं नहीं होते॥ दामोदर—परशाद—शर्म्मा—दान—त्यागी

इन तीर्थ स्थानों पर इतने सण्डे, रण्डे, गुण्डे, लुण्डे, लुच्चे, कुचे,

व्यभिचारी आते हैं कि जिन के कारण सहस्रों कुलवन्तिन भ्रष्ट हो जाती हैं ॥

बस इन्हीं कुलवंतिनों को भ्रष्ट होते हुए देखकर आप अपने मनके भावों को निम्न लिखित पंक्तियों द्वारा प्रगट करते हैं ॥

* चौपाई *

भ्रष्ट भई कुलवंतिन जाई । सो तीरथ कैसो रे भाई ॥
श्रवण सुनें अरु नयनहु सूझें। ताहू पर मूरख नाहिं बूझें ॥
आपुगये अरु औरहि घाला। दुहू लोक से भये निराला॥

देखो—सतमतनिरूपण पन्ना ९३ ॥

श्रीशिवदास जी महाराज कहते हैं । कि—काशी में शिव-यात्राके मिससे इतने भ्रष्टा चारी गेरूए वस्त्र धारी संन्यासी)और इतनी दुराचारिणी=व्यभिचारिणी आकर रहीं हैं और अब भी आती जाती रहती हैं कि जिनके आक्रमणों =दुराचारों से बचने के लिये बड़े बड़े चतुर मनुष्यों को बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं । बस इसी आशय को लेकर किसी अनुभवी ने सत्य कहा है । कि—

राण्ड़ साण्ड़ सीढ़ी संन्यासी । इन से बचै तो सेवे काशी ॥

श्री कृष्णदास जी महाराज कहते हैं । कि—बहुधा छली, कपटी, पाखण्डी, दुराचारी, दुर्जन अच्छे अच्छे घरानों की विधवा युवतियों को उनका धन लेने और धर्म = सतीत्व नष्ट करने के लिये तीर्थ यात्रा के नामसे मथुरा, काशी और अयोध्यादि नगरों में लेजाते हैं ॥

॥ भजन ॥

कोई हरि की लगन लगाय । तारक तीरथ पै लै जाय ॥
जन्म जन्म के पातक टार । ठोकर मार करै उद्धार ॥

इसी प्रकार श्री रामदास जी महराज कहते हैं—सण्डे—पण्डे, स्वारथी—सन्यासी और जोगी—जंगम आदि मिथ्या भेशधारी, तीर्थ—पुरोहित,

गुरू और धर्मोपदेशक बन कर बहुधा उच्च जाति के प्रतिष्ठित और भले भले कुलों की भली भली भोली भाली बाल विधवा अक्षतयोनि (Untouched) युवावस्था की युवतियों अर्थात् तरुणाई और अरुणाई आई हुई तरुणियों (बहू बेटियों) को मुक्ती का लोभ--लालच देकर और मिथ्या--मीठी, चिकनी--चुपड़ी बातों से बहला--फुसला कर मोहित करके काशी, प्रयाग, मथुरा, और वृन्दावन आदि शहरों में, जिन को कि आज कल पवित्र--तीर्थ, पुण्य--क्षेत्र और मुक्ति दायक स्थानों के नाम से मशहूर कर रक्खा है, ले जाते हैं। और फिर वहां उनका धन और धर्म्म=पतिव्रतापन लेकर उन्हें छोड़ अलग हो जाते हैं। यथा--

॥ शेर ॥

देकर लालच मुकत्ती का तीरथ पर ले जाते हैं।
फिर वेवों को वश में अपने खूब बनाते हैं॥
जब उनके धन और धर्म को चट करलेते हैं।
तब उनको छोड़ निढाल अलग हो रहते हैं॥

और भी--

सण्डा मुसण्डा पण्डा जोगी विरागी हैं।
संन्यासी स्वारथी व ये जंगम उदासी हैं॥
ये बदमआश कर्म धर्म नष्ट करते हैं।
शादी दोयम का सरपर इलज़ाम धरते हैं॥

श्री विष्णुदासजी महाराज कहा करते हैं। कि--बहुधा हिन्दुओं में बड़े बड़े धनाढ्यों की धनान्ध बुढ्भस मूर्ख स्त्रियां अपना धन दिखाने के लिये अपनी नवोढ़ा बहू--बेटियों को नित नये वस्त्र-भूषण पहना कर न्हाने के बहाने से गंगा--जमनादि नदियोंपर लेजाया करती हैं॥

नोट--ऐसी औरतें गंगादि नदिओं में तीर्थभाव नहीं रखतीं। मेरे मुहल्ले में भी एक--दो अधेड़ बुढ्भस ऐसी हैं जो गौने आई हुई

अपनी पुत्र—वधुओं को १६ शृंगार कराके लोगों को दिखाने के लिये जमना—स्नान के मिस से नित्य बज़ारों में घुमाती हुई घाट पर लेजाती हैं और उनके सम्बन्धी (भाई, भतीजे, ससुर, देवर, जेठ, आदि) दूकानों पर बैठे हुए निर्लज्जों की भांति मुटुर मुटुर देखा करते हैं और यदि कोई भला मानस कहै तो उसको बंदर की तरह घुड़की देने लगते हैं ॥

श्रीकालीदास जी कहते हैं—बहुधा अच्छे अच्छे और बड़े बड़े कुलों की कुल्टायें अपना निबटारा निबटाने के लिये तीर्थों पर जाया करती हैं। इनमें से कोई २ तो गर्भपात कर और कोई२ बच्चा जन और उस बच्चे को किसी निपुत्री=सन्तान रहित को देकर या कहीं किसी जंगल में रखकर और फिर निशंक—बेखटके हो घर पर लौट आकर तीर्थ यात्रा की गप्पैं हांकने लगतीं हैं ॥

पौराणिक पण्डित श्री श्रोत्रिय **शंकरलालजी** बिजनौर निवासी कहते हैं-बहुतसी विधवा स्त्रियां तीर्थ यात्रा का बहाना करके तीर्थों पर सब तरह का आनन्द लूटने को (व्यभिचार करनेको) जाती हैं। न कि तीर्थ करनेको ॥ देखो ! अबला हितकारक मासिकपत्र बरेली वर्ष ५ अ.८ पृ.२२पं. १५-१६.

श्रीगणेशदासजी कहते हैं—बहुधा ऐसे बहुत से अधर्मी तीर्थों पर जाते हैं जो तीर्थ पुरोहितों के वस्त्राभूषणादि पदार्थ और रुपये पैसे लेकर चम्पत हो जाते हैं। कोई कोई पण्डों से नक़द उधार लेकर चलते होते हैं। कोई कोई तीर्थ पुरोहितानियों से कुकर्म्म कर जाते हैं। और कभी कभी किसी पण्डाइन को भी भगा लेजाते हैं ॥

श्री**शंकरदास**जी कहते हैं-बहुधा शौक़ीन लोग सैर करने के लियेउन शहरों में भी, जोकि तीर्थों के नाम से मशहूर हैं, जाया करते हैं। जैसे मथुरा वृन्दावन में सामन के झूले, गोवर्द्धन में दिवाली अयोध्या में हिंडोले बनारस में बुढ़वा मंगल का मेला, प्रयाग में गंगा जमना का संगम, उज्जैन में क्षिप्रा नदी के बीच जल महल, जगन्नाथ और द्वारिका में समुद्र, हरिद्वार में गंगा से नहर का निकास आदि देखने को। परन्तु स्वर्ग के

आढ़तिये इन मुसाफ़िरों को तीर्थ-यात्री ही समझा करते हैं। क्योंकि वह यात्री लोग उन्हीं स्वर्ग के ठेकेदारों के घरों में जाकर उतरते हैं। और वही लोग (सण्डे पंण्डे) सैर कराने वाले के समान उन सैर करने वालों को प्रत्येक स्थान दिखाते हैं और अपनी मिहनत के टके (जो कुछ भी हों, कभी कमती बढ़ती भी) ले लेते हैं। और बस यही टके तीर्थ पुरोहिती दक्षिणा कहलाती है ॥

अब आप उन वाक्यों को भी पढ़ियेगा; जोकि गत प्रयाग—कुम्भ पर पौराणिकों के धर्म्म सम्बन्धी विषयों के विज्ञापन में लिखे हुए थे और उन वाक्यों की नकल बिजनौर निवासी नवीन सनातनी. पण्डित-श्री श्रोत्रिय शंकरलालजी के मासिक समाचार पत्र नाम "अबला-हितकारक" वर्ष २ अंक १—२—३—४ के पृष्ट ७—८ में लिखी हुई है ॥

॥ वाक्य ॥

यह क्षेत्र भी सत्पुरुषों ने महात्मा और विद्यार्थियों के वास्ते लगाये थे परन्तु अब उन को तो मिलता नहीं। केवल असाधू और लंठ ही उस से लाभ उठाते हैं। इसलिये यातो उन को बन्द करदिया जावे तो तीर्थों में पाखण्डी लोग न जासकें या उनकी व्यवस्था ठीक की जावे ॥

नोट = इस से स्पष्ट विदित होता है कि तीर्थों में पाखण्डी = छली = कपटी लोग बहुत जाते हैं ॥ दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी ॥

श्रीमान् लाला चिम्मन लाल जी वैश्य कासगञ्ज निवासी कहते हैं—वहां (तीर्थों पर) रण्डियों के समूह के समूह जाते हैं और तबला खड़कता है देखो "नारायणी शिक्षा" पृष्ट ४४८ पंक्ति २५

नोट— इस से स्पष्ट विदित होता है कि बहुत से कामी पुरुष तीर्थों पर जाते हैं ॥ दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी ॥

श्री मान्वर पण्डित गणेशीलाल जी मथुरा निवासी कहते हैं—

कवित्त— तीर्थ स्थल पर्वन पै देव स्थल सर्वन पै आय आय जुटै लोग लालची लफंगा है। जासों कछुपावें ता के गुण गण गावें सदा जासों नहिं पावें तासों ठानते मुदंगा है ॥ भिक्षुक

गरीबन को बढ़ने न देत आगे भीड़ में घुसेड़ हाथ मांगता दबंगा है। " देवजू गणेश " की सौं भूल कैं न जैयै तहां जो पै मन चंगा तो कठोटी मांहि गंगा है॥

नोट = इस से भी साफ़ मालूम होता है कि तीर्थों पर बहुधा लालची और निकम्मे लोग ही जाया करते हैं॥ दा. प्र. श. दा. त्या.

श्रीमान् पण्डित **रामचरणलालजी**—होशंगाबाद—तीर्थ यात्रियों के विचार ओर कर्त्तव्य निम्न प्रकार लिख दिखाते हैं—

हमारे भाइयों को बिलकुल ख़बर नहीं कि दुनियां के अन्दर क्या करना धर्म्म है ? तीर्थ क्या है ? मेला किस को कहते हैं ? बस, आया कोई पर्व जैसे संक्रांति, ग्रहण आदि। तीर्थों को जाने वाले आपस में मिल सलाह करने लगे। कहिये आप की क्या राय है ? चलियेगा क्या ? हां चलेंगे तो परन्तु ठहरने वग़ैरह का कैसा क्या करोगे ? अजी ! ठहरने का क्या हर कहीं ठहर जायंगे या अपना ही एक पाल तान लेंगे मजे से ढोलकी खटका कर तान टप्पे उड़ायेंगे, रात तो यों व्यतीत हो ही जाया करेंगी, दिन को आनन्द के साथ मेला में घूम अनूठे दृश्य देख जी की तपन शान्ति करेंगे। यों हीं विचार करते २ समय आपहुंचा। अब कोई तो गाड़ियों, कोई घोड़ों, कोई अन्य २ सवारियों द्वारा तीर्थ मेला में पहुंचने लगे, शेष जहां तहां आगे पीछे गोल के गोल पैदल चिलम धुंधकाते, भंग घोटते, बीड़ी गांजा आदि पीते पाते हे, हे, हा, हा, ठट्ठा, मसकरी, हास्य विलास (अन्य २ स्त्रियों से) करते कराते, मौज उड़ाते, बैठते बाठते पहुंचते हैं। फिर कोई तो अपना डेरा डंडा जमा झट पट खाने पीने की फ़िकर करते। कोई अपनी मधुर तान सुना दृश्यकों की तबियतों को ख़ुश करते। कोई तट पर जा यह इच्छा रखते कि नवीन २ सुंदरियों के अंगादि अवलोकन करैं। कोई इस ताक में रहत कि यदि किसी की नज़र चूके तो कोई चीज़ हाथ लगे। कोई अपने तईं भक्त कहलाने वाले.

जै जै शब्द रूपी आवाज़ से गला फाड़ २ अपने को धन्य २ समझ रहे हैं। कोई वेश्याओं के, कोई वेड़नियों के, कोई भांड़ भगतियों के, कोई लड़कों के नाच, कोई नटों के खेल, कोई बाज़ीगरों के तमाशे, कोई पहलवानों की कुश्तियां, कोई भंगेड़ियों, गंजेड़ियों, चरसियों, शराबियों की बेहोशियों के चरित्रों को देख देख खुश होरहे हैं। कोई इधर उधर के नये पुराने मकानों को देखते फिरते हैं। कोई किसी के माल मारने की ताक में बैठा है। कोई किसी की बहू बेटी या लड़के को भगालेजाने की फ़िक्र में है। कोई किसी का हमल गिराने की चिन्ता में है। कोई किसी भगालाई हुई औरत या लड़की के बेचने की धुनि में है। कोई अपना माल बेचने में लगा है। कोई ख़रीद ने में। दूसरे तीर्थों के पण्डे अपने अपने तीर्थों में लेजाने के लिये मुसाफ़िरों की तलाशमें इधर उधर घूमते हैं। कोई नाम मात्र के साधु कहलाने वाले धूनी लगाये, चीमटा बगल में दबाये, गांजा पीने की आश लगाये यात्रियों से कहरहे हैं " लाओ बचा! गांजा के लिये पैसा " बस, तात्पर्य्य यह है कि तीर्थक्षेत्र पर जाने वाले सब लोग अपनी अपनी सांसारिक वासनाओं में फंसे हुए रहते हैं। परन्तु धर्म्म चर्चा का नाम तक कोई वहां नहीं लेता॥ देखो! " तीर्थ---राज " नाम पुस्तक पृष्टि १—२—३॥

नोट—यदि ये यात्री धर्म्म चर्चाही के भूखे होते तो अपना घर छोड़ ऐसे निरर्थक तीर्थों में ही क्यों जाते और अपने अमूल्य समय और धन को क्यों व्यर्थ व्यय करते? दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी

बहुधा बड़े बड़े उठाई गीरे साधुओं का भेष धारण करके केवल माल मारने के लिये ही तीर्थों पर जाया करते हैं। देखिये! अभी थोड़े दिन की बात है कि इटारसी में एक जटाधारी साधु नाम भगवान दास उमर २२ साल का जाकर रणछोरजी के मंदिर में ठहरा। यह साधू (तस्कर) जगन्नाथ का जूठ भ्रष्ट भात खाता हुआ, द्वारिका में

देह दगाता हुआ और नासिक गोदावरी क्षेत्र में स्नान करता हुआ वहां पहुंचाथा। तारीख़ ८-८-०८ई० को दिनके १२ बजे मौका पा मन्दर के अन्दर घुस गया और ठाकुरजी का कुछ ज़ेवर [१ सोने का कंठा ६ चांदी के हाथ पैर के कड़े और १ मुकुट अनुमान ९६) रुपये का माल] उतार गठरी बांध चलने को तैयार हुआ। पर अचानक वह पकड़ागया। और पुलिस ने अदालत में चालान कर दिया॥

बस ऐसे ही चोट्टे (माल मारू) बहुधा तीर्थों पर जाया करते हैं॥

नोट = खेद है कि जब रंछोर जी अपनी ही सहायता न कर सके तो फिर वह अपने भक्तों की सहाय क्या कर सकैंगे ? न मालूम मेरे प्यारे भोले भाले भले भाई इस पाषाण- पूजन से कब किनारा कशी करेंगे ? देखो- आर्य्य सेवक बर्ष ६ अंक ३ पृष्टि २ कालम ३॥

और भी सुनो- इन कल्पित मिथ्या जड़ तीर्थों पर दुरात्मा-पापात्मा, दुराचारी-अत्याचारी, कुकर्मी-अधर्मी, लुच्चे-टुच्चे, चोर-छछोर, जार-मार, ज्वारी-टंटारी, शराबी-कबाबी, भंगड़ी-गंजड़ी, कुविचारी-व्यभिचारी, लड़ाकू-डाकू, चुटेरे- लुटेरे, चटोरे- उठाईगीरे और मालमारुओं के जाने का यही एक बड़ा भारी प्रमाण है कि सरकार को इन बदमाशों के दबाने के लिये पुलिस के भेजने में लाखों का व्यय = खरच करना पड़ता है॥

गंगा जमना पर के मेलों में बहुधा बड़े बड़े बखेड़िये = उपद्रवी जाकर बड़े बड़े बखेड़े = उत्पात किया करते हैं। इसीलिये भले लोग वहां जाना प्रसन्न नहीं करते। सुनिये—॥ मेला—बुराई॥

अतिहि अनुचित हाय प्रिय मेला न देखन जाइये।
कुपथ का हेला ये मेला कबहूं चित न चलाइये॥
हाय इन मेलों ने खोया खोज शुभ आचार का।
कर दिया मेलों ने अंटाधार धर्म प्रचार का॥
हाय दुष्टन तिय पुरुष कितने हीं विभचारी किये।

छल प्रपंच प्रचारि इकठे चोर औ ज्वारी किये ॥
देश के लुच्चे लुंगाड़े गोल बान्धे फिरत हैं।
छीन इज्ज़त लेत क्षण में वस्त्र भूषण हरत हैं ॥
देखि सुमुखी नारि धक्के मारि मन मानी करें।
उच्च कुल अवलान के धन धर्म की हानी करें ॥
बहुत दुष्टा चारिणी तिय जायं मेला देखने।
देखि सुन्दर पुरुष दृग मटकाय अलबेली बने ॥
फांसि अपने जाल में बहुतों का तन मन धन हरें।
हाय अनरथ करत तनकौ भय न ईश्वर को करें ॥
हाय इन मेलों ने खोया खोज भारत खण्ड का।
भय न तनकौ करत मन में देखिये यम दण्ड का ॥
भूल कर कबहूं सुता कीजै न ऐसे काम को।
मातु पित पति के न अब कीजै कलंकित नाम को ॥

देखो ! प्रसिद्ध आर्य्य कवि श्रीमान् ठाकुर बलदेवसिंहजी वर्म्मा कृत "भामिनी-भूषण" पृष्ठ ६० ॥

॥ श्रीमान् पण्डित दीन-दयालुजी का पत्र ॥

कल प्रयागराज में आमावस्या का स्नान था। बंद तक राजीखुशी पहुंचे। उस से आगे चलकर भीड़ में पड़ गये। कैसी भीड़ थी बयान कहां तक करूं ? आदमी पर आदमी इस तरह गिरता था जैसे बादल पर बादल बरसात में दिखाई देता है। यकायक समुद्र की भांति धक्कों की लहरें उठने लगीं। मैं ने बच्चों की जान को खतरे में देखा। यहां तक कि एक दो धक्के ऐसे आये कि बच्चे भीड़ में जान से हाथ धो बैठें। मैं घबरागया। पण्डित श्रीकृष्णजी शास्त्री और पण्डित शम्भुदत्त और मैं तीन तथा दो नौकर साथ थे। हम पांच पुरुषों ने पूरी मर्दानगी और बहादुरी से स्त्रियों और बच्चों की रक्षा की। मेरे निश्चय में तो कल चाचाजी और आप के पुण्य की बदौलत हमारी औरतें और

हमारे बच्चे आफ़त से बचे हैं। चाचाजी झझ्झर में बैठे हुए और आप कलकत्ते में बैठे हुए अपने पुण्य से हमारी रक्षा करते हैं या यों कहो कि बेनीमाधव ने हमारी रक्षा की। वापिस बन्द के ऊपर आये और दारागंज गये। वहां के पुल से पार होकर तीन मील पार पार च- लकर त्रिबेनी की तरफ़ गये और उधर से स्नान किया। फिर आराम से घर चले आये। सुनाहै कि तीस या चालीस आदमी कल उस भीड़ में जान से मरगये। कुछ अस्पताल में पड़े हैं। जो गिरगया वह फिर उठ ही न सका॥

यह सब मुसीबत इस वास्ते थी कि यह साधु लोग अपनी शाही कुम्भ पर निकालते हैं। उस की वजह से चौड़ा रास्ता तो रुकजाता है इधर उधर से लोग निकाले गये। तंग रास्ता रहगया उधर गँवार लोग उस शाही को देखने के वास्ते भी खड़े होगये इसी से यह हालत संसार की हुई। कल से जो मिलता है अपने स्नान की रिपोर्ट ख़तर नाक लफ़्ज़ों में सुनाता है। हर आदमी को तकलीफ़ हुई है। क्यों नहीं इन अखाड़े वाले साधुओं को समझाया जाता कि दुनियां को त्याग कर भी आप शाही का ख़ब्त क्यों करते हैं? पचासों हाथी लेकर बाजा बजाकर ऐसे रजोगुण से दुनियां को और गवर्नमेण्ट को तंग करना कैसी फ़क़ीरी है? मुझ को तो यह भीड़ भाड़ देखकर कल ऐसी नफ़रत हुई है कि अब जन्मभर बाल बच्चों और कबीले को लेकर किसी मेले पर तीर्थ स्नान करने नहीं जाऊंगा। इस पर्व का मजा देख लिया। राम राम! कैसी दुनिया को तकलीफ़ होती है और कितना सरकारी अफ़सरों को परेशान रहना पड़ता है। इन्तज़ाम क्या ख़ाक किया जाय दुनियां का भी कुछ ठिकाना हो। स्वर्ग के लालची हिन्दुओं ने इतनी भीड़ करदी कि क्या अर्ज़ करूँ? बाबा! अजीब भेड़िया धसान मज- हब है। अगर यह जोश और यह श्रद्धा किसी दानाई से काम में लाई जावे तो हिन्दू धर्म्म की कितनी तरक्की होसकती है। मगर सब जोश

बे मानी और बे तरीक़ा है। अच्छा ! भगवान् इस श्रद्धा को बनाये रखै कभी यह श्रद्धा कामे आजावेगी ॥

कल शाम को पिंडाल में जाकर मैंने सुना कि बड़े २ आनरेबल और वकील और रईस और सब डेलीगेट अपने २ स्नान की कथा आपस में कर रहे हैं जो कहता है सो मुसीबत ही मुसीबत का वर्णन करता है। जिन लोगों ने आदमियों को गिरते—पिसते और मरते—तड़फते देखा और मुर्दों की लाशों के ऊपर से आदमियों को गुज़रते देखा उनकी बातें सुन कर रोंगटे खड़े होते थे। मगर पुलिस और अफ़सर लोग बराबर इन्तज़ाम में सरगर्म देखे गये ताहम नुक़सान ज़रूर जानों का हुआ ॥

यह चिट्ठी उक्त पण्डित जी ने प्रयाग से सम्पादक भारतमित्र कलकत्ता को लिखी थी ॥ देखो ! आर्य्यमित्र आगरा वर्ष ८ अं. ६ पे. ४ का.५

नोट—उक्त पण्डितजी (**दीन दयालुजी**) एक बड़े भारी कट्टर हिन्दू हैं। आप ही अनरजिस्टर्ड महामण्डल के प्रधान वक्ता वा नेता ही नहीं वरन उस के संस्थापक भी हैं। आप ही ताली बजा बजा कर कृष्ण लीला मिश्रित व्याख्यानों के देने में प्रसिद्ध हैं ॥

❋ दशम—परिच्छेद ❋

॥ गङ्गा जमनादि नदियों की पूजा ॥

प्रश्न—यदि गंगा—जमनादि नदियां तीर्थ नहीं हैं तो उन की पूजा क्यों की जाती है ?

उ०—अज्ञानता से। जैसे कि "**शन्नोदेवी०**" और "**गणानां त्वा०**" मन्त्रों में "**देवी**" और "**गण**" शब्द होने से मिट्टी की **देवी** और गोबर के **गणेश** की पूजा करते हैं। इसी प्रकार निम्न लिखित मन्त्र में **गंगा, जमना, सरस्वती** और **प्रयाग** शब्द आने से **गंगादि** नदियों को पूजते हैं। और नहीं तो वास्तव में अर्थ यह है।

कि—इडा नाड़ी **गंगा** के नाम से और पिंगला नाड़ी **यमुना** के नाम से प्रसिद्ध है। और इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उस को **प्रयाग** कहते हैं जो मनुष्य इन को जानता है वह वेद का जानने वाला है। यथा—

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित्॥ १०६॥
देखो—बृहत्सामब्राह्मण॥

इसी प्रकार **याज्ञवल्क्य** शिक्षा में लिखा है। कि—**कालिन्दी** वेदसंहिता का नाम है और यदि वेद मन्त्रों के पदों को पृथक् पृथक् पढ़ा जावे तो उस का नाम **सरस्वती** है और जो वेद मन्त्रों को क्रम से पढ़ा जाय तो उस को विद्वान **गंगा** के नाम से निरूपण करते हैं और यही शम्भु अर्थात् महादेवजी की वाणी है। यथा—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेण कीर्त्तिता गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा॥१०७॥

इसी प्रकार एक और महात्मा कहते हैं। कि—वाम नाड़ी **गंगा,** दक्षिण नाड़ी **यमुना,** सुषुम्ना नाड़ी **सरस्वती** व **त्रिवेणी प्रयागादि** सम्पूर्ण तीर्थ स्वांस में प्रणव को स्मरण करने को कहते हैं यही तीर्थ तारने योग्य हैं और इस से पृथक् जल स्थान नदी वगैरह जड़ पदार्थ तीर्थ नहीं हैं। यथा—

इडा गंगेति विज्ञेया पिंगला यमुना नदी।
सरस्वती सुषुम्नातु प्रयागादि समस्तथा॥१०८॥
देखो—मुक्ति मार्ग प्रकाश पृ० ३९ श्लोक १४७॥

प्यारे भाइयो! इस अन्धेर खाते का वर्णन मैं कहां तक करूं। देखिये! यजुर्वेद अध्याय ३२ मंत्र ३ (**न तस्य प्रतिमा अस्ति**) में "**प्रतिमा**" शब्द के आने ही से पौराणिक लोग पाषाणादि मूर्तियों का पूजन करने लगे॥

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १ (ईशा वास्य मिदं०) में "ईशा" शब्द के होने से ही ईसाई लोग वेद में "ईसा" का महत्त्व दिखाने लगे ॥

यजुर्वेद अध्याय ३६ मन्त्र २४ (शतमदीनाः स्याम०) में "मदीनाः" शब्द को देख कर ही मुसलमान = मौलवी साहब वेदों में "मक्के मदीने" का महात्म्य बताने लगे ॥

परन्तु ये बिचारे लोग यह नहीं जानते कि वर्त्तमान शब्दों के अर्थ वेदों में कुछ और ही लिये गये हैं यथा—

* अर्थ *

वर्त्तमान शब्द	पुराणों में	वेदों के लिये निघंटु में
विष	ज़हर	जल
पुरीष	विष्ठा	जल
वराह	सुवर	मेघ
गौरी	महादेव की स्त्री	वाणी
यम	यमराज का नाम	ज्ञान गमन प्राप्ति
गया	एक विशेष स्थान लोगों के लुटनेका	अपत्य धन गृह
अमृत	जिस के खाने से-मरे नहीं	जल तथा स्वर्ण

इत्यादि कहांतक सुनाऊं, पुराणों तथा वेदों में शब्दों के अर्थों का भेद पृथ्वी और आकाश कासा है । बस यही कारण है कि पौराणिक लोग शब्दों के अर्थ ठीक ठीक न जानकर ही जड़ मूर्तियों की पूजा करने लगपड़े हैं और बस इसी प्रकार अज्ञानता के वशीभूत होने के कारण गंगा यमनादि नादियों की पूजा कीजाती है ॥

❀ एकादश--परिच्छेद ❀

॥ सच्चे- तीर्थ ॥

प्र०— यदि काशी, अयोध्या, मथुरा और प्रयागादि नगर और गंगा गोमती और जमनादि नदी तीर्थ नहीं हैं ? तो भाई ! तुम्हीं बताओ कि और कौन से तीर्थ हैं ? कि जिन करके मनुष्य तरें ॥

उ०— अच्छा महाराज ! मैं ही बताता हूं । श्रवण करियेगा ! तीर्थ दो प्रकार के होते हैं । एक तो वह कि जिन करके मनुष्य नदी और समुद्रादि के पार आते जाते हैं । जैसे नौका और पुल आदि । और दूसरे वह हैं कि जिन की सहायता से मनुष्य दुःख सागर से पार होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं । जैसे कि—वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना-धार्मिक विद्वानों का संग-परोपकार-धर्मानुष्ठान-योगाभ्यास-निर्वैर-निष्कपट-सत्यभाषण-सत्य का मानना-सत्य करना- ब्रह्मचर्य्य सेवन-आचार्य्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा-परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना-शान्ति-जितेन्द्रियता-सुशीलता-धर्मयुक्त पुरुषार्थ-ज्ञानविज्ञान आदि शुभ गुण कर्म्म ॥ देखो ! सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३२५ ॥

किसी एक और महात्मा ने भी कहा है—

> सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः ।
> सर्व भूत दया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥१०९॥
> दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थ मुच्यते ।
> ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रिय वादिता ॥११०॥
> ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थं मुदाहृतम् ।
> तीर्थानामपि सततं विशुद्धिर्मनसः परा ॥१११॥

❀ भाषार्थ ❀

सत्य = जो कुछ देखा सुना हो और जानता हो वही बिना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है ॥

क्षमा = समर्थ होनें पर भी क्षमा करना तीर्थ है ॥

इन्द्रियनिग्रह = पांच कर्मइन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय को अपने अपने विषयों से रोकना तीर्थ है ॥

दया = अपनी आत्मा के सदृश औरों के आत्मा को जानना तीर्थ है ॥

दान = अनाथालय, औषधालय, पुस्तकालय और विद्यालयादि का खोलना और विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों को यथा योग्य सहायता करना तीर्थ है ॥

दम = पांच कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है ॥

सन्तोष = सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उस में जीवना धार करना तीर्थ है ॥

ब्रह्मचर्य = सब प्रकार से वीर्य की यथावत रक्षा करना तीर्थ है ॥

ज्ञान = सत् असत् वस्तुओं का जानना तीर्थ है ॥

धृतिः = सत्य प्रतिज्ञाओं का पालन करना तीर्थ है ॥

पुण्य = जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश की उन्नति कर सक्ते हैं उन को अन्न जल से तृप्त करना तीर्थ है ॥

मन का शुद्ध करना = मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है अर्थात् सत्य बोलना तीर्थ हैं ॥ इसी प्रकार एक और ऋषि ने भी कहा है—

मनो विशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं,
वाचा यमस्त्विन्द्रिय निग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीर जानि,
स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति ॥ ११२ ॥

अर्थ=मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना मनुष्यों के तीर्थ हैं और यहीं सुख के दाता हैं ॥

मनु महाराज कहते हैं—वेद का पढ़ना और उसके लेखानुसार तप करना, आत्म ज्ञान, इन्द्रियों को वश करना, किसी को दुःख न

देना और गुरू की सेवा करना इन छः कर्मों से मोक्ष मिलती है। अर्थात् मनुष्य के लिये यही छः कर्म सच्चे तीर्थ हैं यथा—

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निः श्रेयसकरं परम् ॥ ११३ ॥

देखो। मनु अध्याय १२। ८३

* अर्थ—दोहा *

गुरु सेवा इन्द्रिय विजय। तथा अहिंसा ज्ञान।
वेदन को अभ्यास तप। देत परम निर्वान ॥

ब्रह्मपुराण में लिखा है। कि—इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य जहां कहीं रहे वहीं उस का कुरुक्षेत्र है, वहीं प्रयाग है और वहीं पुष्कर है। अर्थात् पुष्करादि स्थान तीर्थ नहीं हैं। इन्द्रियों ही का रोकना तीर्थ है। यथा....

इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र तत्र वसेन्नरः।
यत्र तस्य कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥ ११४ ॥

छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है। कि—सर्व भूतों अर्थात् जीव धारियों की कि जिन से देश का उपकार होता है। जैसे गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, हाथी, ऊंट और बैलादि की रक्षा का नाम तीर्थ है। यथा—

अहिंसान् सर्व भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः ॥ ११५ ॥

इन्हीं उक्त श्लोकों के आशय को लेकर एक आर्य्य कवि ने आर्य्य भाषा में निम्न लिखित कविता की है—

॥ चौपाई ॥

तीर्थ ज्ञान क्षमा मन धरहीं। निज तीर्थ इन्द्री वश करहीं ॥
ब्रह्मचर्य कोमल मन माया। तीर्थ सब भूतों में दाया ॥
तीर्थ दोष रहित वैरागू। निज तीर्थ हिंसा को त्यागू ॥
बड़ तीर्थ इन्द्रियन सों युद्ध। निश्चय तीर्थ ज्ञान मन शुद्ध ॥
इन्द्रिय वश निर्मल मन जहां। सब तीर्थ घट ही में तहां ॥

तीर्थ ज्ञान ध्यान मल होई । तब ही नर पावे सुख सोई ॥
ज्ञान क्षमा तीर्थ मन लावे । तब यह जीव परम पद पावे ॥

धर्म्म शास्त्र में लिखा है कि सत्संग करना तीर्थ है । यथा—

सत्संगं परम तीर्थम् ॥ ११६ ॥

महाभारत में महात्मा विदुरजी ने धृतिराष्ट्र से कहा है । कि—

आत्मा नदी भारत पुण्य तीर्था ,
सत्योदका धृति कूला दयोर्मिः ।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्य कर्मा ,
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभएव ॥ ११७ ॥

काम क्रोध ग्राहवर्ती पञ्चेन्द्रिय जलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्यदुर्गाणि सन्तरम् ॥११८॥

देखो ! नीतिशिरोमणि पृष्ठि ८६ श्लोक ४०४–४०९

अर्थ–इस शरीर में आत्मा रूपी नदी है, जिस में सत्य रूपी तीर्थ, पाञ्चो इन्द्रिय रूपी जल धारणा किनारे हैं, दया की लहरें उठती हैं, काम क्रोध वड़े वड़े मगर मच्छ हैं, ऐसी नदी में स्नान करने से ही परम आनन्द प्राप्त होता है और धीरज की नाव पर सवार होकर इस नदी से पार उतरना होता है अर्थात् जन्म मरण के दुःखों से छूट कर मोक्ष प्राप्त होती है ॥

नोट–अरे ! क्या इस वाक्य को सुनकरभी इधर उधर ही भटकते फिरोगे?

गर्गमुनि कहते हैं । कि–माता, पिता, आचार्य और अतिथि ये चारों तीर्थ हैं क्योंकि इन के उपदेशों और शिक्षा से मनुष्य संसार सागर से वा दुःखों से पार हो मोक्ष पाता है । और इसी लिये इन की सेवा करना तीर्थ यात्रा कहाती है । देखिये–श्रवण अपने अन्धे माता पिता की सेवा करने ही सेइस भव सागर को पार कर गया ॥

श्रृंगी ऋषि कहते हैं– सबसे उत्तम तीर्थ माता के चरणहैं । यथा–

जननी चरणौ स्मृत्वा सर्व तीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ ११९ ॥

मणिरत्नमाला नाम ग्रन्थ में लिखा है । कि—

तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् ॥ १२० ॥

अर्थ — प्रश्न—उत्तम तीर्थ क्या है ?

उत्तर— अपना मन जो निर्मल है वही उत्तम तीर्थ है ॥

देखिये— इस पृथ्वी पर काशी और समुद्रादि को लेकर अनेक तीर्थ क्षेत्र मनुष्यों को पवित्र करने और मोक्ष देने वाले कहलाते हैं । उन में मनुष्य अनेक वर्ष पर्य्यन्त उपवास करते हुए नंगे पांव फिरते फिरें किन्तु जो मन निर्मल न हुआ तो एक भी तीर्थ क्षेत्र ऐसा नहीं है जो किसी एक मनुष्य को भी पवित्र करदे । और जो मन काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग और द्वेशादि से रहित अर्थात् शुद्ध हुआ तो मनुष्य तीर्थ क्षेत्रों में गये बिना भी अपने घर पर ही बैठे बैठे वेदाभ्यास करते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकता है । कृष्ण ने कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ॥ १२१ ॥

अर्थ — मन ही मनुष्यों का बन्ध और मोक्ष का कारण है ॥

यदि मन काम, क्रोधादिक में लिप्त हो जावे तो मनुष्य अवश्य बन्ध जाता है अर्थात् मोक्ष को नहीं पासकता । और यदि मन काम, क्रोध, लोभ, मोहादि रागों से रहित हो जावे तो मनुष्य अवश्य छुटजाता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करलेता है ॥

एक महात्माने कहा है । कि—ज्ञान रूप जिस में प्रवाह हैं, ध्यान रूप जिस में पानी है जो कि राग द्वेष रूप मल को टालता है, ऐसा जो मानस तीर्थ है उस में स्नान करने वाला परमगति (मोक्ष) को पाता है । यथा—

ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेष मलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥ १२२ ॥

इस प्रमाणसे निर्मल मनही एक वड़ा भारी तीर्थहै । मथुरा प्रयागादि नगरें और जमना गंगादि नदियां और पुष्करादि ताल्लाव तीर्थ नहीं हैं ॥

एक पुराण में लिखा है। कि--- ब्राह्मण अर्थात् वेदज्ञ विद्वान निर्मल सर्व कामना देने वाले चलते फिरते तीर्थ हैं जिन के उपदेश रूपी जल से मलिन मनुष्य शुद्ध होजाते हैं। यथा---

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥१२३॥

अब अन्त में मैं आप को वह तीर्थ भी बतलाता हूं किजिन्हें गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने माना है॥

※ चौपाई ※

मुद मंगल मय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहं सुरसरि धारा! सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेध मय कलि मलहरणी। कर्म्म कथा रविनन्दनिवरणी॥
हरि हर कथा विराजत बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बट विश्वास अचल निज धर्म्मा। तीरथ राज समाज सुकर्म्मा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ॥

÷ दोहा ÷

सुनि समुझहिं जन मुदित मन। मज्जहिं अति अनुराग।
लैहैं चारि फल अछत तन। साधु समाज प्रयाग॥

इसी प्रकार एक और विद्वान ने कहा है....

÷ दोहा ÷

लोभ सरिस अवगुण नहीं। तप नाहिं सत्य समान।
तीरथ नाहिं मन शुद्धि सम। विद्या सम धन जान॥

※ द्वादश--परिच्छेद ※

॥ कृष्ण--कथन और विष्णु--व्याख्या॥

प्र०--अरे भाई! तेरे समझाने से अब हम भली भांति समझ गये।

कि--यह नगर और नदियां तीर्थ नहीं हैं । और न यहां पर कुछ दान देने से अधिक लाभ लब्ध होता है । परन्तु एक शंका और भी है सो उसका भी समाधान करदे ॥

उ०--अच्छा महाराज ! यह भी कहियेगा ॥

प्र०--देख ! श्रीकृष्ण देवजी ने कहा है । कि--दान देते समय देश को भी देख लेना चाहिये । यथा--

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥ १२४ ॥

* अर्थ--दोहा *

फल इच्छा को त्याग शुभ । देश काल में जोय ।
देऽनुपकारी सुजन को । दानहु सात्विक सोय ॥

देखो ! श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १७ श्लोक २० ॥

सो इसका क्या तात्पर्य है ?

उ०--महाराज ! श्रीकृष्णदेवजी के वचन बड़े प्रमाणिक हैं । मैं उन को शिरोमणि समझता हूं । महाराज ! उन के कथन का मथन = प्रयोजन यह है । कि--यदि कोई मनुष्य घाट, बाट, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय, पुस्तकालय, बाग़, बग़ीचा, पियाऊ = पौसरा आदि बनवाना चाहै तो उसे प्रथम देश (स्थान) देख लेना चाहिये कि वह किस देश = स्थान पर नहीं बने हुए हैं अर्थात् उस बनवाने वाले को उचित है कि वह इन चीज़ों को उस देश = स्थान = ठौर में बनवावे कि जिस देश = स्थान = ठौर में यह प्रथम से न बने हुए हों । क्योंकि जिस देश स्थान में यह न बने हुए होंगे तो उस देश = स्थान में बनवाने से अनेक मनुष्यों को सुख प्राप्त होगा । यदि लोगों को सुख मिलेगा तो बनवाने वाले को पुन्य होगा ॥

प्र०--बस भाई बस ! रहने दे ! अब कुछ मत कहे ! हम अच्छे प्रकार समझ गये । कि--दान दाता और दान ग्रहीता की धर्मानुकूल इच्छानुसार प्रत्येक स्थान में दान देना चाहिये ॥

उ०—महाराज! उकताइये नहीं! आपको एक और प्रमाण देकर अभी इस प्रसंग को पूरा करता हूं। देखिये! यदि दाता श्रद्धा और प्रेम पूर्वक दान देतो प्रत्येक स्थान में (गंगा, जमना, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्रादि ही से क्या मतलब) दान देकर सुफल प्राप्त करसक्ता है क्यों कि सब स्थान ईश्वर ही के हैं अर्थात् परमात्मा सर्वत्र व्यापक है—वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स "विष्णुः" चर और अचर रूप जगत्में व्यापकहोने से ही परमात्माका नाम "विष्णु" है। फिर अमुक स्थान पर परमात्मा को जानना अर्थात् ईश्वर को एक देशी समझना अर्थात् परमेश्वरको एक स्थानपर मानना और दूसरे स्थानपर न जानना कैसी अज्ञानताकी बातहै। बस इसी लिये प्रत्येक स्थान पर दान देना चाहिये न कि केवल मथुरा आदि नगरों में ही जाकर॥

❀ त्रयोदश-परिच्छेद ❀

॥ स्त्री को तो तीर्थ और व्रत करने का निषेध ही है॥

हे तीर्थ— यात्रा और व्रत करने वाली अर्थात् गंगा, यमुना आदि नदियों में स्नान करने से, काशी, मथुरा आदि नगरों में घूमने से और व्रत = उपवास यानी दिन भर या रातदिन भूखी रहने से अपने जन्म को सुफल मानने वाली और वैकुण्ठधाममें पहुंचना समझने वाली बहिनो! निश्चय कर जानना कि तीर्थ यात्रा और उपास करने से तुम को कोई लाभ न होगा। यदि यहां पर सुख से रहते हुए मरण पश्चात् मोक्ष प्राप्ति करना चाहती होतो तीर्थ—व्रत करना छोड़ और पतिव्रत धर्म्म धारण कर अपने पतिही की सेवा करो। देखो! मनु अ० ५। १५४ में लिखा है कि स्त्रीका सच्चा देव केवल एक पतिही है। यथा—

सततं देववत्पतिः॥ १२५॥

श्रीमत् भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १८ श्लोक ३२ में कश्यपजीने दिति से कहा है कि केवल एक पति ही स्त्री का परम देवताहै। यथा—

पतिरेव हि नारीणां देवतं परमं स्मृतम् ॥ १२६ ॥

स्कन्द पुराण में लिखा है कि जो स्त्री तीर्थ स्नान करने की इच्छा– रक्खे सो अपने पति का चरणोदक पीवे क्योंकि पति स्त्री के लिये शंकर और विष्णु से भी अधिक है पति तो स्त्री का ईश्वर और गुरू और उसका धर्म और तीर्थ और व्रत है इसलिये वह सब (तीर्थ और वृतादिकों) को छोड़ के केवल अपने पति ही की पूजा में लौ लगावे अर्थात् स्त्री को अपने कल्याणार्थ "पति-सेवा" के सिवाय कोई तीर्थ, वृत = लंघन न करना चाहिये। यथा—

तीर्थं स्नानार्थिनी नारी पति पादोदकं पिवेत् ।
शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोधिकः स्त्रियाः ॥ १२७ ॥
भर्त्ता देवो गुरुर्भर्त्ता धर्मे तीर्थे व्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत ॥ १२८ ॥

देखो ! सतमत निरूपण पृष्टि १०७ ॥

अत्रिजी ने इसी प्रकार १३५ वें श्लोक में कहा है कि जिन स्त्रियों को तीर्थ स्नान की इंच्छा हो वो अपने पति के चरणों को धो कर पीवें। यथा—

तीर्थे स्नानार्थिनी नारी पति पादोदकं पिवेत् ॥१२९॥

क्योंकि १३३ वें श्लोक में आप कहते हैं कि तीर्थ—यात्रा करने से नारी पतित होजाती है। यथा....

जपस्तपस्तीर्थं यात्रा प्रव्रज्या मंत्र साधनं ।
देवताराधनं चैव स्त्री शूद्र पतनानि षट् ॥ १३० ॥

अत्रिजी तो यहां तक कहते हैं कि जो स्त्री पति के जीते हुए उपवास करती है वह स्त्री अपने पति की अवस्था को हरती है और नरक को जाती है। यथा—

जीवद्भर्तरिया नारी उपोष्य व्रत चारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३१ ॥

देखो ! अत्रि स्मृति श्लोक १३४॥

मनु महाराज ने भी कहा है। कि—जो स्त्री पति के जीवते भूखी रहने वाला व्रत करती है, वह पतिकी आयु को बाधा पंहुचाती और नरक को जाती है। यथा—

पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्।
आयुष्यं बाधते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति॥ १३२॥

देखो! मनु अध्याय ५ श्लोक १५५॥

आगे चलकर आप फिर कहते हैं कि स्त्रीके लिये अलग न कोई यज्ञ न कोई व्रत और न कोई उपवास है केवल पतिही की शुश्रूषा = सेवा (टहल) करनेसे स्वर्ग लोक में पूज्या हो जातीहै। यथा—

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥ १३३॥

मनु अ० ५। १५६

॥ अर्थ—दोहा ॥

पति बिन मख नहिं त्रियनको। नाहिं न व्रत उपवास।
पति सेवाही सों मिलत। स्वर्ग में पूजा वास॥

तात्पर्य्य यहहै। कि—स्त्रीको व्रत, उपवास और तीर्थादि न करना चाहिये॥

एक महात्मा कहते हैं—

इहामुत्रच नारीणां परमा हि गति पतिः॥१३४॥

अर्थ—इस लोक में और परलोक में केवल एक पतिही स्त्रीको परमगति अर्थात् मोक्ष देने वालाहै। मतलब यह है कि व्रत = लंघन करने से अर्थात् भूखन मरनेसे, जमनादि नदियों में स्नान करनेसे, मथुरादि नगरों की यात्रा करने से स्त्री मोक्ष प्राप्ति नहीं करसक्ती॥

देखो। "सुशीला देवी" नामक पुस्तक पृष्ठि ४

श्री मान् वर पण्डित गोपालराव हरिजी शर्म्मा कहते हैं कि जो स्त्री अपने पतिकी आज्ञा बिना उपास व व्रत रखतीहै यानी दिनभर भूखी मरती है वह स्त्री अपने पति की आयुको कम करतीहै अर्थात् रांड़ = वि-

धवा हो जाती है और मरनेपर सीधी नरक को जाती है । यथा—

पत्यु राज्ञां विना नारी, उपोष्य व्रत चारिणी ।
आयु राहरले भर्तुः, सा नारी नरकं व्रजेत् ॥१३५॥

देखो! सुन्दरी सुधार नामक ग्रंथ पृष्ठि ७१ श्लो० ६८ ॥

एक मुनि कहतेहैं । कि- स्त्री को देवता, गुरू, धर्म, तीर्थ, व्रत आदि यह सब पतिही है । इससे सती साध्वी पतिव्रता स्त्री इन सबको छोड़कर केवल अपने प्राण प्रिय पतिही को सब प्रकारसे सेवनकरे। यथा--

भर्त्ता देवो गुरुर्भर्त्ता धर्म तीर्थं व्रतानि च ।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती ॥ १३६ ॥

देखो !"सुमित्रा = स्त्री धर्म शिक्षा" पृ० ३१ श्लो० १०२॥

"सुमित्रा" के कर्त्ता पण्डित श्री सरयू प्रसादजी बाजपेयी कहतेहैं--

पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिर्देवो महेश्वरः ।
पतिः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री पतयेनमः ॥ १३७ ॥

देखो ! सुमित्रा पृ० ४ श्लो० १ ॥

॥ अर्थ—कवित्त ॥

पति ही सों प्रेम होय पति ही सों नेम होय,
पति ही सों क्षेम होय पति ही सों रत है।
पति ही से यज्ञ योग पति ही से रस भोग,
पति ही सों मिटै शोक पति ही को जत है ॥
पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही से पुण्यदान,
पति ही से तीर्थ न्हान पति ही को मत है।
पति बिन पति नाहिं पति बिन गति नाहिं,
सरयू प्रसाद सब विधि पतिव्रत है ॥

अब एक और धर्म्म शास्त्री जी का वचन सुन लीजिये....

न दानैः शुध्यते नारी नोपवास शतैरपि ।
न तीर्थ सेवया तद्वत् भर्तुः पादोदकै यथा ॥१३८॥

॥ अर्थ—सवैया ॥

दानसे शुद्ध न होत त्रिया उपवास कियेहु नहीं शुध नारी।
तीरथ आदि अनेक करे नहीं होवै तहूं क्षण एक सुखारी॥
यज्ञ करै शत वर्ष पर्यंत विना पति पूजन जात वृथारी।
बलदेव पिया पद धोय पिये तिय सोई तरे भवसागर भारी॥ १ ॥
जिहि को पतिसों अनुराग नहीं तिहि नारिको जीवनभार समाना।
चतुराई निकाई सबै धिक् है धिक् है सब मंगल साज सजाना॥
तीरथ दान नहान सबै बलदेव जु है धिक् खानरु पाना।
जाति औ वंश पिता जननी जगमें धिक् जीवन दुःख दिखाना॥२॥
पति पूजो सदा हित सों पतनी इतनी मम सीख हिये धरिलीजे।
उपवासरु तीरथ छोड़ि सबै घर बैठे हि काहे न आनंद कीजै॥
स्वारथी दुष्ट पखंडिन की बतियान पै ध्यान नहीं टुक दीजे।
बलदेव सबै तजि के सठता निज प्रीतम को चरणोदक पीजै॥३॥
है यह सीख ऋषी मुनि की अरु वेदन में अवलोकन कीजै।
धर्म सनातनहै पति पूजन त्यागि इसे अबला कर मीजै॥
चारि पदार्थ देत यही पति पूजि तिया जगमें यश लीजै।
बलदेव सबै तजिके सठता निज प्रीतम को चरणोदकपीजै॥४॥

कवित्त—वेद औ पुराण ऋषि मुनि जो महान सब करत बखान पति पूजा धर्म नारी है। कीजे सन्मान देव पति ही को जान करै पतिहि गुण गान वही नारी सदाचारी है॥ पति के समान दूजे देवको न मान पति हित पहिचान बने पति हितकारी है। सीख सुखकारी बलदेवकी न मानि नारी भोगे दुःख भारी जो न होवे पिया प्यारी है॥ १ ॥

निज पति त्यागि भोगे पर पति पूजवे को लाजहू न लागे गई एसी मति मारी है। चंडिका को पूजि के चमारन के पांय पड़े भूतन पे मांगे पूत पति को विसारी है॥ संडे गं-

दार गुंडे मुंडे पंडे औ पुजारी गले बांधि २ गंडे लूटि खांय भोली नारी है। कहै बलदेव सीख लेउ हियधारी काहे भोगो दुःख भारी प्यारी मूढ़ता तुम्हारी है ॥ २ ॥

त्यागि पति सेवा मानै झूंठे देवी देवा औ चढ़ावै फूल मेवा देखो पूरी वनचारी है। भिंया औ मसानी पूजै कालिका भवानी रहै पति सों रिसानी मानी एक ना हमारी है ॥ मुर्दा को मनावै बकरे कटावै पीर मुल्ला को जिमाय देत प्रीतम को गारी है। हाय बलदेव देखो भारत की नारि धर्म कर्म सब हारी गई कैसी बुद्धि मारी है ॥ ३ ॥

सीता सतवन्ती अनसुइया गुणवन्ती रुकमिन दमयन्ती इतिहासन पुकारी है। राज भौन छोड़ो पति सेवा सों न मोड़ो सुख विपति सहारी निज धर्म से न हारी है ॥ ऐसो पतिवृत धर्म त्यागि के अमूल्य धन फिरै मारी २ भूलताकी बड़ी भारी है। कहै बलदेव देखो चित्त सों विचारी बनों निज पिय प्यारी या में कुशल तुम्हारी है ॥ ४ ॥

॥ चौपाई ॥

देखी आज काल बहु बाला। व्रत तीरथ कर करैं कसाला ॥
बाल्य कालते मातु सिखावें। बरबस करि उपवास करावें ॥
है यह महाहानि प्रद रीती। रोग बढ़े बहु होय फ़जीती ॥
जो तिय कहैं सिखै मन चीता। जो व्रत करे नारि सह प्रीता ॥
यह केवल उनकी जड़ताई। विनसमझे जिततित उठिधाई ॥
कितनी भई रोगिणी नारी। व्रत उपवास करावन हारी ॥
बहुतक तिय सन्तत हितलागी। भूखी निश दिन रहैं अभागी ॥
सपनेहु पुत्र न गोद खिलाये। भूखन मरि २ जन्म गमाये ॥
बहु तिय चिर सुहाग के कारण। पचि २ मरीं नेम करि धारण ॥
उनहूं नहीं मनोरथ पायो। भूखी रहि तन रक्त जरायो ॥

फिर कहिये कैसे हम मानें। व्रत उपवास न सत्य बखानें ॥
याते सुनिय सुतामन लाई। इन कामन में नाहीं भलाई ॥

देखो—भामिनी- भूषण पृष्ठ ५६-५८

श्रीमती बुद्धिमती जी कहती हैं—

दोहा—पतिव्रता नारी सदा , तन मन से पति प्रेम।
आज्ञा पालन टहल को , जाने निज व्रत नेम ॥

॥ चौपाई ॥

आन कर्म नाहिं दूसर देवा । नारिधर्म केवल पति सेवा* ॥
मन क्रम वचन पतिहि सेवकाई । तिय हित इहि सम औ न उपाई ॥
अस जिय जानि करहि पति सेवा । तेहिं पर सानुकूल सब देवा ॥
निज पति चरण प्रेम नाहिं दूजा । मनबच कर्म पतिहिकीपूजा ॥
पति सेवा जानहु सर्वोपरि । मानहु वचन मोर यह दृढ़ करि ॥

* अहा ! यह चौपाई कैसे सुन्दर गूढ़ार्थ बताती है अर्थात् स्त्रियों को जताती है=सुचेत कराती है। कि— स्त्री जाति को मोक्षप्राप्तिके लिये पतिव्रत धर्म्म पालन करने के अतिरिक्त और कोई किसी प्रकार का अन्य उपाय ही नहीं है ॥

नोट—निश्चय है कि इन वचनों को श्रवण करके स्त्रियां अब आगे को मोक्ष प्राप्ति के लिये व्रत = उपवास = लंघन करके भूखन न मरेंगी, न वन वन भटकती फिरेंगी, न गंगा जमना आदि नदियों पर स्नानार्थ और न मथुरा अयोध्या आदि नगरों में यात्रार्थ जाकर व्यर्थ व्यय करके धन नष्ट करेंगीं और न पाषाण मूर्त्तालयों में घुस घुस कर थकावट का एक महान कठिन कष्ट सहन करेंगीं। किन्तु अपने सच्चे मन से प्रेम पूर्वक केवल निज पति ही की सेवा करेंगीं ॥

देखो कृष्ण महाराज ने भी स्त्री को केवल एक पतिव्रत धर्म ही का उपदेश दिया है न कि तीर्थ व्रत करने का। यथा—

॥ चौपाई ॥

अर्द्धरात कछु डर नाहिं कीनों। ऐसोकहा काजमन दीनों ॥

यह कछु भली करी तुम नाहीं । निजपतितजिधाईवनमाहीं ॥
वेद पंथ निदरयो तुम भारी । जाहुअजहुं घर वेगिसनारी॥
यह सुनिकै गुरु जन दुखपैहैं । वहुरौ तुमको त्रास दिखैहैं॥
और कछू जिय में जिन राखो । करिये वेद बचन जो भाखो॥
तजि के कपट करहु पति सेवा । तियको पतितजिऔरन देवा॥
कूर कुपूत भाग बिन रोगी । वृद्ध कुरूप कुबुद्धि वियोगी॥
ऐसेहु पतिको तिय जो त्यागे । बड़ो दोष ताके शिर लागे॥
ताते मानहु कही हमारी । जाहु सकल घरको व्रजनारी॥
नव यौवन तुम सब सुकुमारी । निशिवसबोबनअनुचितभारी॥
अब ऐसी कीजो मति कबहू । करि विचार देखो मन तुमहू॥
बार बार युवतिन भरमाई । ऐसे सबसों कहत कन्हाई॥

॥ दोहा ॥

निज पति तजि परपति भजैं, तिय कुलीन नहिं होय ।
मरे नरक जीवत जगत, भलो कहै नहिं कोय ॥

॥ सोरठा ॥

युवतिन को पति देव , कहत वेद हमहूं कहत ।
करहु तिनहिं की सेव , जो तुम चाहो सुख लह्यौ॥

देखो ! व्रज विलास पृष्टि ३७४–३७५

नोट—क्या इन कृष्ण वाक्यों को सुनकर भी स्त्रियां संडों पंडोंको पूजना, गुसाईयों को गुरू बनाना न छोड़ेंगीं ? क्या अब भी गंगादि नदियों और मथुरादि नगरोंमें भ्रमसे भ्रमण करतीही फिरेंगीं ? क्या अब भी पर पुरुषों से कंठी बन्धवावेंगीं और उनकी चेली बनेंगीं ?

भाषा–भागवत में लिखाहै—— ॥ चौपाई ॥

जती सती जंगम मुनि ज्ञानी । पतिव्रता सबसे अधिकानी ॥
जिह कारण सब मो कहं ध्यावै । पतिव्रता निज पतिसों पावै ॥

मैं अब अपनी प्यारी वहिनों को वह सच्चा सुन्दर उपदेश भी

सुनाता हूं कि जिसे वन के बीच श्री अत्रि ऋषि जी की अर्द्धांगिनी श्री अनुसूया जी ने श्री महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रजी महाराजा की धर्म्म पत्नी श्री सीता जी महारानी के प्रति कहा था ॥

॥ चौपाई ॥

जग पतिव्रता चार विधि अहहीं । वेदपुराण सन्त अस कहहीं ॥
दोहा—उत्तम मध्यम नीच लघु , सकल कहउं समुझाय ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं , सुनहु सीय चित लाय ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचार समुझि कुल रहहीं । सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं॥
विनु अवसर भयते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पतिवंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प शत परई ॥
क्षणसुख लागि जन्मशत कोटी । दुख न समुझ तेहि समको खोटी ॥
विनुश्रम नारि परमगति लहई । पतिव्रत धर्म छांड़ि छल गहई*॥

अहाः ! यह अन्तिम*चौपाई कैसा सुन्दर उपदेश देती है। अच्छा लो अर्थ भी सुन लो—यदि स्त्री छल छोड़ के केवल एक पति व्रत धर्म का पालन करै तो विना किसी परिश्रमके परमगति को प्राप्तिहो जाती है अर्थात् मुक्ति पालेती है ॥

नोट—बहिनो ! क्या इस उपदेश को सुन करभी अपने पतियों को छोड़के सण्डे, पण्डे, पुजारी, पिरोहित, वैरागी, गुसाईं, साईं,बाबाजी और महन्त जी आदि परपुरुषों की चेली वन और निज तन, मन, धन उनको सर्मपन कर फिर उनकी पग चम्पी करोगी ? नहीं बहिनो नहीं! ऐसा कदापि न करना क्योंकि ऐसा करने से तुम धर्म्म पतित हो जावोगी ॥

आगें और भी सुनिये— ॥ चौपाई ॥

कह ऋषि वधू सरल मृदुवानी । नारि धर्म कछु व्याज बखानी ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी । मित सुख प्रद सुन राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्त्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परखिये चारी ॥
वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाव यमपुर दुःख नाना ॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥

लीजिये ! यहां परभी आपको एक पिछली ही चौपाई का अर्थ लिख सुनाता हूं—स्त्रियों का केवल यही एक धर्म है, यही एक वृत है, यही एक नेम है कि काया से, वचनसे, मनसे अपने पति के चरणों में प्रेम करना अर्थात् अपने पतिकी सेवा करना ॥

नोट—अहाः ! यह उपदेश भी स्पष्ट बताता है कि स्त्रीको सिवाय एक पति सेवा के और कोई अन्य कार्य्य न करना चाहिये अर्थात् मिथ्या तीर्थों पर जाना न चाहिये । वृत = उपवास करना न चाहिये । कभी मिट्टी, पाषाणादि धातुकी मूरत को पूजना न चाहिये । किसी पर पुरुष की चेली होना न चाहिये । कभी किसी अन्य मनुष्य को गुरू बनाना न चाहिये । कहीं की छाप, मुद्रा, टीका, तिलक, लगाना न चाहिये । किसी से कण्ठी बंधवाना न चाहिये । किसी मिथ्या भेषधारी वञ्चक = कपटी = बनावटी मनुष्यसे कपोल कल्पित प्रचलित मिथ्या मन्त्रोपदेश सुनना न चाहिये । कभी किसी परपुरुषको, जैसे गुरूजी, बाबाजी, बैरागीजी, साधूजी, संन्यासीजी, सन्तजी, गुसांईजी, महन्तजी, पुरोहितजी, पुजारिजी, पण्डाजी, भगतजी, व्यासजी, कथक्कड़जी, फ़क़ीरजी, पीरजी, ख़लीफ़ाजी, उस्तादजी, साईंजी, मौलवीजी, मुल्लाजी, हाफ़िजजी, हाजीजी, काजीजी, पाजीजी, पादरीजी, स्यानेजी, दिवानेजी, नौतनजी आदिको अर्चना न चाहिये । और इनमें से किसी एक की भी मंत्र दीक्षा लेना न चाहिये । कभी किसी का डोरा, गण्डा, गुरिया, जन्त्र = तावीज आदि निज शरीरपर बांधना न चाहिये । कभी किसीसे मिरच, लौंग,

इलाइची, जायफल, जावित्री मंत्रित की हुई के बहानेसे और रेवड़ी, बताशे, लड्डू, पेड़ा आदि मिठाई प्रसाद के नाम से लेना न चाहिये। कभी किसी मुर्दे को जैसे मियां, मदार, गाजी, पाजी, पीर, पैगम्बर, सैयद, सहीद, औलिया, नबी, जिन्द, जखैया, ऊत, भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि को मानना न चाहिये। कभी माता * १ मसानी, सीतला, भवानी, देवी, दुर्गा, बराही, चण्डी, चामुण्डा आदिको आराधना न चाहिये। बस तात्पर्य्य यह है कि कल्याण और मोक्ष चाहने वाली स्त्री को यह एक मंत्र--

एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥

स्मरण करते हुए केवल एक निज पति ही की सेवा में तत्पर रहना चाहिये और मिथ्या तीर्थ व्रत से सदैव मुख मोड़ना चाहिये अर्थात् स्त्री को मिथ्या प्रचलित जड़ तीर्थ और अयथार्थ व्रत कभी करनाही न चाहिये॥

अच्छा जी! अब एक दो भजन भी पढ़-सुन लीजिये!

तुम अपना धर्म विचारलो । क्यों फिरतीं मारी मारी॥
तीर्थ देवता और न दूजा । केवल करो पती की पूजा॥
जगन्नाथ को जाना सूझा । कहिं पहुंची हरद्वार लों॥
क्या यहां ईश नहिं प्यारी । क्यों फिरतीं मारी मारी॥१॥
पति के संग फिरे जब फेरे । क्या बहिनी थे करार तेरे॥
आज्ञा में रहूं स्वामी मेरे । याद रहे दिन चारलों॥
अब भूल गई हो सारी । क्यों फिरतीं मारी मारी॥२॥
स्याने पण्डा तुम्हें बतेरे । शहवाले ठग मिले घनेरे॥
तुम उन के नाहिं जाओ नेरे। अपनी दशा निहारलो॥
कहां तुम बुद्धि बिसारी । क्यों फिरतीं मारी मारी॥३॥
धर्म्म पतिव्रत अपना स्त्री जो जग बीच निभाती है।
रहे सदा आज्ञा में वह सतवन्ती नार कहाती है॥ १॥
चाहे बुरा गुण हीन पति हो उस को शीश नवाती है।

---

* १ यहां पर मातासे मतलब पत्थर की टूटी फूटी मूरतसे है कि जिसको कुत्ते पहिले सूंघते और चाटते हैं और फिर उसपर मूत्र करतेहैं॥

निर्धन रोगी क्रोधी से वह मन में नहीं दुखियाती है ॥ २ ॥
यज्ञ धर्म्म व्रत नियम समझ सेवा में चित्त लगाती है ।
मन वाणी काया से प्रीतम पद में ख़ुशी मनाती है ॥ ३ ॥
अपने पती का ध्यान ग़ैर का स्वप्न में भी नहीं लाती है ।
निस्सन्देह छूटे वह दुखसे शर्म्मा सुख को पाती है ॥ ४ ॥

टेक—बढ़कर धर्म नहीं, पति अपने में राखो ध्यान ॥

तन भी दीजै, धन भी दीजै, अर्पण कीजै प्रान ॥ बढ़कर. १ ॥
पति अपने की आज्ञा मानों, यही नेम व्रत दान ॥ बढ़कर. २ ॥
जो पति की आज्ञा नहीं माने, मिलै नरकस्थान ॥ बढ़कर. ३ ॥
जो पति की सेवा नहीं करती, करे दुःखसामान ॥ बढ़कर. ४ ॥
एक ही धर्म पति की सेवा, करे यही कल्यान ॥ बढ़कर. ५ ॥
वेदों ने पूज्य पति बतलाया, मत पूजो पापान ॥ बढ़कर. ६ ॥
सुख सम्पति चाहो जो भैंना, कहा मेरा लो मान ॥ बढ़कर. ७ ॥

टेक—क्यों फिरो न्हवाती पत्थर पति के करवालो स्नान ॥

पति केनहींस्नान कराओ । पत्थर पै लोटे ढरकाओ ॥
उस पत्थर से पुत्र चाहो । क्याछाया अज्ञान।क्योंफि० ॥ १ ॥
वृथा उमर गँवाई सारी । पत्थर सींचे भर २ झारी ॥
फलअबतकक्यापायाप्यारी। हमसे करो बयान ।क्योंफि० ॥ २ ॥
अच्छी तरह देखलो आके । पत्थर से पत्थर खटकाके ॥
तुम ले तो सुतके हितजाके । काहेको गँवायदई जान । क्यों०॥ ३ ॥
अब भी ज़रा चेतमें आओ । पति सेवा से चित्त लगाओ ॥
तेजासिंहकहेदुःखनहींपाओ। सुख मिलेंगे बे प्रमान । क्यों० ॥ ४ ॥

दोहा—पत्थर पूजे हर मिलें । तो तू पूज पहार ।
इस से तो चक्की भली । जो पीस खाय संसार ॥

टेक—पत्थर पूजो हो पति छोड़के । तुम क्यों नाहिं शर्माती हो ॥

पतिके संग फेरे पड़े प्यारी । क़ौल क़रार भरे थे भारी ॥
सदा टहलनी रहूं तुम्हारी । उस पति से मुंह मोड़ के ॥

जल ईंटों पै छिड़काती हो । तुम क्यों नहिं शर्मातीहो १ ॥
सब नारी जाओ घर २ से । देखो ईंट उठाकर कर से ॥
उसमें माता घुसी किधर से । देखो उस को तोड़ के ॥
अब क्यों दहशत खातीहो । तुम क्यों नहिं शर्मातीहो २॥
धोबी धीमर नीच वरन है । जिनकी तुमने लई शरनहै ॥
तुम को तो नहिं ज़राशरम है । अब दोनों कर जोड़ के ॥
झट पैरों में पड़ जाती हो । तुम क्यों नहिं शर्मा० ३ ॥
कहे तेजसिंह माता वोही है । जो वर्यों गलि में सोई है ॥
तुम ने बुद्धि कहां खोई है । उस माता से नाता तोड़के ॥
तुम क्यों धक्के खाती हो । तुम क्यों नहिं शर्माती हो ४ ॥

टेक—एक पतिव्रत धर्म निवाहलो, जो चाहो सुख से रहना ॥
कीजै रोज पती की सेवा, दोनों लोकों में सुख देवा ॥
सब से उत्तम है यह मेवा, बड़ी रुची से खाय लो ॥
नहिं पड़े तुम्हें कुछ देना, जो चाहो सुख से रहना ॥
रहो पती की आज्ञा कारी, मिलै तुम्हेंसुख संपत् सारी ॥
जिस से होवे गती तुम्हारी, मन चाहा फल पाय लो ॥
कहे शर्म्मा कुछ शक है ना, जो चाहो सुख से रहना ॥

झेले—नारी का तो ये पर्म धर्महै स्वामी, महाराज, सदा करना पति का सतकार । लिखा वेदमें ऋषी मुनी कहें शास्त्र ललकार ॥
पति परमेश्वर सम वोही गुरु अघ हरता, महाराज, देव पूजा-नहिं कहा विचार । नारि सर्वदा पति सेवाकर उतरे सागर पार ॥

शेर—वो सकल तीरथ का तीरथ पति को पतनी जानके ।
चरण धो-धो के पीयै ये वचन हैं भगवान के ॥
तुम कहो करना गुरू चहिये जगत में आन के ।
है गुरू पतनी का पति जाहिर है बीच जहान के ॥

झेला—अनसुइया ने सीताजी को सिखलाया ।
पति समान नहिं दूजा तीर्थ वताया ॥

बहुधा स्त्रियां भ्राता, पति और पुत्र की रक्षा के निमित्त पतिव्रत के प्रभाव को न जान कर बड़े २ घोर पाप किया करती हैं अर्थात् कभी देवी के नाम पर भैंसे और बकरे कटवाती हैं। कभी जखैया के नाम पर मुर्गे और घेंटरे मरवाती हैं। कभी किसी देवते के नाम पर कौवे और कबूतर आदि परन्दों की गरदनें तुड़वाती हैं। कभी किसी राक्षस के नाम पर गधे के सिर और सुवर के जीते हुए बच्चों को अपने घर के आंगन में गड़वाती हैं। कभी किसी अन्य मनुष्य के प्यारे बालकों को सियानों [महा पापियों] के कहने से मरवा डालती हैं। कभी ख़ास अपनेही पुत्रों को गंगा नदी में बहा देती हैं। कभी निज लड़कों को साधु और सन्तों के सपुर्द कर सदैव के लिये उन्हें टुकर-खोर बनादेतीं हैं। कभी निज पुत्रियों को मन्दिरों में चढ़ाकर सदा के वास्ते उन्हें वेश्या कर देती हैं। कभी धूर्तोंके पास जाकर अपने सतीत्व को नष्ट कर डालती हैं। कभी पूनों, चौथ, मंगल आदि का व्रत रहकर भूख की गर्मी से अपना गर्भ पात कर बैठती हैं। कभी झूंठे तीर्थों में जाकर धन का नाश और धर्म का विनाश करती हैं। कभी गंगा जमनादि नदियों पर न्हा-कर लज्जा खोदेती हैं। कभी मट्टी पत्थर की मूरतों को देवी, बराही, माता, सीतला, समझ कर पूजने जाती हैं। और वहां माली, काछी, कुरमी, कुम्हार, कोरी आदि नीच वर्ण की ख़ातिर करती हैं। और फिर उन्हें घर पर बुलालाती हैं। और वो महाधूर्त्त घर पर आके देवी बराही का झूंठा डर दिखाकर उन से अपना मन माना धन और धर्म्म लेजाते हैं। और ये मूर्खायें हाथ मींजती रहजाती हैं। कोई कोई मूर्खायें भौंरा और वीरबुहुट्टी को साबित, मोर और घूघू का मास, कौए की जीभ, चूहे के कान, बिल्ली की औनार (जेर) खाती हैं। इत्यादि ऐसे ही अनेक प्रकार के घिनौने और हत्यारे कार्य्य कर अधर्म्म करती कराती हैं और अन्त को अपने बुरे बुरे नाम धराती हैं। जैसे महा नीच, महा कठोर चित्ता, महा कृतघ्नी, महा कुलघ्नी, महा पापिन, महा ऐबिन, महा-कुलटा, महा दुष्टा, महा नष्टा, महा भ्रष्टा, महा क्रूरा, महा पिशाचनी,

महा चाण्डाली आदि । परन्तु यह मूर्खायें यह नहीं जानती हैं कि केवल एक पतिव्रत धर्म पालन करने से ही स्त्री रामा, रमणी, प्रिया, प्रियतमा, कुलवधू, लक्ष्मी, ग्रहिणी, ग्रहस्वामिन, पतिव्रता आदि सुन्दर सुन्दर नामों से पुकारी जाती हैं और इसी के बल से अपने पति और पुत्र की रक्षा कर सक्ती हैं । देखिये ! इसी एक पतिव्रत के प्रभाव से **सावित्री** ने अपने मृतक पति को जिला लिया था, अपने अन्धे सास ससुरको सूझता बनाया था, ससुरका खोया हुआ राज्य दिलवाया था, माता को सौ पुत्र उत्पन्न कराये थे और अन्त को पति सहित बैकुण्ठ सिधारी थी । पतिव्रतके प्रभावही से अनुसूया ने ब्रह्मा विष्णु महेश को बालक रूप बना पालने में झुलाया था । जब तक विष्णु ने वृन्दा का सतीत्त्व नष्ट न किया तब तक देवों का देव महादेव भी वृन्दा के पति जालन्धर को न मार सका इसी प्रकार एक और कथा सुनाता हूँ कि जिस से आप को भली भांति विदित हो जावे—

ॐ पतिव्रत प्रभाव ॐ

पुत्रं पतंतं प्रसमीक्ष्य पावके, न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
तदाभवत्तत्पति धर्म गौरवात, हुतशनश्चंदन पंक शीतलः॥ १२९॥

प्यारी बहिनो ! एक समय एक ब्राह्मण एक राजा का यज्ञ पूरा कराके अपने घर पर आया और थकावट के कारण आते ही पत्नी की जंघा पर सिर धर कर सोगया । उस समय उस का एक डेढ़ेक वर्ष का बालक जो अपनी माता के पास खेल रहाथा, खेलते खेलते थोड़ी देर पीछे वहां से अग्निकुण्ड के समीप चलागया और देखते देखते उस जलते हुए कुण्ड में धड़म से गिरपड़ा इस चरित्र को बड़े धीरज के साथ उसकी माता बैठी हुई देखती रही किन्तु व्याकुल तनक भी न हुई धन्यहै उस पतिव्रता के धीरज को कि उस महादारुण विपत्ति और असह्य दुःख और शोक की अवस्था में भी उस का चित्त नेंक भी चञ्चल न हुआ अर्थात् न वह दौड़ी न चिल्लाई न रोई

और न कोई अन्य ऐसी चेष्टा उस ने की कि जिस से उस की घबराहट समझ पड़ती अर्थात् जों की तों बेखटके और बेगम निज पति के सिर को गोद में धरे हुए उसे पवन करतीही रही और पतिव्रत के भंग होने के भय से ऐसी कोई चेष्टा भी न की कि जिस से उस के प्राण प्रिय की नींद उचक जाती। अन्तको ३-४ घण्टे बाद उस की नींद खुली तो देखता है कि उस की पतिव्रता स्त्री उसी प्रकार आनन्द पूर्वक पंखा डुला रही है। उठ के हाथ मुख धोकर पुत्र को पुकारा। तब उस पतिव्रता ने हौले से पुत्र के अग्निकुण्ड में गिरकर जल मरने का सारा हाल कह सुनाया तब ब्राह्मण झुंझलाया। और अग्निकुण्ड के पास गया। पहुंचते ही देखता है कि उस दहकते हुए लक्कड़ और कोइला की आगी में पड़ा हुआ वह बालक ऐसा किलोलें कर रहा है जैसे कि शीतल चन्दन की कीच में पड़ा हुआ कोई बालक करै तुरन्त पुत्र को पिताने उठा गोद में लेलिया और निज पतिव्रता पत्नी को उसके पतिव्रत प्रभाव को जानकर अनेक धन्यवाद दीये। अहा: पतिव्रत का प्रभाव ऐसा ही होता है। देखिये! पतिव्रत ही के प्रताप से झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने अंगरेजों से मुकाबला किया था। बीकानेरी किरण देवीने अकबर से बड़े बादशाह को गलाघोटकर उस से नौरोजे का महा निषेध मेला बन्द करवाया था॥

मेवाड़ के राना समरसिंह की रानी कर्मा देवीने दिल्ली के बादशाह कुतुबुद्दीन को लड़ाई में मार भगाया था। चित्तौड़ की रानी पद्मिनी ने अलाउद्दीन के दांत खट्टे किये थे॥ इतिहास के देखने से ऐसी सैंकड़ों रानियां मिलती हैं कि जिन्हों ने पतिव्रत के प्रभाव से अच्छे २ बादशाहों के कान काटे हैं॥

इस लिये मेरी प्यारी बहिनो! यदि अपना कल्याण चाहती हो तो—

इन मिथ्या तीर्थों पर जाना छोड़ो और पतिव्रत धर्म्म को धारण करो॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* ओ३म्-खम्ब्रह्म *

* चतुर्दश परिच्छेद *

* तीर्थ-पण्डों की वर्तमान दशा *

नोट—तीर्थ और पण्डों का आपस में ऐसा ही गाढ़ा = घना सम्बन्ध है जैसा कि गंगा और झाऊ का अरु बम्मन और नाऊ का औ अज्ञान और हाऊ का। तब ही तो कहा करते हैं। कि—

जहां बम्मन तहां नाऊ। जहां गंगा तहां झाऊ॥
जहां अज्ञान तहां हाऊ। जहां तीर्थ तहां खाऊ॥

शब्दार्थ—बम्मन = बिना पढ़े ब्राह्मण। नाऊ = नाई, नापित। झाऊ = एक प्रकारका छोटा वृक्ष जिससे बहुधा डला-डलिया (टोकरा-टोकरी) बनाये जाते हैं। अज्ञान = मूर्ख, बेअक़ल = बेशऊर। हाऊ = हौआ, हौवा, मूर्खाओं ने बच्चों को डराने के लिये एक काल्पित शब्द बनालिया है। तीर्थ = गंगा-जमनादि नदियां, काशी-मथुरादि नगर, कुरुक्षेत्र-पुष्करादि तालाब, जगन्नाथ-बद्रीनाथादि पाषाण मूर्तियां। खाऊ = बिन पढ़े-लिखे, लड़ने-झगड़ने वाले, भंग-शराब आदि पीने वाले, भीख मांगने वाले पण्डा, पुरोहित, पुजारी॥

प्रश्न—अरे भाई! अबतक तू ने तीर्थों का शास्त्रानुसार जो कुछ निषेध किया सो सब सत्य है। भली भांति निश्चय होगया कि वर्तमान तीर्थ स्थानों पर पाप की निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिये जाना बहुत ही बहुत वृथा है। पर अब यह और बतादे कि वहां के पुजारि, पुरोहित, पण्डों की क्या दशा है?

उत्तर—महाराज ! मैं तो उन की दशा को पहिले ही अपने रचे हुए " दानदर्पण—ब्राह्मणअर्पण " नामक पुस्तक में लिख दिखा चुकाहूं ॥

प्रश्न—अच्छा ! कुछ और भी सुनादे ॥

उत्तर—बहुत अच्छा महाराज ! लीजिये ! मैं अब आप को प्रचलित कल्पित तीर्थों के ठेके दारों (पुजारि—पुरोहित—पण्डों) की वर्त्तमान दशा के विषय में वह वाक्य भी लिख सुना बताता हूं कि जिनको अच्छे अच्छे विचार वान सत् पुरुषों ने बड़े बड़े अनुभव करके कहा है । अच्छा लो ! ध्यान धर सुनिये——

१—श्री बाबू भगवानदीन जी ॥

स्वर्ण पदक प्राप्त सुप्रसिद्ध कवि श्रीमान्य वर बाबू भगवान दीनजी उपनाम " दीन " सम्पादक " लक्ष्मी " मासिक पत्रिका गया——बिहार तथा सभापति काव्यलता सभा छत्रपूर—बुन्देलखण्ड कहते हैं——

॥ तीर्थ—तत्व ॥

कहता हूं जो कुछ ध्यान से सुनलो मेरे यारो ।
सच कहता हूं या झूंठ इसे ख़ुद भी विचारो ॥
यदि सत्य जंचै बात तो फिर उस को संभारो ।
इस दीन दुखी देश को मरते पै न मारो ॥
अंधे से बने लीक हो पकड़े चले जाते ।
पहुंचैंगे कहां इस पै नहीं ध्यान लड़ाते ॥ १ ॥

मन शुद्ध रहै ईश के चरणों में हो कुछ प्रेम ।
इस हेतु बनाये थे बुज़ुर्गों ने सहज नेम ॥
कर कर के उन्हैं पाते थे नर सर्व कुशल छेम ।
आनन्द मगन होके लुटा देते थे धन हेम ॥
संतोष से संसार में रहते थे नरी नर ।
सब ओर यही शोर था, बस बोलो हरीहर ॥२॥

ठहराये थे पुरखों ने जो तीरथ के मुक़ामात ।
पहले थी बहुत,अब भीहै कुछ उनमें करामात ॥
पर,कहते नहीं बनतीहै अब उनकी कोई बात ।
उन धामों से अब होती है यमराज पुरी मात ॥
पंडों ने बनाया है उन्हैं भोग का द्वारा ।
भारत को किये देते हैं धन हीन विचारा ॥ ३ ॥

महाराज जी कहलाते हैं जो तीर्थ के पंडे ।
प्रत्यक्ष ही सब देह से हैं संड मुसंडे ॥
पर, बुद्धि के पीछे तो लिये फिरते हैं डंडे ।
विद्या की जगह सिर में भरे रहते हैं कंडे ॥
संकल्प तलक भी न कभी शुद्ध उचारा ।
लेते हैं मगर स्वर्ग पठाने का इज़ारा ॥ ४ ॥

हा ! धर्म का धन लेके करैं कर्म महा नीच ।
दानी की महा पुण्य को कर डालते हैं कीच ॥
ख़ुद आप पड़े रहते हैं अलमस्त नशे बीच ।
कहते हैं भगा देते हैं हम आई हुई मीच ॥
है कौन महा पाप जो पंडे नहीं करते ।
धन हिन्दू का ले,घर हैं मुसल्मान का भरते ॥ ५ ॥

आये हुए जजमान को हैं दूर से लेते ।
कर कर के बहुत प्रश्न महा दुःख हैं देते ॥
धन लोभ से धनवान को मा बाप सा सेते ।
धन हीन हो जजमान तो कुछ भी नहीं टेते ॥
धन पुण्य का लै भंग चरस चंडू उड़ावैं ।
इस भांति से जजमान को वैकुंठ पठावैं ॥ ६ ॥

देखा है स्वयं हमने सुरा पान भी करते ।
सुनते हैं बहुत रंडियों के घर भी हैं भरते ॥

बहुतेरे जुवां खेल के हैं जेल में सरते।
बहुतेरे लखे नीम का लौचा लिये मरते॥
देखा न किसी ने इन्हें कुछ धर्म कमाते।
जजमान को किस भांति हैं वैकुंठ पठाते॥ ७॥

हे हिन्द के भ्राताओ! ज़रा सोचो तो मन में।
क्यों आग लगाते हो भला अपने ही धन में॥
देते हो जिन्हें लाखों का धन एकही छन में।
देखी है करामात कोई उनके वचन में॥
दो चार छे पैसेमें तुरत स्वर्ग पठावें।
पैसे न दो, फौरनहीं तुम्हें नर्क झकावें॥ ८॥

ये तीर्थ के पंडे हैं कि हैं स्वर्ग के दरवान।
सुरपुर के कुलीहैं कि हैं यमपुर के निगहवान॥
जजमान ज़रा चित्तमें निज कीजे तो कुछ ध्यान।
पंडोहीं को देनेसे य क्यों राजीहैं भगवान॥
हैं विष्णुके बहनोई कि सुरराज के समधी।
यमराजके जामातेहैं या ब्रह्मके समधी॥ ९॥

पढ़ते नहीं विद्या, नहीं कुछ धर्म कमाते।
धन मुफ्त का जजमान का पापों में उड़ाते॥
जजमान को निज पापों में साजी हैं बनाते।
इस भांति से जजमान को हैं नर्क पठाते॥
लो देख मनुस्मृति ने है यह साफ बताया।
कहनाथा मेरा धर्म तुम्हें कहके सुनाया॥१०॥

मैं तीर्थ की निंदा नहीं करता, नहीं करता।
समझी हैं जो बातें वही हूं सामने धरता॥
तुम धर्म के माते हो तुम्हें लख नहीं परता।
धन देके बने जाते हो तुम पाप के भरता॥

है धर्म के करने में ज़रा बुद्धि भी दरकार ।
बस बात यही कहता हूं सुन लीजिये सरकार ॥११॥

जब बुद्धि नहीं ठीक तो क्या धर्म करेगा ? ।
गंगा में पड़े रहने से क्या भेक तरेगा ? ॥
बे समझ किये दान से क्या काम सरेगा ? ।
पापी को दिये दान से सिर पाप परेगा ॥
मैं झूठ जो कहता हूं तो लो पूछ किसी से ।
दो चार नहीं, पूछ लो दो चार बिसी से ॥१२॥

तीरथ में न्हाने से नहीं शुद्ध है काया ।
जब तक कि दिली मैल को तुमने न बहाया ॥
दिल साफ़ है जिस दिल में है कुछ दीन की दाया ।
उस के लिये दरबार है निज नीम की छाया ॥
कुंडी में है काशी तो कठोती में है नंदगाम ।
चौके में जगन्नाथ, बरोठे में है ब्रज धाम ॥१३॥

तीरथ के नहाने से कहीं जीव जो तरता ।
सुरलोक सकल कच्छ, मगर, मच्छ से भरता ॥
टिर, टें के सिवा शब्द कोई कान न परता ।
जजमान वहां कोई कभी पैर न धरता ॥
बैकुण्ठ तो भरजाता मछलियों से सरासर ।
बगले भी पहुंच रहते वहीं उनके बराबर ॥१४॥

तीरथ ही में बसने से अगर पाप बिलाते ।
पापी न कभी एक भी इन धामों में पाते ॥
पर अब तो इन्हीं धामों में हैं पाप के हाते ।
आ आ के यहीं लोग हैं सब पाप कमाते ॥
तीरथ तो हैं बस नाम के, हां पाप पुरी हैं ।
जजमान की हत्या के लिये मीठी छुरी हैं ॥१५॥

कह दें जो इन्हें इन्द्रपुरी तब तो बजा है।
हर धाम महा इन्द्रों से, परियों से सजा है॥
गंधर्व हज़ारों हैं, अमित भंग पुरा है।
बाज़ार भी सब भोग की चीज़ों से पुरा है॥
मंदोदरी लाखों हैं, तो हैं सैकड़ों तारा।
कि पुरुषों का होता है इन्हीं से तो गुज़ारा॥१६॥

होते हैं हज़ारों हा हरामी के हमल पात।
आजाती हैं विधवायें यहां छोड़ के देहात॥
रहते हैं बने इन्द्र अखाड़ा सा दिनो रात।
इस काल में इन धामों की ऐसी है करामात॥
कलिकाल की आज्ञा से महा पाप के पोथा।
हैं धर्म के हनने को बने तीर्थ--पुरोधा॥१७॥

इस तीर्थ महाधामों से क्या लाभ है यारो।
धन खोये धरे देते हो कुछ सोचो विचारो॥
इन पंडों को धन देके न भारत को विगारो।
इन धन से भला देश का कुछ काज सँवारो॥
भूखे से किसी दीनको दे प्राण बचालो।
इन पंडोंको दै अपना न धन भाड़में डालो॥१८॥

आगे चलकर आप फिर कहते हैं--

❀ पंडा—पँवारा ❀

॥ दोहा ॥

तीरथ बासी विप्र गण, "दीन„ विनय सुनि लेहु।
निज कुल मर्य्यादा रहै, ताही में मन देहु॥ १॥
मधुर सुहित कारी बचन, जग दुर्लभ द्विज राज।
सगुझिन दीजो दोष मोहि, परखौ अपने काज॥ २॥

❀ भुजंग प्रयात छन्द ❀

अयोध्या गयाप्राग काशी निवासी, हरिद्वार द्वारावतीगंगवासी।

पुरी बद्रिका धाम रामेश्वरीया, कुरूखत जागेश्वरी माथुरीया ३॥
अरे चित्र कोटी व विन्ध्या निवासी, कलिन्दीवगोदावरीतीरवासी।
सुनौं सर्व पंडा जन. बात मेरी, गुनौं चित्त धारौ लगाओनदेरी ४॥
बनाया तुम्हें ईश ने तीर्थ बासी, गुणाली तुम्हारी चहूंधा प्रकाशी।
बड़े भूमि पालो तुम्हें मानते हैं, तुम्हें दान देना भला जानते हैं ५॥
धरे बैठि लाखों रुपया कमाते, तिहूंपै सदा ही दरिद्री दिखाते।
ज़राचित्तमेंकीजियेतोविचारा, कि कैसे रहे, हालक्या है तुम्हारा ६॥
बने विप्रश्री पुण्य भू में बसे हौ, तवौ दाम के जाल में यों फसे हौ।
न विद्या पढ़ौ नाजपौ ईशनामा, सदा भंग वर्फीले राखौ हौ कामा ७॥
सबै भंग के रंग में यों पगे हौ, अनाचार में काम के ज्यौं सगे हौ।
सदानीच कामोंकेआमाने साजो, नमस्कारहै आपको विप्रराजो ८॥
सुरा, चर्स, गांजा, अफ़ीमो उडावो, गरे बारनारी ख़ुशी से लगावो।
न संकल्पलौं शुद्ध मुंहते उचारौ, तवौ पूज्य होनेकी शेखी बघारौ ९॥
न संध्याकरौ नाजपौ गायत्री को, करौपाठपूजा नमानौ किसीको।
भले एक पैसा से नाता लगावो, नदे दानताको अनैसी सुनावो १०॥

* दोहा *

आगे चलि जजमानन कहं, कछुक दूरि ते लेहु।
बहुत भांति मनुहारि करि, निजगृह आसनदेहु ॥११॥

॥ नरेन्द्र—छन्द ॥

दै अवास सुख साज सबै पुनि निजकर लाय जुटावौ।
दीपक बारि तासु ढिग धरि पुनि खटिपालाय विछावौ॥
भोजन सामग्री बज़ार ते दौरि लाय पुनि देहू।
चौका साफ कराय, पात्र सब ताके ढिग धरि देहू ॥१२॥
लै नवीन घट सुभग स्वच्छ जल धाय कूप तें लावौ।
कंडा चिलिम तमाखू लकड़ी पुनि पुनि पूंछि मँगावौ॥
कबहूं कबहूं निज हाथन ते भोजन देहु बनाई।

पान लगाय खवाय ताहि पुनि चिलमाहिं देहु चढ़ाई ॥१३॥
शय्या देहु बिछाय कबहु कहुं धोती लेहु निचोरी ।
झूठी कहत न बात "दीन" यह लखी आंख की मोरी ॥
झाड़े जंगल हित जंगल लौं जजमानहिं लै जावौ ।
जल दै थान बताय दौरि पुनि टोरि दतून करावौ ॥१४॥
वर्ण भेद कौ ज्ञान त्यागि कैं सेवौ सबहिं अमानी ।
पूज्यवानि तजि बनि बनि पूजक सुफल करहु जजमानी ॥
कबहूं समय पाय कैं तुमहीं मूसि लेहु जजमानै ।
कबहूं जजमानिन की इज्ज़त हरहु सहित अभिमानै ॥१५॥
निज भगनी बेटी नारी कहँ धरे दाम की आसा ।
औसर पै काहू मिस भेजौ जजमानिन के पासा ॥
करि करि नैन कटाक्ष विहंसि पुनि गाय रिझावैं ताहीं ।
ऐसे हीन कर्म पण्डागण करत न नेक लजाहीं ॥१६॥

नोट—बहुधा किसी किसी तीर्थ स्थान के कोई कोई पण्डे लोग (सब तीर्थ क्षेत्रों के सब तीर्थ पुरोहित नहीं) अपनी बहू बेटियों को यजमानों के यहां जनेऊ, व्याह आदि उत्सव के समय और रतजगे में नाचने गाने को भेजते हैं। कोई २ यमद्वितिया और होली की पिछली भैया दोजको यजमानोंके टीका करने को भेजते हैं। और कोई २ यजमानों के यहां रोटी करने को भी भेजदेते हैं। पण्डोंके इन कर्त्तव्यों को बहुधा लोग बहुत बुरा समझते हैं॥ दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दान—त्यागी

दै जजमान दान मन मानो यदि तुम कहं न रिझावै ।
आशिर्वचन सुफल के बदले लाखन गारीं पावै ॥
हे महाराज तीर्थ पण्डागण विप्र कुलीन वरिष्ठा ।
तुम्हरे हीन कर्मकौ दीन्हौ "दीन" सुकवियह चिट्ठा ॥१७॥
देखौ करि बिचार मन अपने सोचि निकारौ भूला ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह है इन कर्म्मन कौ मूला ॥

येही कर्म करने के काजै ईश तुम्हैं उपजायौ ? ।
ब्रह्म जन्म अरु तीर्थ वास दे जग महँ पूज्य करायौ ? ॥१८॥
मानुष होय विप्र घर जन्मे तीर्थ वास पुनि पावो ।
बिनु श्रम सारे भोग्य पदारथ निज घर बैठि उड़ावो ॥
इतनी कृपा ईश की तुम पै ताहू पै ये कर्म्मो ।
आप समान दुनी में दीखत नहिं दूजौ वे शर्म्मो ॥१९॥

० दोहा ०

माष त्यागिये विप्र वर, साष सहित सुनि वैन ।
लाख लाख के, दाख सम, इन से दूजै हैं न ॥२०॥
निन्दा ईर्षा द्वेष ते, कही बात नहिं एक ।
निज नैनन देखी कही, तुम हीं करौ विवेक ॥२१॥

॥ नरेन्द्र—छन्द ॥

काछी, कुरमी, लोधी, नाऊ तीर्थ करन जे आवैं ।
माता, पिता, अन्न दाता की तुम मुख पदवी पावैं ॥
कोरी, भाट, कलार, कहारहु, शूद्र कुपथ अनुगामी ।
पदवी लैहैं तुम्हारे मुखते 'महाराज' अरु 'स्वामी' ॥२२॥
कोऊ राजा तीर्थ करन हित जब कबहूं चलि आवै ।
तुम्हारौ आपुस कौ झगरौ लखि मनमें अति घबरावै ॥
तासों दान लेन के कारण तुम सब झगरौ ठानौ ।
गारी लात लट्ठ अरु जूता देत लेत सुख मानौ ॥२३॥
दान लेन के औसर द्विजवर बनौं महा कंगाला ।
लेकर दान रांड़ वेश्यन कहं लैलै देत दुशाला ॥
अथवा मादक वस्तु सेय कैं सोभन वृथा गंवावो ।
करि कुकर्म निन्दापवाद लै निज कुल कानि घटावो ॥२४॥
जजमानन की लादि गठरिया तीरथ तीरथ फेरौ ।
कबहूं लै लरिकन कहं कनियां लार मूत्र नहिं हेरौ ॥

'हांजू''महाराज''अनदाता'मातपिता' अरु 'स्वामी' ।
ऐसे वचन दीन व्है बोलो करि अति नीच गुलामी ॥२५॥
जो धनवान देय भंडारा बिन बोले तहँ जावो ।
सेवक अन्न टका पैसा हित अति ही कलह मचावो ॥
धर्मवान दानि न कहं तुम सब मिलि कै इतो दबावो ।
मन ना करे तीर्थ जैवे कहं यहां लाभ का पावो ॥२६॥
हे तीरथ वासी पंडा गण! निज मन करो विचारा ।
ऐसे कर्म्म करन हित तुम्हरो भो जग में अवतारा? ॥
ऐसे ऐसे नीच कर्म करि निज कुल मान मिटावो ।
पुण्य भूमि तीरथ धामन की निन्दा वृथा करावो ॥२७॥
तप संतोप विप्र को भूषण सो न रतीक तुम्हारे ।
अहंकार पद पूज्य होन को वृथा रहो हिय धारे ॥
ताते विनय 'दीन' की सुनिये करिये चारु विचारू !
निज वंशाभिमान राखन हित सीखौ शुभ आचारू ॥२८॥
विद्या पढ़ो करो नित सन्ध्या करि गायत्री जापा ।
क्षमाशील संतोप धारि हिय काटौ निज तन पापा ॥
विना बुलाये दान लेन हित काहु ढिग जनि जावो ।
जजमानन ते तीरथ यात्रा सहित विधान करावो ॥२९॥

* दोहा *

श्रद्धा युत जन देय जो, सहित तोप सो लेहु ।
निज आचार सुधारि कैं, कुलहिं सु गौरव देहु ॥३०॥
दामोदर परसाद को, आयसु निज शिर लीन ।
तीरथ पंडन की कथा, सुकवि 'दीन' कहि दीन ॥३१॥

२—श्रीबाबू गोविन्द दासजी ॥

स्वर्ण पदक प्राप्त सुप्रसिद्ध कवि श्री मान्यवर बाबू गोविंद दास जी उपनाम "दास" सैकंड मास्टर महाराजा हाईस्कूल डुमराव तथा

मंत्री काव्यकला सभा छतरपुर—बुन्देलखण्ड कहते हैं ता० १३-९-०८ के पत्र में—

यदि यह बावन लाख मुफ्तखोरे संडे राह रास्त पर आजायं तो आपही आप भारत का उद्धार हो जाय फिर ता०—१-११-०८ के कार्ड पर लिखते हैं—भाई ! यह पंडा लोग तो निस्सन्देह बहुत तंग करते हैं। चाहे कोई कैसा ही शोक में क्यों न हो। इन्हें तो दक्षिणा लेने से काम रहता है। अब की दफै मुझे इन लोगों ने बहुत तंग किया ॥

आगे आप अपने सुन्दर और सत्य विचारों को इस प्रकार प्रकाश करते हैं। कि—

प्यारे पाठक ! अगर आपने तीर्थ किये हैं कोई।
तो करिहौ मम निम्न कथन का आप समर्थन सोई॥
जहं जहं तीर्थ-पुरी हैं तहं तहं रहें पुजारी पंडा।
हिन्दू मत की हंसी करावें जो करि करि पाखंडा ॥१॥
तीर्थ धाम के लाभ विज्ञजन भाई ! यही बतावें।
तीर्थ देव के दरस परस सों पाप पहाड़ नसावें॥
संत समागम होवै, चर्चा ज्ञान धर्म की होई।
अनुभव बढ़े, होय परिवर्त्तन आब हवा को सोई ॥२॥
पर परवाह करैं क्यों या की पंडे अति पाखंडी।
देव धाम को टका कमाने की समझैं जो मंडी॥
बड़े बड़े टीका मुद्रा दैं घूमें टेसन पास।
"फसे कोउ जजमान" हिये में लगी प्रबल यह आस॥३॥
बेचारे यात्रीने गठरी तक उतारि नहिं पाई।
एक गोल के गोल पुजारी घेरि लेहिं तेहि आई॥
"जैगंगा, जैजमुना मैया" कहि अति शोर मचावैं।
नामावली सात पुरखन की सारी खोलि करावैं ॥४॥

"तुम मेरे हौ" "तुम मेरे हौ" "तुम मेरे जजमान्" ।
या प्रकार घंटन तक होवे वचन युद्ध सुमहान् ॥
होवै विजय अंत में जाकी तहं जजमान सिधावें ।
झगरत इन्हैं श्वान सम लखि कें मनमें अति चकरावें ॥५॥
भोर होतही जब यात्री को दरशन हित ले जावें ।
डेरे से मंदिर तक पैसे पच्चिस जगह मँगावें ॥
मंदिर के अंदर यात्री सों झगैरं ये बकवादी ।
ठाकुरजी के दरस न होवें बिना चढ़ाये चांदी ॥६॥
ज़रा देखिये ! तो पंडोंने क्या अंधेर मचायौ ।
तीर्थ पुरी को मानों इनने है बज़ार करिपायौ ॥
कैसे होय तीर्थ में श्रद्धा ? बाढ़े किमि विश्वासू ? ।
धर्मोन्नति क्या होय ? विधर्मी क्यों न करैं उपहासू ? ॥७॥
घरसों चलत जिती श्रद्धा सों यात्री तीर्थ सिधावें ।
लौटत बार तासु की आधी ताके हिय न रहावे ॥
पंडोंकी कुचाल इन के हिय कु प्रभाव अस डारे ।
मन में फिर न तीर्थ ऐवे की यात्री कबहुं विचारैं ॥८॥
और देखिये ! अगर आप के पास बचै नहिं खरचा ।
साहु यही पंडे बनिजाते फ़क्त लिखाते परचा ॥
क़र्ज़ा देयं तुम्हैं मनमानौं निज स्वारथ के काज ।
अवधि भयें तुम्हरे घर आवें उघालेयं सह ब्याज ॥९॥
लेवैं अलग रेल कौ भारौ खायं तुम्हार घरहीं ।
रुपया अगर नहीं चुकि पावैं बेगि सु नालिश करहीं ॥
तीर्थ गये कौ फल प्रतच्छ यह मिलै तीर्थ गामी को ।
अब रहगयो तीर्थ करवे में केवल काम धनीको ॥१०॥
या विधि मूड़ि मूड़ि जजमानै धनी बनैं ये पंडे ।
सेरों पेड़ा दही खाय कै व्है रहे संड मुसंडे ॥

रहें नशा में चूर हमेशा लोटों भांग चढ़ा के।
वही दक्षिणा का पाया धन नज़र होय वेश्या के ॥११॥
यों कुपात्रको दान दिये ते फ़कत न वह जो पावै।
वरन दान देने वाला भी आधा पाप बटावै ॥
जो अपार धन अगणित यात्री इन्हें दान दै खोवे।
बहु अनाथ लरिकन को तामें पालन पोषण होवैं ॥१२॥
बावन लाख मुसंडे ऐसे हैं भारत के माहीं।
खाहिं मुफ्त में द्रव्य देश को, पातक घने कराहीं ॥
यदि कोउ देश हितैषी जानैं इन्हें सुपथ पै लाना।
देशोद्धार तुरत हो जावै दूर होयं दुःख नाना ॥१३॥
ठेकेदार स्वर्ग क ये क्या औरें स्वर्ग दिवावैं।
जो गुमराह आप ही होवै सो का राह बतावैं ॥
पंडागीरी छांड़ि अगर ये बनें धर्म उपदेशक।
रुपया बढ़ै, अविद्या नासै, धर्म वृद्धि हो बेशक ॥१४॥
हैं जो देश हितैशी सज्जन अरु मानव–कुल–नेही।
तिनसों दोउकर जोरि "दास" यह विनय करै है एही ॥
तीर्थ धाम की पतित दशा पै करिकें कृपा निहारौ।
पंडा पुत्रों के सुधार का मारग कोउ निकारौ ॥१५॥

आगे चलकर आप अपने उत्तमोत्तम विचारों को वर्त्तमान तीर्थों के विषय में भी प्रकाश करते हैं। यथा— ॥ दोहा ॥

चाहे परसौ द्वारका, चाहे काशी धाम।
बिना चित्त की शुद्धता, मिलैं न सीताराम ॥ १ ॥
अनुमानी यह बात हम, भली भांति करि गौर।
अपने मन की शुद्धता, सब तीरथ सिर मौर ॥ २ ॥
तीरथ करना व्यर्थ है, जब तक शुद्ध न चित्त।
यों तुम को अधिकार है, जाओ बहाओ वित्त ॥ ३ ॥

हृदय बीच निश दिन रहै, पर नारी को ध्यान ।
गया गये को फल कहा, कहा गङ्ग स्नान ॥ ४ ॥
मन को वश में राखिबे, मैं जेतो फल होय ।
काशी, मथुरा, द्वारका, नहीं दै सकै सोय ॥ ५ ॥
जा के हियरे है नहीं, लोभ मोह मद काम ।
ता के हियरे बसत हैं, तीरथ आठों धाम ॥ ६ ॥
पंडा पूजा व्यर्थ है, अरु सङ्गम असनान ।
वस में राखो इन्द्रियां, येही तीर्थ महान ॥ ७ ॥
कहा लाभ तीरथ किये, कहा लाभ तप तन्त्र ।
वशी भूत मन राखिवो, सब मंत्रन को यंत्र ॥ ८ ॥
ऊपर के असनान तें, हियो न निर्मल होय ।
कैसे सांप मरै जु पै, बामी ठोंकै कोय ॥ ९ ॥
जाको हियरो बनि रह्यो, काम क्रोध की खानि ।
तीर्थ गमन ता के लिये, ज्यों हाथी असनान ॥ १० ॥
ताके तीरथ व्यर्थ जो, काम क्रोध को दास ।
जाने इन को वश कियौ, तीरथ ता के पास ॥ ११ ॥
बहु पंडा पूजा करी, बहु तीरथ असनान ।
ताहू पै मन बनि रह्यौ, काम क्रोध की खानि ॥ १२ ॥

३— श्रीमती तोपकुमारी जी ॥

श्रीमती तोपकुमारी देवी जी (धर्म्म पत्नी श्रीमान् ठाकुर कर्णसिंह जी वर्म्मा रईस चँहडौली) कहती है—

॥ रोला छन्द ॥

दान लैइवो त्याग सहज ही जिन है दीना ।
विश्व मांहि निज नाम उजागर जिन* है कीना ॥
तिन हीं के बहु वार वीर आयसु को पाकर ।

---

* दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दान—त्यागी—मथुरा ।

तीर्थ विषय में कहुं कछु सुनियो सो चित धर ॥१॥
हिन्दू कहैं पुकारि सुना हमने सह ध्याना ।
मथुरा काशी आदि तीर्थ सबही कर आना ॥
बड़ा धर्म्म अरु पुण्य मिलै नर को मुक्ती फल ।
संशयही कछु नांहिं शास्त्रभी भाषहिं अविरल ॥२॥
करैं सबहि कहुं तीर्थ सफल जीवन हुइ जावै ।
माया लगै न आइ अमर पदवी को पावै ॥
यह सुन अपनौ धर्म्म सकल हिन्दू नर नारी ।
तीर्थ जायं बहु करन हाय मति है गईमारी ॥३॥
हम को तो यह सांच नांहिं अपने जी आवै ।
धोखा है, नहिं ठीक, बात को व्यर्थ बढ़ावै ॥
होय सफल को तीर्थ वतें करिमोहि विसास न ।
यह तो है सब झूंठ मान लेवहिं प्रिय बुधजन ॥४॥
जहां पाप बहु होत तिन्हें हा ! तीरथ मानें ।
धर्म्म ग्लानि है रही विवेक न कछु उर आनें ॥
कहा धर्म्म बढ़ि जाय कहा नर कीरति पावै ।
मेरे तो यह ज्ञान तीर्थ करि पाप कमावै ॥५॥
जल, थल, तीरथ नांहिं नगर कोऊ तीरथ नाहैं ।
शास्त्र ज्ञानसों रहित कोऊ सुख पावत नाहैं ॥
गंगा जमुना वहैं न इस कारन प्रिय भाई ! ।
उनमें कोई न्हाइ न्हाइ सहजहि तरि जाई ॥ ६ ॥
मात पिता हैं तीर्थ सकल शास्त्रन पढ़ि लीजै ।
रोजु उन्हें ही पूजि कामना पूरन कीजै ॥
मथुरा काशी जाइ जाइ निज द्रव्य लुटाना ।
उचित न है सुनिलेहु कहत सबही गुनवाना ॥७॥
जिन्हें तीर्थ रहे मानि भये तेही नर्क स्थल ।

कवहू वहां न जाउ न मिलि है एकौ शुभफल ॥
वहिन भानजी वहुन वहां पंडा हैं घूरत ।
तोपकुमारी सोइ धर्म्म नाशन की सूरत ॥ ८ ॥

४—श्री ठाकुर कर्ण सिंह जी ॥

श्रीमान् वर ठाकुर कर्णसिंह जी वर्म्मा रईस चहँडोली पोस्ट हरदु-आगंज ज़िला अलीगढ़ कहते हैं— ॥ दुवाहिया-छन्द ॥

हे हे माननीय भ्रातागण ! सुनों सकल दे काना ।
मैं जो कुछ कहता हूं सच है यही करौ अनुमाना ॥
वर्त्तमान में धर्म्म रीति यह भारत में है जारी ।
करना तीरथ वर्त, व्रतादिक मत पुराण अनुहारी ॥
मैं इसको न कभी कह सक्ता, है यह निज शुभ धर्म्मा ।
किन्तु कहूंगा तीर्थ करौ मत, होते वहां कुकर्म्मा ॥
छी ! छी !! मैं उन सब को प्यारे तुमसे क्या गिनवाऊं ।
मनही में लो सोच, इशारा करके यह वतलाऊं ॥
वहिन भानजी बहुन साथ ले, अब तीर्थों में जाना ।
समझो अपना धर्म्म कभी मत, सुझा रहे गुनवाना ॥
पंडा तीर्थों में करते हैं महा घोर दुष्कर्म्मा ।
सुन सुन देख देख कांपे तनु जरजावे चित चर्म्मा ॥
शास्त्र कहैं जो बात, उसी को अपने मन में लावो ।
मेरा भी इतनाही कहना, चेतो कहा लजावो ॥
मात पिता गुरु अतिथि सभी हैं, सच्चे तीर्थ सुदामा ।
इन का ही अवराधन कीजै, तज दीजै मति वामा ॥
जल थल तथा नदी नद नारे ग्राम नगर गिरि काना ।
मानो इन में तीर्थ बुद्धि मत, यह मेरा समझाना ॥
धर्म्म विषय में हठ धर्म्मी का होना नहीं भला है ।
लोक और परलोक सुधारो कहकर समय चला है ॥

५—श्रीपण्डित श्यामजी शर्म्मा ॥

श्री मान् वर पण्डित श्री श्याम जी शर्म्मा काव्य तीर्थ हेड पण्डित ज़िला–स्कूल पुर्णियां व हाई–स्कूल भागलपुर–विहार कहते हैं—

पुण्य धाम तीरथ हैं कहते अशेप नर दान किये होता पुण्य क्यों कर विचारिये । पंडा बिन अक्षर हैं चामके मृगा समान काठ के बने मतंग सो भी निरधारिये ॥ वेद तत्त्व लेके यह कहती मनुस्मृति है धर्म्म के विवेक हित उस में निहारिये । उचित बुझाय दान देना उन लोगों को तो दौड़ २ दीजे और जन्मको सुधारिये ॥ १ ॥

शब्दार्थ—अशेप=सब । मतंग=हाथी । विवेक = ज्ञान ॥

हवन सुगन्धी यदि राख में करेगा कोई कैसे के सुगन्ध पावेगा वह बताइये । पंडा बिन विद्या के धर्म्म हीन तेज हीन उन को दियें से दान कौन फल पाइये ॥ तीरथ के विप्र ज्ञान हीन धूर्त्तता प्रवीण कहते सभी हैं लोग देखें यदि जाइये । पूरी यदि दक्षिणा तो खान पान श्रेष्ठ, नहीं हाथ से महाशयों के धक्के फिर खाइये ॥ २ ॥

पापी वह होता जौन पाप में सहायता दे गिनती अघोंकी कौन तीर्थ में वताइये । आप के टके से पेट वेश्यों का भरता नित पंडा घर आप यदि खोज को लगाइये ॥ डरते हैं बोतल बराण्डी के उन के घर औषध के नाम से न सुनके सिहाइये । आपको हुआ है पुण्य अथवा यह पाप पुंज तीर्थ में दिये से दान आपही जनाइये ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अघों=पापों । वराण्डी = शराव = मदिरा । पुंज = ढेर ।

दान है दरिद्र हित कहते पुराण वेद जिनको हैं लाखों उन्हें दान का न काम है । दीजिये दरिद्रों को जिन के तन वस्त्र नहीं शास्त्र ने बताया जो यही तो पुण्य धामहै ॥ देखते अधर्म्म

फिर सुनते औरों का कहा तो भी जिन्हें तीर्थ प्रेम उन की मति वाम है । देश दुर्दशा के मूल आपही बने हैं मित्र इसी से चिताते कर जोड़कर श्याम हैं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वाम = उलटी । श्याम = श्यामजी शर्म्मा ॥

लाखों दरिद्र दीन मरते हैं अन्न विना उनके लिये जो अनाथालय बनाइये । तीरथ के पाप में जो रुपया लगाते आप उसको बचाके यदि उनको पढ़ाइये ॥ विद्या प्रचार होय धर्म्म का सुधार होय देश की समृद्धियों का कारण बनजाइये । भारत निवासी ! कुछ अब भी तो चेत कर तरिथ में व्यर्थ माल अब न लुटाइये ॥ ५ ॥

तीरथ की चाट यदि छोड़ना न चाहते तो पण्डा महाशयों को कुछ दान न दीजिये । संस्कृत हिन्दी की शाला बहुतेरी खोल वहां विद्या प्रचार हित यत्न कुछ कीजिये ॥ भारत सपूत ! देश हित के अनेक काज सामने पड़े हैं उन्हें निज कर में लीजिये । भारत की नइया जो डूबती अविद्या बीच उस को बचाने हित तनिक पसीजिये ॥ ६ ॥

दीजिये उन्हीं को दान करें जो प्रतिज्ञा यह संस्कृत हिन्दी की पाठशाला बनवायंगे । दुखिया दरिद्र हित करके प्रबन्ध सब उनके लिये ही अनाथालय बनायंगे ॥ दान की प्रथा में यदि कुछ भी सुधार करें सज्जन समाजमें प्रतिष्ठित कहायंगे । वेदशास्त्र कहते पुराण भी सराहते हैं ऐसा करने से आपकीर्त्ति स्वच्छ पायंगे ॥ ७ ॥

नोट = सच है । इन पण्डों को दान देना ऐसा ही व्यर्थ है जैसा कि राख में घी का डालना वृथा है ॥

६— श्री पण्डित रामदत्त जी ॥

श्री मान्वर पण्डित रामदत्त जी शर्म्मा शिवपुर निवासी कहते हैं—

॥ चौपाई ॥

धर्म कर्म ते नाहिं कुछ रीती । केवल भोजन ही से प्रीती ॥
ध्यान ज्ञान विजया का जाना । सुल्फा हुक्क ईश पहिचाना ॥
वेद त्याग कर लिया सहारा । जमना जमना नाथ पुकारा ॥
दान लेन में अति विज्ञानी । अक्षर पढ़्यो न विद्या जानी ॥
विद्या देखि डरें यह कैसे । मानौ शिर काटै कोइ जैसे ॥
आप पढ़ें नहिं पुत्र पढ़ाते । मूरख के मूरख कहलाते ॥

॥ छन्द हरि गीत ॥

विद्या निषेधी तियन को अरु स्वर्ग का ठेका लिया ।
बिन दक्षिणा अरु दान लीन्हे कोई नहिं घुसने दिया ॥
इस लोक अरु परलोक के मालिक बने हैं पण्ड जी ।
चाहें जिसे दें स्वर्ग अरु चाहें जिसे दें नर्क जी ॥

७– एक जैपुरी सनातनी ब्राह्मण

ने कहा है-- वर्तमान में जिन को तीर्थ कहा जाता है । उन की दुर्दशा देखते हुए उन्हें तीर्थ कहना सर्वथा अनुचित है । जिनस्थानों में महात्माओं के स्थान में दुरात्मा वास करते हों । मुमुक्षा की जगह विषय वासना ने अपना पूर्ण राज्य कर रक्खाहो । जहां लम्पट इसी फ़िराक़ में बैठे रहैं कोई आंखों का अंधा गांठ का पूरा मिले । जहां तक बने यात्रियों को लूटो इसी का जहां रात दिन ख़याल हो । जहां गन्दगी के मारे दिमाग़ सड़जाय । जहां यमदूत से सिपाही विषय दृष्टि से वञ्चना करने पर उतारू हों । वह तीर्थ स्थान हैं वा लुंगाड़ों का अखाड़ा ? तीर्थों के संस्कार विषय में पं० श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य्य ने, कोल्हापुर से निकलने वाली सद्यो जात संस्कृत साप्ताहिक पत्रिका " सूनृत वादिनी ,, में, एक लेख लिखा है, आप कट्टर सनातनी हैं, उन्हीं से तीर्थों की स्तुति सुनिये:– देवताओं के नाम पर जो धन तीर्थों में दिया जाता है यदि उस से व्यभिचार बढ़े और शराब की

दूकानें खूब फ़ायदा उठावें, पुजारी और पण्डों की स्त्रियां गहने पहन कर अपने नखरे बनावें, आकाश से बात करने वाले उन के महल तैयार हों अर्थात् ईंटों का ढेर लगा दिया जावे तो इस से बढ़ कर उस धन का बुरा हाल क्या होगा ? ऐसे बहुतें से तीर्थ हैं जिन में यह बात साफ मालूम होती है, देवताओं का धन पिशाचों के काम में आता है, तीर्थों में लाखों रुपयों का दान होता है, पर उस का भूत भोजन के सिवाय कोई फल नहीं यह तो बालक भी जानते हैं कि यात्रियों के ऊपर तीर्थ के कौवे पण्डों का कितना अत्याचार होता है ? आंसू बहाते हुए रोते हुए सर्वस्व लुटाकर अपने घर को यात्री लौटते हैं । यह बात सुनी या अनुमान की हुई नहीं है, किन्तु हमारी बार २ प्रत्यक्ष देखी हुई है । जैसे बिना भेट के राजों का दर्शन मुशकिल है वैसे ही इन पण्डों के निर्णीत टेक्स के बिना देव दर्शन में अधिकार नहीं मिलता । इस प्रकार यह दुष्ट पण्डे बिचारे भोले भाले यात्रियों को ठगते हैं । जो कुछ श्रद्धा से दिया जाता है उसी से यह दुष्ट सन्तुष्ट नहीं होते अधिक लेने के लिये गालियां तक देते हैं, भौं चढ़ाते हैं, दण्डा भी दिखाते हैं, गुस्से से लाल लाल आंखें करते हैं । यही दुष्ट हमारे गुरू समझे जाते हैं । इन्हीं पापिष्टों के चरण कमल सिरपर रखकर हमारा आत्मा पवित्र किया जाता है । यह अजीब भारत वासियों की भक्ति का उद्गार है । यदि तीर्थों का संस्कार अभीष्टहै तो इन पापी पण्डों के ग्रास से तपस्वी यात्रियों का उद्धार करना चाहिये । माना कि उन में भी कई सज्जन हैं, पर ज़ियादती दुर्जनों की ही है । इत्यादि ॥ हमारी समझ में " गोता लगाने मात्र से वा पिण्ड भरने मात्र से मुक्ति होती है ,, इसका खण्डन सर्व साधारण में खूब होना चाहिये । जिससे व्यर्थ की दल दल इकट्ठी होना दूर होजाय ॥

देखो ! सद्धर्म्म प्रचारक वर्ष १८ संख्या ५१ पृष्ठ ६—७

८—तिलहर निवासी महाशय इन्द्रजीत जी

ने कहा है—जहां बड़े २ हवन कुण्ड थे वहां जल भरा हुआ है। जहां ऋषि मुनि विद्यमान थे वहां आज भङ्गी चरसी भंग चर्स के स्वादों में फंस रहे हैं। जहां ऋषियों के उपदेश अन्तःकरण के मलों को शुद्ध करतेथे, वहांपर रण्डियोंकी तानें टूटतीं हैं। शोक कि वह महात्मा-ओं के स्थान आज धोकेबाजों और दुराचारियों के स्थान बने हुए हैं। जहां नैयायिक पदार्थवेत्ता तर्क साइन्स के सूक्ष्म विचार करते थे, जिन का दयाही परम धर्म था, जहां योगाभ्यास में स्वयं मग्न हो परमात्मा को साक्षात्कार करते थे, वहां जाकर देखो तो कपट की मूर्ति बने व्यभिचार और मांस भक्षण का उपदेश कर रहे हैं। वह कौनसी दुर्वा-सना और दुर्घटना है कि जिस की वह मूर्ति दिखाई नहीं पड़ते। जितनें अधिक दुर्व्यसन वहां हैं। उतने अन्य स्थानोंपर दृष्टि नहीं आते। इस लिये कि उन्हें मुफ्त बिना परिश्रम के माल हाथ लगता है। उसे अनुचित खर्च (व्यय) करते हैं। और धन जिस कपट छलसे यह लोग यात्रियों से कमाते हैं सो छिपा नहीं है। ये विद्या से लंठ और ज्ञान से शून्य लोग अपने शरीर के पालन और विषयों के आनन्द के अतिरिक्त और कोई कार्य्य नहीं करते। ० ० ० ० आज इस प्रकाश के समय में प्रत्येक तीर्थ की कलई खुलचुकी है और खुलती जाती है। देखिये! तहुफ़ा हिन्द बिजनौर में जो हनुमान गढ़ी कस्बे फ़ीरोज़ाबाद ज़िला मैनपुरी का हाल छपा हुआहै। उसे किसने नहीं देखा वा सुना? जहां पुजारियों ने यात्रियों की स्त्रियों को व्यभिचार निमित्त छिपाया था और उन्होंने वर्षों से इसी लिये मन्दिर में से सुरंग बना रक्खी थी। स्त्रीं जो मन्दिर में जातीं। उनमें से जिसे चाहते उसेही सुरंग द्वारा ऐसा छिपाते कि फिर कोई पता न पाता। बस, पुजारी लोग वर्षों तक इसी प्रकार टट्टी की आड़में शिकार खेलते रहे। अन्त को—एक दिन फिर एक स्त्री को छुपाया। उसका लड़का रोता चिल्लाता फिरता था।

मेजिस्ट्रेट मिल गये, बालक ने उन से निवेदन किया। मेजिस्ट्रेट ने पहिले पुलिस से ढुंढ़वाया पर पता न पाया। तब खुद उन्होंने मन्दिर में जाकर हरएक मकान को देखा पर फिर भी पता कुछ न लगा। लाचार कुरसी पर मन्दिर के आंगन में बैठ गये और इधर उधर दृष्टि दी अन्त को एक उभरे हुए पत्थर पर नज़र पड़ी। उठकर कहा इसे हटाओ। पुजारी बहुत गिड़गिड़ाये कि हजूर यहां हनुमान का कोप है। यह बहुत पवित्र स्थान है। इस के भीतर कोई जा नहीं सकता। परन्तु साहब ने कुछ पर्वाह न की। और उस सुरंग के भीतर ही भीतर एक मील के लगभग चलेगये, तब एक कोठी बढ़िया सजी हुई दिखाईदी, वहां पर १५-२० सुन्दर स्त्रियां मिलीं, जिन में यह स्त्री भी थी। सब को बाहर निकाला, तब मालूम हुआ कि वह सब स्त्रियां एक से एक सुन्दर और बड़े २ घरानोंकी इसी प्रकार वर्षों से छुपाई गईथीं और पुजारी लोग उनके साथ विषय भोग किया करतेथे। यह एक वर्तमान निकट समयका उदाहरण है। पक्षपात छोड़कर तीर्थों पर जाकर कुछ दिन रहकर देखो तो आपको पता लगसकता है कि वहांपर ठगने के अतिरिक्त और कोई किसी प्रकार का सच्चा उपदेश नहीं होता। हां! चर्स, भंग पीना सीखना हो या अहम् ब्रह्म बनकर किसी पाप को पाप ही न समझना होतो अवश्य जाओ, नहीं तो शांति के आज उन स्थानों पर दर्शन ही नहीं होते। तीर्थों पर पहुंचते ही पण्डों से कपड़े छुड़ाना कठिन होजाता है। परमेश्वर से कोई स्थान शून्य नहीं है। वह हर जगह व्यापक अन्तर्यामि रूपसे भरपूर है। उसेही हर स्थानमें जानकर हर स्थान में पाप से बचने का यत्न करना चाहिये॥ देखो! "नारी धर्म विचार" नामक पुस्तक पृष्ठ १२५-१२८॥

२-योगाश्रम-काशीके कृष्णानन्द धर्म सभा के उपदेशक एक बालिका के साथ बलात्कार सम्भोग करने पर जेल में गयेथे। बरेलीके सेन्ट्रल जेल में भी रहेथे॥ देखो! "मूर्त्तिपूजा-मीमांसा" नामक पुस्तक पृष्ठ ६॥

३—तारकेश्वर के महन्तजी भी ऐसे ही अभियोग में जेल गयेथे। इन के हाथ का पेला हुआ तेल कलकत्ते के बाज़ार में एक सेर एक रुपये का बिकताथा॥ देखो! "मूर्त्तिपूजा—मीमांसा" नामक पुस्तक पेज ६॥

४—मथुरा तीर्थ क्षेत्र में एक चौबेने एक यमुना पुत्र की असमर्थ नाबालिग पुत्री के साथ प्रबलता = ज़बरदस्ती से व्यभिचार = ज़िना कियाथा। जिस का फल यह फलाथा। कि—डाकटर ने टांके लगाकर लड़की को चंगा कियाथा। और चौबेजी महाराज को आठ वर्ष तक कारागार में बास करना पड़ाथा। यमुना पुत्रों की पवित्र जात को कलंकित करने वाला व्यभिचारी, थोड़े दिनहुए तब तक स्यात, जीताथा॥

५—कोटावाले गोस्वामी गोपकेशजी महाराज एक दिन जनाना भेष कर राजा साहब के महल में घुस गये लेकिन पहरेवालों ने पहचान कर गिरफ़तार किया और सारी रात जंगीजवानोंने संगीनोंके बीच कैदमें रक्खा सबेरा होतेही साराशहर दर्शनको उमड़आया और लम्बी २ दण्डवत करके "घणी खमां पृथ्वीनाथ! आछै रूप धरयो है, धन्, धन् राज!" कहते हुए चला गया। परन्तु कोटा के दयावान् राजासाहब ने गुरू जान छोड़दिया॥ देखो! वल्लभकुल चरित्रदर्पण द्वितीयवार पृ.६०

६—काशीवाले रणछोड़जी महाराज कच्छ मांडवी गये थे वहां उन्होंने बड़ी अनीतें की और भलेमानसों की स्त्रियों को बिगाड़ा, लोगों ने उन के यहां औरतों का जाना बिलकुल बन्द किया। जब इन कुकर्मीजी की करतूतें वहां के हाकिम को ज्ञात हुई तो उसने संवत् १९१९ में उन को निकाल देने का हुक्म दिया। गुसाईजी मांडवी छोड़ चले आये॥

देखो! वल्लभकुल चरित्र दर्पण पेज ६२

नोट—वल्लभकुली सम्प्रदाय के आचार्य्यों के कुचरित्रों को सम्पूर्ण भारतवर्ष के, केवल भारतवर्ष ही के क्यों बरन सारे यूरोप और एशिया वगैरह कुल ज़मीन भर के वाशिन्दे भली भांति जानते हैं। स्यात् कोई न जानता हो तो मिष्टर ब्लाकट रचित वल्लभकुल चरित्र दर्पण १,

वल्लभकुल छल कपट दर्पण २, वल्लभकुल दम्भ दर्पण नाटक ३, बल्लभकुल इतिहास नाटक ४, हिन्दीमें और बोम्बे गोसांई लाईबिलकेस (Liable case—Translation in English) जो इंगरेजी में लन्डन [London] नगर में छपा है मंगाकर देख लेवे। बस इन पुस्तकों के अवलोकन से वह इन वल्लभकुलियों के कुकर्मों का पूरा पूरा हाल जान जावेगा ॥

७—अभी हाल ही में मैंने तारीख २७—३—०९ के भारतमित्र—कलकत्ता खण्ड ३२ संख्या १३ पृष्ठि ३ कालम ४ में पढ़ा है। कि-दरबार साहब तरन्तारन में एक यात्री अपनी स्त्री के साथ स्नान करने को आयाथा। एक किसी पुजारिने उस की स्त्री को उड़ालिया। यात्री को नालिश करनी पड़ी। जिस में एक पुजारि और उस के दो लड़के पकड़े गये। सब की जमानतें हुई। सुना है कि बड़ी मुशकिल से स्त्री का पता लगा। यहभी सुना है कि जब पुजारिजी के लड़के से यह बात प्राईवेट (निजके) तौरपर कही गई। तब उसने कहा कि यदि यात्री अपनी औरतों को लायंगे तो हम भी वही करेंगे जिस के वास्ते हम को बद नाम किया जाता है ॥

९—श्री मान् बैजनाथ जी जज ॥

श्री मान् राय बहादुर लाला बैंजनाथ जी. बि. ए. एफ. ए. यू. जज अदालत खफीफा इलाहाबाद कहते हैं—

हमारे यहां बड़े बड़े मन्दिर रोज़ बनते हैं, तीर्थों पर बहुत सा द्रव्य रोज़ लुटाया जाता है, परन्तु इस से न चित्त शुद्ध होता है न देशोपकार किन्तु मन्दिरों और तीर्थों में विद्या और ज्ञान की जगह दंभ और दुराचार प्रायः बढ़ता है। इस समय तीर्थाटन शुद्धि का कारण यों नहीं होता कि वहां पर ज्ञानियों और भक्तों की अपेक्षा दूकानदार अधिक हैं। लोग सैंकड़ों पाप नित्य करते हैं। क्या इन पापों का प्रायश्चित् एक बार तीर्थाटन से या थोड़ी बहुत कथा सुनने से होसक्ता है? नहीं

नहीं कदापि नहीं होसक्ता। काशी, प्रयाग, पुष्कर, गया, मथुरा, जगन्नाथ और बद्रीनाथादि तीर्थों में जो लोग हो आते हैं या जो वहां हीं रहते हैं। क्या वह औरों की अपेक्षा अधिक पुण्य शील होजातेहैं? नहीं नहीं कभी नहीं। महाभारत में कहागया है। कि—"तीर्थों की महिमा इस कारण है कि वहां पर धार्म्मिक महात्मा निवास करतेहैं। परन्तु मानस तीर्थ अर्थात् मनकी शुद्धि पृथिवी के सब तीर्थों से भिन्न है। उसी तीर्थ में स्नान करो, सत्य ही उस तीर्थका जल है, धृति उस का कुण्ड है, उस में स्नान करनेसे निर्लोभता, आर्जव, सत्य, मृदुता, अहिंसा, दया और शान्ति फल मिलते हैं। जो पुरुष तत्त्ववेत्ता अहंकार से रहित है, जिस के रजोगुण तमोगुण सब धुल गए हैं, जो बाह्य शुद्धि की अपेक्षा अपने लक्ष्य पर ही आरूढ़ है वोही बड़ा तीर्थ है। जल के स्नान से मनुष्य की शुद्धि नहीं होती—शुद्धि तो उसकी होती है जिसने दम रूपी जल में स्नान किया है"। दान, पुण्य और तीर्थों की यह व्यवस्था जबतक न सुधरेगी तब तक न निज कल्याण हो सकता है और न देश कल्याण॥

देखो! धर्म्म विचार नाम पुस्तक पृष्ठ ८३—८४

१०—एक विद्वानदेवी

ने कहा है—आज कल तीर्थों में भीड़ भाड़ अधिक होती है। तथापि सन्त, महात्मा, विद्वान आदि ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते हैं। पण्डों के विषयमें यही कहावत करनेका समय आया है कि "लड़का मरे चाहेलड़की मर नाई को अपने टकासे काम" ये पण्डे लोग यात्रीको अपने वाग्जाल में ला जो कुछ उसके पास रहता उसे ले और औरभी कुछ लेने की आशा में आ=फंस चिट्ठी, रुक्का, लेखभी लिखवा लेतेहैं और संकल्प (घर पर देने का प्रण) भी करवा लेते हैं। यहां तक पण्डों की रीति बिगड़ी हुई है कि यात्रियों की यात्रा भी पूरी नहीं होने देते हैं, न किसी एक महात्मा से मिलने देते और न शास्त्र की चर्चाही सुनने

देते। यदि किसी ने इस बात का हठ किया तो होड़ाचक्र जाननेवाले बम्मन से पहिले ही ठीक ठाक करलेतेहैं यह कि जो मिलैगा सो सब हम लेंगे तुमको केवल चार आने देंगे और अपने पास से एक दुशाला उढ़ाके पण्डित बनालेजाते हैं। ऐसी बहुतही ठग हारियां पण्डे लोग करतेहैं। इसलिये अब मैं अपने भ्रातृगण से सविनय निवेदन करतीहूं कि आप जब कभी तीर्थ कहलाने वाले नगरों में सैरको जावें तो केवल पण्डों के जालमें आ, डुबकी मार, अक्षत फूल चढ़ाकर लौट न आवें क्योंकि ऐसी यात्रा का कुछ फल नहीं होता केवल यही कि अमूल्य समय को व्यर्थ गंवाना, शारीरिक क्लेश सहना और द्रव्य खोकर भिक्षुक बन बैठना है। जब यात्री किसी तीर्थ में जावें तो उन वञ्चक =ठगिया = छलिया सण्डा पण्डाओं को छोड़ उस तीर्थस्थ विद्वान तथा सेठ साहूकार के द्वारा विद्वान महात्माओं को ढूंढ़ कर उनसे मिलें क्योंकि उन महात्माओं के मिलने से इन यात्रियों का जीवन सजीवन होजाता है। बस इसी लिये व्यासादिकों ने तीर्थ—यात्रा को अत्यन्त उपकारी कहा है॥

तीर्थों में केवल बड़े बूढ़े पुरुष ही नहीं जाते हैं वरन छोटीं, बड़ी बहू बेटियां भी जाती हैं। तीर्थों पर परदा नहीं माना जाता इसी लिये आज कल स्त्रियों के तीर्थ स्नान की चाल ऐसी बिगड़ी हुई है कि कुछ कहने में नहीं आता। बड़े बड़े धनाढयों और भले भले विद्वानों की भली भली नव युवक बहू बेटियां, जोकि सुन्दरता में अच्छी अच्छी अप्सराओं को भी मात करतीं हैं, केवल एक बहुत बारीक छोटासा वस्त्र पहन कर स्नान करतीं हैं और जब जल से बाहर निकलने लगतीं हैं तो उन का सर्वांग दिखलाई देता है, रोम रोम दीख पड़ता है, गुप्त स्थान भी भले प्रकार दृष्टि आता है कि जिस पर नज़र पड़ते ही कामियों की, केवल कामियों हीं की क्यों? वरन अन्य अच्छे अच्छे पुरुषों की भी कामाग्नि भबक उठती है जिसके कि बड़े बड़े बुरे बुरे फल फलते

हैं । हे मेरी प्यारी वहिनों ! ऐसे जड़ तीर्थों पर जाकर अपनी लाज मत खोओ । क्योंकि कुलवती स्त्रियों का तो परम भूषण केवल एक लज्जा ही है अर्थात् लज्जा हीन कुलवती स्त्री निन्दित गिनी जाती है । यथा—

निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः ॥ १४० ॥

देखो ! चाणक्य नीति अ० ८ । १८ और पाञ्चाल पण्डिता-जालंधर खण्ड ३ संख्या ३ पेज १७–१८ ॥

सत्यार्थीजी—देवीजी का कहना सत्य है कि तीर्थों पर परदा (लज्जा) नहीं माना जाता परन्तु वहां परदा न मानने के " कारण " मुझे दो दिखलाई देते हैं ॥

१—स्त्रियां अपने घरों में चार दीवारी के अन्दर घूंघट मारे मारे उब उठती हैं इस लिये जब वह उकताई हुई तीर्थों में जातीं हैं तो स्वतन्त्रता पूर्वक शुतर बे मुहार की तरह विचरने लगतीं हैं और उन के रक्षक (पिता, भ्राता, पति, पुत्र) भी पुण्यक्षेत्र समझ कर उन की बाग डोर ढीली छोड़ देते हैं ॥

२—तीर्थ स्थान के दान लेने और भीख मांगने वाले पुरोहित पंडे और अन्य भिक्षुक भी जोकि उस समय यात्रियों के धर्म्म शिक्षक, आज्ञा दायक और पथ दर्शक होतेहैं परदा = शर्म = हया = लज्जा न करनेका उपदेश देते हैं क्योंकि परदा के न होने से उन को माल अच्छी तरह मिलजाता है ॥

बस इसी लिये तीर्थ स्थानों में आकर अच्छे अच्छे धनवान और विद्यावान जैसे सेठ, साहूकार, रईस, बाबू, जमीदार, तअल्लुकेदार, तहसीलदार डिपटी, दीवान, वकील, बारिस्टर, एफ. ऐ, , बि.ऐ, एम.ऐ, एल.एल.बी, एल. एल. डी., मुनशी, आलिम, फाजिल, पण्डित, शास्त्री, आचारी, महा महोपाध्याय आदि हिन्दू लोगों की बहू बेटियां जो कि कभी घर के दर से बाहर ही न निकलने पाईं थीं, लज्जा को तिलाञ्जली दे सहस्रों मनुष्यों के बीच गंगा जमना आदि नदियों में स्नान करतीं हैं । पाषाण

मूर्त्तियों के दर्शनार्थ घर घर घुसती फिरतीं हैं । वनावटी साधुओं के देखने को दर दर दौड़तीं डोलतीं हैं । तीर्थ पर के रसिया भिक्षुकों की स्थान स्थान निम्न लिखित अद्भुत, द्विअर्थी, रसीली मधुर मधुर वाणियां = बोलीं—ठोलीं, सुन सुन कर प्रसन्न होती रहतीं हैं ॥

॥ बोलीं—ठोलीं ॥

१—राधे ! राधे !! हम हैं बिना लुगाई आधे !!! देतीजा २ ॥
२—अरी ! दरसपरस करती कराती जाओरी । कुछदान देतीजा॥
३—अरी ! यहां लज्जा न करोरी ! ज तो मोरमुकट वारेको घरहै॥
४—अरी ! जा व्रज में हया कों हिये में नांय राखो करें हैं ॥
५—बोलौरी बोलौ ! राधा की बाधा के हरैया की जै ॥
६—कहौरी कहो ! राधा रानी के संग रमण करैया की जै ॥
७—कहिरी कहि ! रेवती रमण की जै और कछू हमैं दै ॥
८—बोल ! गोपी मर्दन कंस निकन्दन की जै । ला कछू दै ॥
९—बोल ! मोर मुकट बारे की जै । बोल ! कृष्ण प्यारे की जै ॥
१०—राधाराधा बोल ! वृन्दावनमें डोल । राधे ! राधे !! राधे!!! ॥
११—कृष्ण कृष्ण बोल ! गांठी से रुपया पैसा खोल ॥
१२—कहौरी कहौ ! कुब्जा की कमरकों सूधौ करैया की जै । जो न बोलैगी जै ताकी होयगी छै । अरी ! हाथ ऊंचो करती जाओरी .... ॥
१३—अरी ! कोऊ हमारी हू खबर लेइगी ? यहां तो कोऊ अकेलो ही नांय रहे । जा व्रज में तो पत्तासों पत्ता चिपट के सोवै है । अरी ! अबतो कछू दे जा । राधे ! राधे !! हाय !!! बिना लुगाई आधे । देती जा, देती जा, दान देती जा, पुन्य करती जा .... ॥
१४—अरी ! जा जग्गे तो जसुमत मैया को पूरौ रसिया, दूध—दही लुटैया, चीर चुरैया, माखन—मिसरी खवैया,

गईया चरैया, बांसुरी-बजैया, घर २ नचैया, कुदैया, कान्ह—कन्हैया रात दिन सोलह सहस्र गोपिन सों केलि = कलोल करौ करैहै। जासों यहां कलोल = क्रीड़ा करवेको कछू डरही नांय होय है। हंसौरी हंसौ खूब हंसौ और खूब दान पुन्य करौ .... ॥

१५—अरी! यह व्रजभूमि तो बिहारस्थली१ है, यहांतौ बिहारी २ बिहारीलाल ३ बिहर बिहर ४ बिहसि बिहसि ५ के बिहान ६ ही सों बिहार ७ करौ करै है। जाही सों तो जा जग्गे काहू बातको भय ही नांयने चाहै जो कोऊ चाहै जैसो बुरो भलो काम करै .... ॥

शब्दार्थ—१ = लीलाभवन। २ = खिलाड़ी। ३ = कृष्ण। ४ = हुलस हुलस। ५ = हँस हँस। ६ = प्रातहकाल। ७ = क्रीड़ा॥

१६—अरी! ज मथुरा तो तीन लोक सों न्यारी है। यहां घूंघट घांघट को कछू काम नांयने। यहां तो दरस परस करवे करायवेको, हँसके बोलवेको, धरमधक्का लैवे दैवेको धर्महै॥

१७—राधे! राधे!! राधे!!! राधेस्याम! स्यामा स्याम! अरी देदे

१८—अरी! कछू तो देउ, जो देउगी सो लेउगी .... ॥

१९—अरी! तुम में सों कोऊ हमारी हू खबर लेइगी। राधे! राधे!! बिना कुगाई आधे राधे!!! अरी जा बखत को दियो आगे आड़े आवेगो .... ॥

२०—अरी! का खाली चेंटा ही मारवे कों आई हौ, सो कछू देउ नांयनों का खसम ने देवे की नांई कर दीनी है। यहां तो काऊ सों मत डरो और कृष्ण सों प्रेम करौ। यहां कोऊ खसम सों नांय डरौ करैं हैं यहां तो केवल कृष्ण ही कृष्ण रटौ करैं हैं। बोल कृष्ण बलदेव की जै और हमैं कछूदै कहौ केसो लगें? हमारो कहिवो। कहौ

बहुत तो नांय खटकै ? हमारो बोलै । बोल ।

जै हम कों दै, और हमसों लै । का? आशीर्वाद ॥

बस स्त्रियां इन रस भरी बोलियों को सुन सुन प्रसन्न हो जातीं हैं और भिक्षुकों को खूब दान देतीं हैं और निर्द्वद्व = बेखटके हो किसी की भी कानि नहीं करतीं हैं और न चलने फिरने और न्हाने धोने में लाज = शरम = परदह ही रखतीं हैं ॥

बहुधा स्त्रियां मन्दिरों की बनावट, भीतों की रंगावट, बिछौनों की बिछावट, वस्त्रोंकी सजावट, झाड़-फानूसों की झलझलाहट, कांचोंकी चमचमाहट, गवैयों की गलगलाहट, बजैयोंकी बलबलाहट, भजानियोंकी बिलबिलाहट, झांझकुटोंकी झनझनाहट, तंदूरेकी तुनतुनाहट, सारंगी की सुनसुनाहट, चित्रों की सुन्दरता मूर्तियों की अद्भुतता, छोकड़ों का रास, वेश्याओं का नृत्य देखने के कारण अपनी दुर्दशा कराने को ऐसे पाषाणमूरतालयों में घुस जातीं हैं कि जहांपर निम्न लिखित कार्यवाहीं = लीलायें प्रायः हुआ करतीं हैं ॥

१– भीड़के मारे स्त्री पुरुषोंके परस्पर में पेटसे पेट और छातीसे छाती मिल जातीं हैं ॥

२– बिचारी गरीब निबला अबलायें तो भीड़–भड़क्के, धूम–धड़क्के और धक्के–मुक्के के कारण पृथ्वीसे एक एक हाथ ऊंची उठजातींहैं और उस महान भीड़में मनुष्यों की रेल पेलके हेतु ऐसी मिचजातींहैं कि उनकी सांस ऊपर की ऊपर और नीचेकी नीचे रह जातीहै । यदि कहीं नीचे पैरोंमें गिरपड़े तो मरही जातीहैं । और यदि न भी मरीं तौ अधमुई तो अवश्यही होजातीं हैं ॥

३– अच्छे २ बलवान मनुष्य भी उस भीड़में हक्के–बक्के बनजातेहैं ॥

४– पर हां चोर, जार, बदमाश लोगोंकी खूब बन पड़तीहै । जैसे– चाहै जिसकी छातीपर हाथ मार देतेहैं । चाहै जिसे अंगुलातेहैं । चाहै जिसे ऊपर को अधर उठा लेतेहैं । चाहै जिसे धक्का दे पीछे हटादेतेहैं ।

चाहे जिसे हाथ खींच आगे धरलेते हैं। चाहे जिसकी प्रतिष्ठा भंग करदेतेहैं। चाहे जिसका वस्त्राभूपण झटक लेतेहैं। अस्तू मैं कहांतक लिख गिनाऊं वहां तो ऐसीहीं अनेकानेक कुलीलायें हुआ करतीहैं॥

बहुधा बड़े २ मन्दिरों में स्वर्ग की भूखी और धर्मकी प्यासी हिन्दू अबलाओं को मुसल्मान द्वारपालों के कोड़ोंका भी स्वाद लेना पड़ताहै। हर एक किस्म के बदमाशों की बदमाशी का मजअ = जायका चखना पड़ताहै। और अंतको धर्म्म—धक्के सहने पड़ते हैं॥

होली के दिनों में बहुधा पुजारी लोग नव—यौवनाओं के कुच, कपोल और नेत्रआदि अंगों को ताक ताक के रंग भरी हुई पिच-कारियों को तान तान कर मारतेहैं। और बहाना करते हैं कि श्री ठाकुरजी होली खेलते हैं॥

उक्त लेख की पुष्टता में श्री मान् वर पण्डित श्री विश्वनाथजी शर्म्मा आर्य्य धर्मोपदेशक कहते हैं—कई एक कारणों से मुझे मथुरा जी में प्राय: तीन वर्ष से वास करनापड़ा। यह एक भारत में हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, छोटे बड़े सब मिलाकर न्यूनाधिक पांच हजार देवालय हैं। मथुरा का ज़िला देव मूर्त्तियों और तीर्थों से आबद्ध है। चारों तरफ़ राधा कृष्ण की मूर्त्तियां विराजमान हैं, यथाऽवसर मुझे उन के देखने का भी समय मिला है। एक समय वृन्दावन के प्रसिद्ध मन्दिर रंगजी को देखने गया। उस मन्दिर की एक परिक्रमा देते हुए दीवाल पर कोयले से लिखा हुआ कुछ नज़र पड़ा तो क्या देखताहूं "प्यारी! तुम आज नहीं आई, कल ज़रूर दर्शन देना, मैं ठीक समय पर आऊंगा" इतना पढ़तेही नाना प्रकार के बिचार उठने लगे। क्या ऐ ईश्वर! यहां भी प्रणय प्रतिज्ञा पूरी की जाती है? यह तो मन्दिर है। क्या यहां भी इन्द्रिय चरितार्थ का अड्डा है? पुन: आगे बढ़ातो पेंसिल से लिखी और भी दो चार बातें मिलीं, जिनका लिखना और पुस्तक की भूमिका को हम अश्लील बनाना नहीं चाहते, परन्तु क्या

करें ? यथार्थ घटना जो होती हैं उन को न लिख कर सत्य का गोपन भी करना नहीं चाहते हैं। यह इस व्रजवास में प्रत्यक्ष है । यहां के आचार्य्यों की लीला विशेष रूपसे जिन्हें देखना हो वो " वल्लभकुल-चरित्र—दर्पण " देखें परन्तु द्वारिकाधीश की सीढ़ियों पर बहुत कुछ प्रत्यक्ष का अनुमान हो जाता है । ०००० क्या क्या कुकर्म क्या क्या अवर्न इन पाषाणालयों में होते हैं जिनके नित नये समाचार हम पढ़ते रहतेहैं । ऐ पाठकगण ! आप इस भारतवर्षकी दुर्दशा का कारण क्या समझ बैठे हैं ? क्या आप को माद्धम नहीं है कि बेचारी राजकुमारी सरोजनी राना लक्षमणसिंह की एक मात्र दुहिताकी दुर्दशा इस पाषाण पूजा के कारण हुई । नहीं नहीं केवल राजकुमारी ही की क्यों, चित्तौर राज्य के ध्वंस होने का कारण यही पाषाण पूजा है । क्या पाठक भूलते हैं । सोमनाथ के मन्दिर और मूर्त्ति की दशा एवं उनके पुजारियोंकी दुर्गति क्या किसीसे छिपी हुई है? क्या काशीके विश्वनाथ की गति एवं मथुरा के असंख्य रजतस्वर्ण और रत्नजटित पाषाणों की ध्वंसता किसी से अप्रगट है ? क्या किसी से त्रिपती महन्त की बातें छिपी हुई हैं ? यदि पाठक इन अभियोग, नियोग, त्रियोग और अत्याचार, व्यभिचार की दशाओं का अनुसन्धान करना चाहे तो प्रथम वो बड़े बड़े पाषाणा-लयोंको निरीक्षण करेंतो उनको पूर्ण पता लग जावेगा॥ देखो ! मूर्तिपूजा मीमांसा पृष्टि ५—६—७॥ यदि कोई भला मानस स्त्रियों की कुगति देखना चहता होतो उसको उचित है कि वहमथुरा, वृन्दावन और अयोध्यादि नगरों के बड़े २ पाषाण मूर्तालयों में श्रावण के झूले = हिंडोले, भादों के पालनें और गोरधन की दिवाली और सुढ़िया पूनौ, फाल्गुनमें व्रज की होली, अषाढ़ में जगन्नाथ की रथ यात्रा आदि और पर्व्वों के समय नदी और तालावों पर स्नान के मेले अवश्य अवलोकन करे ॥

११—श्री पण्डित छुट्टनलालजी ॥

श्रीमान् वर पण्डित छुट्टनलाल जी स्वामी प्रधान आर्य्य समाज परौं

क्षितगढ़ तथा सम्पादक " ब्राह्मण समाचार " पत्र कहते हैं—

तीर्थों पर तीर्थ पुरोहित होते हैं उन का कृत्य पूर्व समय में तो यही था कि सब ओर से हित का उपदेश करें। परन्तु अब वह सप्लाइङ्ग एजेण्ट का काम देते हैं अर्थात् यजमानके डेरों की रसद जैसे अचार, आटा, दाल, घी, निमक, मिर्च, मसाला, लकड़ी आदिका और औरभी सब प्रकारका सब प्रबन्ध करते हैं। विद्वान यजमान इन पण्डोंसे कभी कोई शास्त्रिय प्रश्न नहीं करते क्योंकि वह लोग (यजमान) भली भांति समझते हैं कि बहुधा पण्डे बछिया के बाबा, तुरंग के ताऊ, कुरंग के काका, चूहे के चाचा और भैंस के पढ़ा अर्थात् अपढ़ होतेहैं। हां! कभी २ कोई २ बेपढ़े = अविद्वान यजमान पिण्डकराने को कह देते हैं तो ये पण्डे दक्षिणा के नाम से मजदूरी के चार आने देकर किसी एक ऐसे पाधा को पकड़ लातेहैं जो सिवाय मृतक-श्राद्ध और तर्पण विषय के दो चार मन्त्रोंके और कुछ न जानता हो, कुशा, तिल, जौं, जौ का आटा, फूल-पत्ती, दीपक-बत्ती और आसन-बासन आदि सब वस्तुऐं अपने साथ एक थैलीमें रखता हो; यजमान को छायामें बिठाकर आप धूपमें बैठता हो; यजमान को सौ सौ आशीर्वाद देताहो और यजमान को फुरसत के वक्त खुद हाजिर रहता हो॥

नोट—हाय! यह पण्डे पिण्ड कराना भी नहीं जानते। अरे! जानें कहांसे विद्यासे तो शत्रुता रखते हैं॥ दा. प्र. श. दान-स्या.॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्य पूजा व्यति क्रमः॥ १४१ ॥

के अनुसार तीर्थोंपर अपूज्यों की पूजा और पूज्योंकी अपूजा होतीहै इसी से सारे भारत वर्षमें दुःख, दारिद्र, रोग, शोक और भय की वृद्धि हो रही है। यदि यह करोड़ों रुपयों का दान विद्वानों को दिया जावै और मूर्ख पण्डों को न दिया जावै तो सारे आरत भारत का सारा दुःख दूर हो जावै॥ देखो! दयानन्द पत्रिका भाग ३ अंक ११ पेज १६७॥

१२—श्री रामकृष्णानन्दगिरिः ॥

श्री मत्प.पं० व्याघ्र चर्म्माम्बरि सिंहासनासीन स्वामि श्रीरामकृष्णानन्द गिरिः गद्दी बाघम्बरी—दारागंज—प्रयाग कहतेहैं—

उत्तम उत्तम खान पान करनें और पड़े पड़े डकारने वा परस्पर के द्वेष वृद्धि करनेके अतिरिक्त भारतके धर्म्मगुरु (पण्डे) कुछ नहीं करते। महाशयो ! परस्पर के द्वेष से, वा आलस्य में मस्त पड़े रहने से, आप लोगों का मान पान कब तक रहेगा और भिखारी भारत इसका प्रतिपालन कब तक किया करेगा ? इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि शिक्षित समाज में आज कल आप का कितना आदर है और किस दृष्टि से देखेजाते हैं ? तब इस का भविष्य विचारोंकि आगे इस का क्या परिणाम भोगना पड़ेगा ॥ देखो अभ्युदय भाग२ संख्या ३९ पृष्टि ५ कालम २ पंक्ति ८—२१ ॥

नोट—अहा ! क्या सुन्दर वाक्य हैं । क्या धर्म्मगुरू (पण्डे) इन वाक्यों पर कुछ विचार विचारेंगे ? ॥ दा. प्र. श. दान. त्यागी ॥

१३—एक महात्मा

कहते हैं—हिन्दुओं के तीर्थ स्थलों पर पण्डा लोग यात्रियों को (धन लेने में) जैसा तंग किया करते हैं वह बात किसी से छिपी नहीं है । इसी प्रकार ब्रज में भी चौबै, कछवै और बन्दरादि के कष्टों के अतिरिक्त कई स्थानों में यात्रियों को अपने प्राण बचाने का भी प्रयत्न करना पड़ता है । जब कि वहां के पण्डा यात्रियों के कपड़े तक भी लेने की इच्छा रखते हैं तो उन से यह नहीं होसकता कि परस्पर थोड़ा थोड़ा चन्दा करके जो कुण्ड या घाट उन का जीविका स्वरूप है उस को तो निर्मल रखने की चेष्टा करें ॥ देखो ! आर्य्यमित्र आगरा—वर्ष ७ अंक ४२ पृष्टि ३ कोठा १ ॥

नोट—महात्मा का कहना बहुत ठीक है । वास्तव में पण्डे लोग धन लेने की खातिर यात्रियों को बहुत तंग करते हैं और अपने तीर्थ-

स्थलों की सफ़ाई पर कुछ ध्यान नहीं देते । बस यही कारण है कि म्यूनीसिपल्टी को पण्डों के घाटों की भी सफ़ाई का प्रबन्ध करना पड़ताहै । यहां मथुरा में भी मैं देखताहूं कि विश्रान्तघाट की भी सफ़ाई बहुधा म्यूनीसिपेल्टी ही किया करती है ॥ दा. प्र. श. दान त्यागी ॥

१४—श्रीमान् लाला चिम्मनलालजी गुप्त

कहते हैं—आज कल तीर्थों की वह दुर्दशा हो रही है जो कहने में नहीं आती । देखिये ! जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भंग चरस उड़ता है । जहां ऋषि मुनियों के वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां सण्डे मुसण्डे नाना रूप धारण कर लोगों को अनेक प्रकार से ठगते हैं लड़का के नाच दिखलाये जाते हैं पण्डों की स्त्रियां भी यात्रियों की ख़बर लेती रहती हैं ॥ देखिये ! नारायणी शिक्षा पे. ४४८

नोट = यहां मथुरा में भी पण्डे लोग अपने लड़कों को स्वांग बना बनाकर तरह तरह के नांच दिखाते हैं और इसी बहाने से स्वांगी लोग बहुतसा रुपया इकट्ठा कर लेते हैं ॥ स्वांगी के अर्थ स्वांग बनाने वाला

१५—श्रीपण्डित कालीप्रसादजी कहते हैं । कि—

* तीर्थ पण्डे डकौतों की तरह उतरन भी पहनते हैं *

देखिये ! पण्डे लोग वैसे तो रात दिन यजमानों की उतरन—पुतरन पहनाही करते हैं किन्तु जब कभी राजा—बाबुओं के पुराने—धुराने उतरे—पुतरे बेश क़ीमती कपड़ों को पहनते हैं तो अपने को राजा का जमोई और नवाब का बहनोई समझने लगतेहैं । और मिथ्या ठसक में आकर भले भले लोगों के बीच में अरुणशिखा के समान ऊँची गर्दन करके ऐसे ऐंठ ऐंठकर चलते हैं जैसे कि मयूर के गिरे हुए परों को अपनी दुम से लगाकर कौए अकड़ २ कर चलतेहैं ॥

शब्दार्थ—जमोई = जमाई । अरुणशिखा = मुर्ग़ा । मयूर = मोर ॥

१६—श्रीपण्डित भैरवप्रसादजी ने कहा है। कि—

* तीर्थ पण्डे चिड़ीमारों को भी मात करते हैं *

सुनिये—तीर्थ पण्डे यात्रियों को फांसने में बहेलिये = बधिक

=चिड़ीमार से भी अधिक कार्य्य कर दिखलाते हैं अर्थात् चिड़ीमारों का हाथ तो कभी खाली भी पड़ता है परन्तु पण्डे =पुरोहित तो कभी चूकतेही नहीं। देखिये! चिड़ीमार जाल बिछाता है तो पुरोहित कृष्ण या रामनामी दुपट्टा उढ़ाता है। बधिक फन्दा मारता है तो पण्डा कण्ठी बांधता है। बहेलिया चुगा चुगाता है तो तीर्थ पुरोहित प्रसाद—(दही-पेड़े, इलाइचीदाने, रामरज, ब्रजरज, गंगा माटी, जमना रेती, माखन, मिश्री, गंगाजल, जमनाजल, तुलसीदल, चरणामृत और चन्दनादि पदार्थ) खिलाता पिलाता है। बधिक मूँठ मारता है तो पण्डा यात्री के सिर पर हाथ फेरता है। बहेलिया गुलेल चढ़ा गुल्ला मारता है। तो पुरोहित निज मुख फार कुबचन सुनाता है। यदि चिड़ीमार सुन्दर सीटी बजा परन्दों को मोहता है तो पण्डा मधुर २ शब्द सुना यात्री को वश करता है। बहेलिया परन्दोंको देखकर प्रसन्न होताहै तो पण्डा भी यात्रियों को देख खुश होता है। जालिया कभी कभी चिड़ियों के पकड़ने में घबड़ा जाता है तो तीर्थ पुरोहित भी कभी २ यात्रियों को अपने वशमें करनेके लिये व्याकुल होजाताहै। यदि चिड़ीमार चिड़ियों के पकड़ने में अपना खाना पीना विस्मरण जाता है तो तीर्थ पण्डा भी यात्रियों को अपने काबू करने में भोजन करना बिसर्जाता है, भोजन तो दूर रहा, जल—भांग पीना भी भूल जाता है। बस तात्पर्य्य यह है कि पण्डे लोग चिड़ीमारों को हमेशा शिकस्त देते रहते हैं॥

१७—श्री पं० राम कुमारजी महाराज

कहते हैं। कि—॥ पण्डे चारौं से चतुर होते हैं॥

प्र०—चारौं कौन? ॥ उ०—पीर, बवर्ची, भिश्ती, खर॥ प्र०—कैसे? ॥उ०—सुनिये — पेशावर में एक दिन एक व्यौपारी ने अपने पुत्र से कहा — मैं कल कुछ माल खरीदने को बनारस जाऊंगा सो साथ के लिये——

लाओ बेटा ऐसा नर। पीर बवर्ची भिश्ती खर॥

बेटा—बनारस बहुत दूर है। इस लिये यहां से नौकर लेजाने में ख़र्च जादा पड़ेगा। इस से आप वहां ही किसी को कर लेना॥

बाप—वहां कब और कैसे तलाश करूंगा? मुझे तो रेल से उतरते ही चाहियेगा॥

बेटा—आप को ढूंढ़ने की कोई आवश्यकता न पड़ेगी। वह तो बनारस से इधर ही १०, २०, ३०, ४०, १००, २०० माईल पर रेल में आकर खुद ही आप को तलाश करलेवेंगे॥

बाप—अच्छा! यह तो बताओ, मुझे किसी बात की तकलीफ़ तो न होगी। वह क्या क्या कार्य करते हैं?

बेटा—आप को कोई किसी तरह की तकलीफ़ न होगी। वह निम्न लिखित कार्य्य करते हैं। सुनिये—

॥ दोहा ॥

आगे चालि जजमानन कहं, कछुक दूरिते लेंहिं।
बहुत भांति मनुहारि करि, निज गृह आसन देंहिं॥

॥ नरेन्द्र छन्द ॥

दै अवास सुख साज सबै पुनि निज करलाय जुटावैं।
दीपक बारि तासु ढिग धरि पुनि खटिया लाय बिछावैं॥
भोजन सामग्री बज़ार तें दौरि लाय पुनि देहीं।
चौका साफ कराय पात्र सब ताके ढिग धरि देहीं॥१॥
ल नवीन घट सुभग स्वच्छ जल धाय कूप तें लावैं।
कण्डा चिलिम तमाखू लकड़ी पुनि पुनि पूंछि मंगावैं॥
कबहूं कबहूं निज हाथन तें भोजन देंहिं बनाई।
पान लगाय खवाय ताहि पुनि चिलमहिं देंहिं चढ़ाई॥ २॥
शय्या देंहिं बिछाय कबहुं कहुं धोती लेंहिं निचोरी।
झूंठी कहत न बात "दीन" यह लखी आंख की मोरी॥

झाड़े जंगल हित जंगल लौं जजमानहिं लै जावें।
जल दै थान बताय दौरि पुनि दौरि दतून करावें ॥ ३ ॥
वर्ण भेद कौ ज्ञान त्याग कैं सेवें सबहिं अमानी।
पूज्य बानि तजि बनि बनि पूजक सुफल करहिं जजमानी ॥
वे महाराज तीर्थ पण्डागण विप्र कुलीन वरिष्ठा।
उनके कीन कर्म कौ दीन्हौ "दीन" सुकवि यह चिट्ठा ॥ ४ ॥
काछी, कुरमी, लोधी, नाऊ तीर्थ करन जे आवें।
माता, पिता, अन्नदाता की उन मुख पदवी पावें ॥
कोरी, भाट, कलार, कहारहु, शूद्र कुपंथ अनुगामी।
पदवी लहैं उनके मुखते "महाराज" अरु "स्वामी" ॥ ५ ॥
जजमानन की लादि गठरिया तीरथ तीरथ फेरैं।
कबहूं लै लरिकन कहं कनियां लार मूत्र नहिं हेरैं ॥
'हांजू' 'महाराज' 'धनदाता' 'मात पिता' 'अरु' 'स्वामी'।
ऐसे बचन दीन ह्वै बोलैं करि अति नीच गुलामी * ॥ ६ ॥
*यह कविता लक्ष्मी के सम्पादक श्रीबाबू भगवानदीन जी कृत है ॥

दान हेत यजमान के, नीच ऊंच करि काज।
दौरत स्वान समान सो, आनि बानि तजि लाज * ॥

* इस सारी कविताको "दानदर्पण—ब्राह्मण—अर्पण" नामकपुस्तक मेंपढ़ियेगा। पुस्तक मिलनेका पता=रविदत्तशर्म्मा—सीतलापाइसा मथुरा

अन्त को व्यौपारी पेशावर से बनारस को अकेला ही रेल पर सवार होगया। लखनौ पहुंचतेही पण्डे उससे आ मिले और लगे कहने—

कहां से आये कौन जात हौ निज पुरखन का नाम कहौ।
हमी तुमारे तुमी हमारे लिखा गये सो नाम लहौ ॥

व्यौपारी—तुम कौन हौ? और क्या काम करते हौ?

पण्डे—हम काशी तीर्थ के पुरोहित = पण्डे हैं। हम ऊपर लिखी हुई कविता के अनुसार सब कार्य्य करते हैं और सिवाय उसके—

हम जपते हैं नाम तुम्हारा । खैर मनाते हैं दिन सारा ॥
मा बहन और भाई बाप । जो हैं सो सब आपी आप ॥
शक मत करना हम पर भाई । गङ्गा किरिया राम दुहाई॥
जो कुछ हुक्म करें सरकार । हम करने को सब तय्यार ॥
बस अब—हम हजूर के पण्डे हुऐ शिवजी आप का कल्याण करें ॥

यह सुनकर व्यौपारी जान गया कि यह वोही लोगहैं जिन्हें बेटे ने बताया था । आखिर को व्यौपारी ने उनमें से एक को साथ लेलिया । उसने (पण्डेने) भी मन लगाके चारों जनों से बढ़कर अच्छे २ काम कर दिखलाये और हर एक तरह के सुख दिये । व्यौपारी माल ख़रीद कर घर पर लौट आया । बेटे को कह सुनाया । कि—पुत्त ! तेरा कहना सच्च है—पण्डे बड़ा सुख देते हैं । इसी लिये अब मैं भी कहता हूं । कि—पंडे चारों से चतुर होते हैं ॥

१८—श्री पं० शिवकुमार जीने कहा था। कि—

* पण्डे भठियारों से भी बढ़कर होते हैं *

क्योंकि भठियारे अपना चूल्हा कभी किसी मुसाफ़िर को नहीं देते और न किसी को अपनी कोठरी में ठहरने देते हैं किन्तु पंडे अपना ख़ास चूल्हा—चौका (रसोई—घर) भी यात्रियों के हवाले कर देते हैं । और अपने मुख्य निवास स्थान अर्थात् रहने की ख़ास= असली कोठरी में भी बिन जाने हुए हर एक तरह के मनुष्य को, चाहे वह भला हो चाहे वह बुरा हो । चाहे वह शाह हो चाहे वह पूरा चोर, जार, बदमाश हो । चाहे वह ग्रहस्थिन हो चाहे वह वेश्या हो । चाहे वह चतुर्वेदी हो चाहे वह चमार हो । चाहे “ आठों गांठ कुम्मैत ” या “ सब गुन भरी बेंतरा सोंठ ” या “ सब गुन मौला ” या “ बदमाशी में सोलह कला परिपूर्ण ” ही क्यों नहो जो रेलसे उतरते ही या शहरकी सीमा में घुसते ही अपने को तीर्थ—यात्री के नाम से मशहूर करता है, टिका लेते हैं । सच है—

भला बुरा न जाने कोइ । यात्री बने सो यात्री होइ ॥
साथ ही इस के आप को—

पण्डों का एक और भी बड़ा भारी गुण

बतलाता हूं । देखिये ! यदि ये पण्डे लोग यात्रियों को अपने घर पर न ठहराते, न उन की सेवा करते, न उन को सैर कराते, न उन का कहना मानते और न उनकी भली—बुरी हां में हां मिलाते तो यात्री लोग इन पण्डों को एक टूटी, फूटी, कानी, कुतरी कौड़ी भी न देते और सरायों में ठहरकर गोभक्षक हिन्दू धर्म नाशक यवन भठियारों को माला माल बनादेते जिससे कि गोहिंसक भठियारे दिलखोल कर गोवंश विनाश अवश्य ही अवश्य और भी अधिक से अधिक=अधिक तम करते ॥

१९—श्रीमान् ठाकुर रामसिंहजी कहते हैं । कि—

॥ पण्डे अमेरिकन चोरों के भी कान काटते हैं ॥

अबला हितकारक मासिक पत्र वर्ष ३ अंक १२ पृष्ठि २१ मास दिसम्बर सन् १९०६ ई० के में मैंने पढ़ाथा । कि— अमेरिका देश के बहुत से टापुओं में भारतवासी लाखों की संख्या में रहते हैं । वहां के लोग उन को कुली के नाम से पुकारते हैं तथा उन स्थानों के लोग भारत वासियों के भोले भाले लोगों को तथा उन के बच्चों को चुराकर पशुओंकी तरह इंगरेजों के पास बेचदेते हैं और वो इंगरेज लोग उन को पिन्जरों में पशुओं की तरह बन्द करके दूसरे टापुओं में लेजाकर बेच डालते हैं ॥

अब देखिये ! वो अमेरिका वाले तो केवल अज्ञान कुलियों ही को चुराकर सैंकड़ों कोसों की दूरी पर लेजाके छिपाते हैं परन्तु ये पण्डा लोग तो अच्छे अच्छे विद्वान यात्रियों को भी एक छोटे से शहर में ही ऐसा छुपाते हैं सिर्फ छुपाते ही नहीं बल्कि तीर्थ स्थान पर न्हिलाते हैं, मंदिरों को दिखाते हैं, बाजारों में घुमाते हैं और अंत को

अपनी दक्षिणा ले अपने तीर्थ नगर से यात्रियों को विदाकर देते हैं कि यात्रियों के असली पण्डों को खबर तक नहीं होती। यदि कोई यात्री अपने असली पुरोहित को पूंछे तो चट से कह देते हैं कि महाराज! वह तो मरगया और अब उसके वंश में भी कोई पानी देवा नहीं रहा। बस इसी चालाकी को देखकर मैं साहसपूर्वक कह सक्ताहूं। कि—पण्डे अमेरिकन चोरों के भी कान काटते हैं ॥

२०—श्री पण्डित वंशीधर जी शुक्ल कहते हैं। कि—

॥ पण्डे कुधान्य लेने में भी कड़ाई करते हैं ॥

बहुधा कहा करते हैं कि कुधान्य से बचो। यह बुरी बला है। इसका प्रतिग्रह उलटा खाजाता है। बुद्धि को बिगाड़ देता है। किन्तु ये तीर्थ पुरोहित सनीचर का तिल तेल भैंसा, और ग्रहण के समय सुवर्ण का सर्प और सवा हाथी तक नहीं छोड़ते। ऐसे दान रूपी चन्द्रमा को राहुबन सर्वग्रास कर डालते हैं। इतनी खाय खाय पर भी घर में देखो तो तवा तक नहीं है। यह सब मैले दान का फल है। बस इसीलिये तो अपने बड़ों ने मना किया है कि भूल के भी कुधान्य न लो। शास्त्रों में उस को भी कुधान्य कहते हैं कि जो घृणित रीति पर लाया जाता है अर्थात् देनेवाले की अनिच्छा अथवा थोड़ी इच्छा पर दबाकर लिया जाता है। अब पण्डों की कड़ाई का एक नमूना भी सुनलीजिये! २५ वर्ष के एक नवयुवककी नाटिका भवानी ने कोपकर कलाई छोड़दी है। नौ नाड़ी बहत्तर कोठा फिरकर धुकधुके में जान छिपी है। कफ राक्षस ने गला घोट रक्खा है। बोल नहीं निकलता है। जीवन की रस्सी के टूटने में कुछ पल ही बाक़ी हैं। घरमें हाहाकार मचा हुआ है। १८ वर्ष की युवती का कर्म फूटना चाहता है। और सर्व सुख जाने को हैं। माता का प्रियपुत्र=रत्न खोया जाता है। पिता का सहारा गिरा पड़ता है। भाई की भुजा टूटी जाती है। बहिन की आंख का तारा फूटा जाता है। कुल का दीपक

बुझाजाता है। वंश का सर्व नाश हुआ जाता है। पड़ौसी लोगों के चूल्हा नहीं जला है। मुहल्ले वाले बेचैन होरहे हैं। सारे शहर में त्राहि त्राहि मची हुई है। परन्तु तीर्थ पुरोहित जी ऐसे कुसमय मेंभी गो दान लेते हुए और अधिक धन लेने के लिये झगड़ा करने में नेकभी संकोच नहीं करते हैं। सुनिये—

पु०—यजमान ! यह गाय तौ ५०) रुपये की है, आप २०) में कैसे पुजाते हैं ?

ज०—पुरोहित जी ! जो मिला सो लो। गाय तौ तुमारे घर कीही है न ?

पु०—खैर ! इस की सांगता तौ और दीजिये ॥

ज०—कृपासिन्धु ! जो मिला सो लो, मौके वक्त का ख्याल करो; गाय तुमारे घर की है और तुमीहीं को मिलती है, मोल नहीं लाये हौ, चलो अब पीछा छोड़ो और बिदा हो ॥

पु०—चलैं कैसे ? अभी हमारा पूरा हक्क तो दो ॥

ज०—अजी ! तुम को शर्म नहीं आती, यहां तो हाय हाय मची है और आपको सांगता (गाय के संग की चीजें) लेने की पड़ी है॥

पु०—अरे ! शरम कैसी ? हमारा तो पेशा ही यह है। क्या हम खेती वाड़ी करते हैं ? क्या तुम नहीं जानते ? अगर घोड़ा घास दाने से मुहब्बत करेगा तो खावेहीगा क्या ? वस इधर यह कठोर हृदय = निर्दयी पुरोहित झगड़ रहा है ॥

उधर पुत्र का प्राण पखेरू उड़ भागने की चेष्टा कर रहा है। लो देखो ! वह देखते ही देखते निकल भागा। हाय ! वह अब फिर कभी देखने में न आवेगा। हाय यहीं पर आदमी हार जाता है, कुछ नहीं कर सक्ता है, देखते का देखता ही रह जाता है। बस सब रिश्तेदार मिल कर एक बड़े जोर शोर से रोना पीटना शुरू करते हैं पर पुरोहित जी अब भी डटे ही खड़े रहते हैं। और चट से हाथ पकड़ कर

कहते हैं। हैं, हैं, रोओ मत अभी नाड़ी चल रही है। अन्त को मृतक का बूढ़ा बाबा गर्दन हिलाते हुए पुरोहित के पास आता है, अरु उस संगदिल को ५) रुपये दे कहता है" अरे निर्दयी! अब तो तू यहां से कृष्ण मुख करजा" पञ्जा पाते ही पुरोहितजी गाय ले चम्पत होते हैं॥

जब बाप मृतक पुत्र के फूल [हड्डियों के कोयले] लेकर हरिद्वार पहुँचता है और पण्डा को सब तरह का सामान जैसे सब प्रकार के कपड़े, बर्तन, जूता, छाता, घड़ी, छड़ी, मोतियों की लड़ी, दो तीन आभूषण और नक़दी दे सुफल बोलने को कहताहै तो पण्डा जी गुस्सा हो बोलतेहैं "अरे! तूने दिया ही क्या है? अरे! खासे जवान पट्ठे की मौत है, हम तो दोसौ नक़द धरालेंगे तब सुफल बोलेंगे, क्या तेरा लड़का फिर तुझ से कुछ मांगने आवेगा? सो तू हाथ भींचता है" जिजमान ने बहुत सी कसमें खाईं कि "अब मेरे पास देने को और कुछ नहीं है" किन्तु पण्डा जी मुड़ चिरापन करने से तब भी न चूके चूकते ही क्यों जब कि निर्दयताके स्कूल में पढ़कर लालच का सार्टीफिकट हासिल किये हुए हैं। जब यजमान ने देखा कि पण्डा-जी लिये बिन न मानेंगे तो हार मानकर २००) की हुण्डी लिख रखदी और पण्डा जी ने खुश हो सुफल बोल यजमान का कन्धा और पीठ ठोकदी और मृतक को स्वर्ग लोक की सीधी सड़क बतादी। बस इसीलिये मैं कहने की हिम्मत रखता हूं। कि—पण्डे कुधान्य लेने में भी कड़ाई करते हैं॥

२१—श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंहजी वर्म्मा ने कहा है—

❀ पण्डे ताक भी खूब लगाते हैं ❀

हत्या को यह तकें तकें यह तेरहइं आसा।
गरुड़ कथा को तकें मरे यजमान जु खासा॥

बरसौड़ी यह तर्कें दान मन इच्छा पावें ।
रोगी को यह तर्कें खाट में पड़े लखावें ॥
वह ससके यह दान लें मन में करें न ताप ।
पञ्चो न्याय विचारियो पुण्यों भयो आपाप ॥
देखो ! पोप प्रदीप पृ० २७ ॥

॥ ब्राह्मणों का प्राण प्रिय मित्र ॥

* नौता *

अहाः ! जिस समय हमारे प्यारे ब्राह्मण भाई " नौता " का नाम सुनते हैं उसी समय उनके मुँह से लार टपक पड़ती है । मगन हो जाते हैं । चार चार हाथ ऊँचे उछल जाते हैं । यदि आप ऊपर हों तो चट से नीचे कूद पड़ते हैं । इधर उधर कूदते उछलते हैं । सारी चिन्ताओं को भूल जाते हैं । वे खटके हो जाते हैं । घरमें भोजन नहीं करते हैं । प्रदेश जाने से रुक जाते हैं । गृह कार्य्य नहीं करते हैं । बाजार हाट नहीं जाते हैं । मूलमन्त्र यह है । कि–सारे काम काज और सब चिन्ता छोड़ निश्चित=वेफिक्रे होजातेहैं । पर जो नौता दस पांच कोस की दूरी पर हो और पानी पड़ता हो तो भीगते भागते और जो बड़ी कड़ी धूप पड़ती हो तो घबड़ाते,व्याकुल होते और जो खुद बीमार या निर्बल हुऐ तो हांपते-हूँपते, पैर रगड़ते, उठते–बैठते, किसी न किसी तरह नौता खाने को जाही पहुँचते हैं । अहा ! नौता से बड़ा भारी प्रेम है । बार बार जल भांग पीते हैं । दम दम में सुल्फे की दम लगातेहैं । पेट की खूब सफाई करतेहैं । अन्त को नौता खा खिलानेवाले को कभी आशीर्बाद और कभी श्राप दे शयन करतेहैं । परन्तु ये बेचारे भोले भाले मेरे प्यारे बम्मन भाई यह नहीं जानते हैं कि इसी विश्वासघाती नौता ने इनकी यह दुर्दशा=कुदशा करदी है ॥

अरे नौता ! तू बड़ा छलिया है, बड़ा दुखदायी है,

बड़ा विश्वासघाती है, बड़ा धूर्त्त है, बड़ा सत्यानाशी है। अरे नौता! तूही ब्राह्मणों का एक बड़ा सच्चा शत्रु है। अरे नीच, अभागे, कलंकी, निर्दयी, पापी, दुष्ट नौता! तूने ही हम को (ब्राह्मणों को) हिमालय पर्वत की उच्च शिखर से ढकेलकर रसातल को पहुंचा दिया है। अरे दुष्ट नौता! ब्राह्मणों की अवनति का असली कारण एक तूहीहै। अरे चाण्डाल नौता! तूनेही ब्राह्मणों को बम्मन बना दिया है। अरे पापी! तूनेही बम्मनों को दर दर दुदकारा, ललकारा, फटकारा, गरियाया, धमकाया, पिटवाया, हटाया, मार भगाया और कभी २ नौकरों के हाथन चर्मपत्रों से उनकी नौछावर कराई। हाय! तूनेही उन की यह अधोगति करदी है। अरे कुटिल कलंकी नौता! तूने ही उनको कलंकित किया, तूनेही उनका मान मिटाया, तूने ही उन की प्रतिष्ठा भंग की। अरे विश्वासघाती नौता! तूनेही ब्राह्मणों के सुयश को मटिया मेट करदिया और उन को रिरियाने के सिवाय किसी अन्य काम का न रक्खा। अरे अन्याई नौता! तूने ही बम्मनों को नट, गायक, ढाढ़ी, कत्थक, बाजीगर, तेली, तमोली, कलवार, कहार, कुम्हार, लुहार, सुनार, चमार, खटीक, छीपी, धोबी, धानुक, काछी, कुरमी, नाई, बारी, मैंना, खाती, भील, गड़रिया, कंजर, कोरी, किसान, लोधे, पंसिया, धुना आदि नीच से नीच वर्णो के घर खानेको भेज दियां। तूनेही उनको अविद्वान, आलसी बना दिया। अरे पापी नौता! तूनेही उनको डरपोक बनाकर घिघियाना सिखा दिया। हाय नौता! तूनेही ब्राह्मणों से विद्याध्ययन छुड़ा दिया, तूनेही उनकी संतानको विद्या पढ़ने से रोक दिया। अरे कपटी नौता! तूनेही हम ब्राह्मणोंको पुरुषार्थ रहित करादिया। हाय नौता! तू पूरा विश्वासघाती है, देख! तेरेही भरोसे पर हम लद्दू जानवरों का काम देनेलगे, तेरेही भरोसे पर हम सक्के व कहारों का कार्य्य करने लगे, तेरेही आसरे हम पाचक व बवरचीपना सीखे। हाय! तेरेही कारण हमारी (ब्राह्मणों की) बहुतसी

माताएँ, बहिनें, बहूएँ, बेटियां किन्हीं किन्हीं दुष्ट क्षत्री, वैश्य और शूद्रआदि अन्य लोगों के घरोंमें जाकर भ्रष्ट हुई । अरे प्रपंची नौता ! तूनेही बुला बुलाकर हमारी बहू बेटियों का सतीत्व नष्ट किया। अरे दुष्ट छली नौता ! तूही हमारी बहन भानजियों को भगा लेगया ! हाय ! तेरेही सहारे से पापात्मा हमारी स्त्री जात को वेश्याओं की तरह नचाते हैं । हाय ! तेरीही ओट में दुष्टात्मा हमारी बहू बेटियों और सुकुमार बालिकाओं का आनन्द पूर्वक गाना सुनते हैं । हाय । तेरेही नाम से लोगबाग हमारी स्त्रियों को बुला लेजाते हैं और फिर उन से अपने सारे कुटुम्ब की रोटी करवाते हैं , बरतन मलवाते हैं, चौका दिलवाते हैं, पानी भरवाते हैं, बुहारी घसिटवाते हैं और फिर पैर दबवाते हैं; अन्त को मिसरानीजी, पुरोहितानीजी, पण्डानीजी को प्रणाम कर विदा करते हैं । अरे धोकेबाज नौता ! तूने हम ब्राह्मणों के ऊपर अपना बड़ा भारीआतंक(रुअब)दबाव, जमालियाहै कि जिसकी वजहसे हमउकसने ही नहीं पाते । अरे अधर्म्मी कुकर्म्मी नौता ! तूनेही हम ब्राह्मणोंको धर्म से गिरा दिया और पीर–बावर्ची–भिश्ती–खर का पद दिला दिया । अरे अपवित्र नौता ! तू ही हमारे पवित्र ब्राह्मण भाईयों को मांसखोरों के घर पर लेजाकर उन से लड्डू और मालपूए उड़वाता है और फिर मूछों पर ताव दिलवाता है । अरे सत्यानाशी नौता ! तेरेही भरोसे हमने नीच लोगों की गुलामी पर कमर बांधी । अरे बेईमान नौता ! सिर्फ़ तेरेही भरोसे पर मथुरा के चौबों और व्रज के तीर्थ पुरोहितों ने अपनी ज़मीदारी और जागीरें सेठ लालाबाबू आदि के हवाले करदीं । अरे लोभी नौता ! तू ने ही इलाहाबाद हाईकोर्ट में मथुरा–विश्रान्त घाटके अभियोग के समय पर चौबों को हाज़िर न होने दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सनाढ्य मुक़दमा जीत गये और चौबों को विलायत में अपील करने के लिये १०–१२ हज़ार मुद्रा और व्यय करने पड़े ॥

अरे चाण्डाल नौता ! तेरेही लोभसे एक दफ़े एक यमुनापुत्र काशी

जी में एक बनारसी गुण्डे के फन्देमें फंसगया, जान जाने कोही थी, पर १५० रुपयों ने बचादी अर्थात् गुण्डे ने रुपये लेकर यमुनापुत्र को छोड़ दिया। " अरेकुकर्मी नौता! तूने हमारे ब्राह्मण भाईयोंके ऊपर बड़े बड़े अत्याचार किये हैं। अरे वर्णशंकर नौता! तेरेही प्रताप से हमारे प्यारे " कुलीन " भाई " कु–लीन " या " कुलहीन " कहलाने लगे

प्रश्न– क्या वह भी नौता जीमने जातेहैं और दान लेतेहैं ?

उत्तर– हां हां! वह भी नौता जीमने जातेहैं और दान अरे दान क्या कुदान भी लेतेहैं। परन्तु कुछ आड़ रखतेहैं अर्थात् असली दातासें तो खुल्लं खुल्ला नहीं मांगते किन्तु अपने सूबेदार = धड़ेदार से खूब झगड़ झगड़ कर मांग लेते हैं और सूबेदार साहबसे जो सनद मिलतीहै उसके ज़रियेसे अपने नौकरोंको भेजकर माल मंगवा लेतेहैं क्योंकि अपने आप जाकर लाने में तो मुनीमजी की मुनीमी में फ़र्क आनेका डर रहताहै और जो अंधेरी रातका भोजन हो तो मुनीम जी ख़ुद अपने आपही जाके बैरी अन्नको अंगूठे से ठेल ठेलकर हलक़ पर की घाटीसे नीचे उतार अपने पापी पेटको ठूंस ठूंसकर भर लाते हैं। और इतना भर लाते हैं कि फिर दो दिन तक कुछ भी नहीं खातेहैं॥

इसी तरह बाज़ बाज़ अंग्रेज़ी और उरदूदां कुलीन ख़ुद तो आम आदमियों के रोबरू मुफ़्ती माल उड़ाने को नहीं जाते मगर मकान पर आया हुआ परोसा व नक़दी जरूर झपट लेतेहैं अफ़सोस उनकी अक़्ल पर कि वह बजाय जाहिरी दानके गुप्तदान का लेना हलाल समझते हैं और अपने को इस बेहूदा तरीक़ा से माज़िज़ मशहूर करनेकी कोशिश करते हैं। अरे! हमब्राह्मणोंको नीचा दिखानेवाला, कलंकित करनेवाला, मनहूस नौता! तू अब हम ब्राह्मण लोगोंका पीछा कब छोड़ेगा ? अरे! अब तो तू हमारा पीछा जल्द छोड़दे। अरे अभागे नौता! अब तू कृष्ण मुख करजा! जा! जा!! जा!!!

ब्राह्मणों का सेवक व हितैषी दामोदर–प्रसाद–शर्मा–दान–त्यागी॥

ब्राह्मणों से प्रार्थना

प्रिय ब्राह्मणो ! इस महा राक्षस नौता का स्नेह छोड़ कुछ—

सोच देखिये मन में अपने, अवक्या शेष तुमाराहै *॥टेक॥
धाम नहीं है धरा नहीं है, धनदौलतभीज़रानहींहै ।
धन पति से तुम हुए भिखारी, बड़ाविचित्र नज़ाराहै ॥ १सोच.॥
औरों की सेवा करते हैं, तवकवि'कर्ण'पेटभरते हैं ।
आज़ादी से है न गुज़ारा, तुमने धरम विसारा है ॥ २ सोच.॥

इसीलिये—

सविनय यही निवेदन मेरा, जाति दशा भियवेगसुधारो *॥टेक॥
क्यों ग़फ़लत में सोय रहे हो, सुध बुध सारी खोय रहे हो ।
अब तो फेरज़िन्दगी पाकर, अपनी कुल कीरति विस्तारो ॥१सवि.
यहां न कोई नेक सुखी है, सबका अन्तःकरण दुःखीहै ।
दैव कोपमिटजाय कृपाकर, आपस के मत भेद विसारो ॥२सवि.
धर्म आपनों नहीं करते हो, इसी वजह से दुःख भरते हो ।
यदि विवेकहै तो स्वधर्मपर, तन मन धन तीनों को वारो ॥३सवि
कुलका नामकलंकितकरना, नीच कहाय"कर्ण"कविमरना।
ऋषिसन्ततिको उचित नहींहै, इसको अच्छीतरह विचारो ॥४सवि०

* यह कविता श्रीमान्वर ठाकुर कर्ण सिंह जी वर्म्मा ग्राम चहंडोली पोस्ट हरदुआगंज ज़िला अलीगढ़ निवासी रचित है ॥

प्रिय ब्राह्मणो ! अब " नौता " को तिलाञ्जली दो और विद्याध्ययन करो । यदि विद्याध्ययन नहीं कर सक्ते तो शिल्प विद्या सीखो ॥

भारत मित्र—कलकत्ता तारीख़ २७—३—०९ में मैं यह ख़बर सुन कर बड़ा प्रसन्न होता हूं । कि—श्री रामपुर में कई ब्राह्मण कुमार कपड़ा बुनना सीख रहे हैं ॥

पञ्जाब रेलवे लाइन में मैंने कई ब्राह्मणों को ड्राईवरी का काम करते हुए निज नेत्रों से देखा है ॥

यहां मथुरा में भी श्रीमान् बाबू कृष्णलाल जी द्वारिकाप्रसाद जी के यन्त्रालयमें मैं अच्छे २ घरानों के उत्तम २ ब्राह्मणों को कम्पोजीटरी का काम करते हुए देखता हूं ॥

मैं उक्त शिल्प–विद्या प्रिय ब्राह्मणों को नौता खाने, कुधान लेने, भीख मांगने और छुपके छुपके दैनी दक्षिणा लेने वाले नाम धारी ब्राह्मणों से अनेक गुणा अच्छा समझता हूं ॥

* लड्डुआ–खाऊ–बाह्मन *

प्रिय पाठको ! आपने अब तक ब्राह्मणों के बहुत से भेद [जात] सुने होंगे अर्थात् ओझा, औदीच्य, कर्नाजिया, करनाटकी, करनाली, खडेलवारी, खानपुरिया, गनौरिया, गंतूरी, गिन्नारा, गुजराती, गूजर, गेटाली, गैंदुआ, गोदावरिया, गौड़, चतुर्वेदी, चन्द्रभागी, चित्तौरिया, चौबै, चौहान, तगा, तिवारी, तैलंगी, दक्षिणी, दाइमा, दाऊदी, दुबे, द्रावड़ी, नागपुरी, नागर, नाशिकी, परवती, पारीकी, पुरबिया, पुरोहित, पौकरना, बागड़ी, व्यास, महाराष्ट, माथुर, मादौरा, मैथिली, याज्ञवल्की, शुक्ल, सनाढय, सरवरिया, सरयूपारी, सारस्वत, हिराने इत्यादि अनेकानेक । किन्तु लड्डुआ खाऊ बाह्मन जात का नाम न सुना होगा ॥

लीजिये ! मैं अब आप को उस जाति का कुछ वृत्तान्त सुनाता हूं। वह कौम न विद्याध्ययन करती । न शास्त्रास्त्र धारण करती । न व्यापारादिक कार्य्य करती । और न सेवादिक काही काम करती । केवल भिक्षा वृत्ति के सहस्रों रुपयों का अपना व्यर्थ व्यय करती रहती है ॥

यदि कोई भलालोग पूंछता है कि महाराज ! आप विद्योपार्जन क्यों नहीं करते ? तो चट से उत्तर देदेते हैं कि " हम विद्यापठन का कठिन कष्ट क्यों वृथा सहन करैं ? जब कि हम को भोले भाले बम्भोले चांदी सोने के गोले भेजते हैं और सैंकड़ों रुपयों की भिक्षा देतेहैं " ॥

उस जात को निम्न लिखित चार काम बड़े प्रिय लगतेहैं ॥

१––भंग पीना ॥

२—–भीख मांगना ॥

३——लड्डू, खाना ॥

४——जो लड्डू, पेड़ा, पाई, पैसा, भांग, मिरच न दे उस की पेट भर बुराई = असत्य निन्दा करना और सहस्रों गाली देना। यथा—

॥ नरेन्द्र—छन्द ॥

दे जजमान दान मनमानो यदि उन कहं न रिझावे।
आशिर्वचन सुफल के बदले लाखन गारी पावे॥

वह जात लेने में बड़ी चतुर होती है पर देने का नाम भी नहीं जानती और इसी लिये कहा करती है। कि— ॥ कवित्त ॥

देवन सों सुर कहें दानों से असुर कहें, दाल से पहती कहें धाय कहें दाई सों। दर्पण से बट्टा कहें दाखसों मुनका कहें, दाड़िम से अनार ताफता दरियाई सों॥ देहरे सों मठ कहें देवी से भवानी कहें, दामाद से जमाई कहते चतुराई सों। दाने सों ख़ुराक कहें दीये सों चराग़ कहें, दैवे की कहा है दादा कहें नाहिं भाई सों॥

* दोहा *

अपने पितु के तात को। भूल न लीन्हों नाम।
निज जननी के तात सों। रखो हमेशा काम॥

॥ चुटकला ॥

यह हमारे बड़ों की रस्म है। लेकर देना कस्म है॥
एक दफ़ा लेकर दिया था। सो बड़ोंने गिल्ला कियाथा॥

वह जात रात–दिन, आठ–पहर, चौसठ–घड़ी, सुबह–शाम, उठते–बैठते, चलते–फिरते, खेलते–कूदते, दौड़ते–भागते, हँसते–रोते, गाते–नाचते, खाते–पीते, सोते–जागते लड्डुओं काही ध्यान धरे रहती है। और ला–लड्डुआ। ला–लड्डुआ। ले–लड्डुआ। ले–लड्डुआ। लड्डुआ–ले। लड्डुआ–ले। लड्डुआ लईयो लड्डुआ। लड्डुआ भैया लड्डुआ।

अरे ! आज तो लडुआ खवायदे । भैया ! लडुआ जिमायदे । अरे जिजमान ! लडुआ छकायदे । करनसाही दिवायदे ! अरे लाला ! आज तो बूंदी के झुकायदे । नुकती के चहियें । अच्छौ ! वेसनीहीं सही । अरे मोती ! मोतीचूर के तो थाकी दुकान पै बिकें हैं । क्यों साब लडुआ । क्योंजी लडुआ । क्यों भैया लडुआ । क्योंरे लडुआ । क्योंरी लडुआ । लडुआ ला लडुआ । क्योंरे लडुआ लेइगो । मगद के लडुआ चहिये काहू कों । बस लडुआ ही लडुआ कहा करती है ॥

लड़ना—बहुधा पण्डे लोग बड़े लड़के होते हैं । एक पाई के लिये आपसमें एक दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं, मारते हैं, पिटते हैं, जुर्मानह देते हैं, कैद भोगते हैं और फिर प्रायश्चित कर यानी गो मूत्र पीकर शुद्ध होते हैं ॥

मालमारना—बहुधा पण्डे बहुतसा रुपया उधार लेकर घर में धर लेते हैं और फिर दिवाला निकाल सालमैन्ट लेलेते हैं ॥

चोरी करना—बहुधा पण्डे यजमानों की चोरी भी करलेते हैं ॥

व्यभिचार—बहुधा पण्डों में व्यभिचार भी बहुत होता है । पण्डा परस्त्री और वेश्याओं को रखते हैं और पण्डाइनें परपुरुषों को रखती हैं कभी कभी घर और कुनबा को छोड़ अपर जात के मनुष्यों के साथ दूर देश को भागजाती हैं और कभी कभी खास अपने ही शहर में वेश्या होबैठती हैं ॥

लोभकरना—बहुधा पण्डे लोग धन लेने के कारण यजमानों को खूब दबाते हैं, मा बाप को लठों से कूटते हैं और कभी कभी अपने खास रिश्तेदारों को भी मार डालते हैं ॥

नशाकरना—बहुधा पण्डे लोग मादक वस्तुओं का भी खूब सेवन करते हैं । नशैली चीजों का हाल अगले परिच्छेद में लिखूंगा ॥ परपहिले पुरोहिताई कर्म्म की निन्दा और सुन लीजिये—

मोहिताई–कर्म–निन्दा ॥

श्रीमान् गुपालजी कविराय कहत हैं— ॥ सोरठा ॥

मोहित हूजे नाहि····जो यजमान कुवेर सौ ।
निन्द्य कहैं सब याहि····गति न लहै परलोक में ॥

॥ कवित्त ॥

रहनो पर दुःख सुख जजमान के में, दान के बख़त लोग देत बुरवाई कौ । जाको धान खांय ताके पापन के भोगी होंयं, वेद औ पुराण याते निन्द्य कहैं ताई कौ ॥ कहत गुपालकवि भले बुरे कर्म्मन में, सब सों पहिल ग्रास लैनौ परै जाई कौ । जाय के निताई यो कमाईये किताई क्यों न, ठहरत काई कैं न पैसा मोहताई कौ ॥

॥ भजन ॥

टे० पुरोधा ने सारी सुध बिसराई, देखो कैसी भंग पिलाई ।
क० जो है सकल सृष्टि का करता वाकी याद भुलाई ।
ईश विमुखहो पत्थर पूजे लज्जा तनक न आई । पु०
चार वेद चौदह विद्या तज मिथ्या कथा सुनाई ।
राज पाट सब नष्ट कराए ऐसी कुमत सिखाई । पु०
ब्रह्मचर्य की बान भुलाई बाल विवाह बताई ।
बल वीर्य्य सब क्षीण कराए कन्या रांड बिठाई । पु०
अहं ब्रह्म का शब्द सुनाकर नास्तिक दिये बनाई ।
अपने चरण पुजावन लागे हिरनाकुश के भाई । पु०
नवलसिंह कर जोड़ पुकारे प्रभु तुम करो सहाई ।
पंड जालका फन्दा काटो अन्धकार मिट जाई । पु०

शब्दार्थ—पुरोधा = पुरोहित । पंड = पंडे ॥

देश हितैषी
दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा
दान–त्यागी–मथुरा ।

॥ ओ३म्-खम्ब्रह्म ॥

॥ पंचदश—परिच्छेद ॥

भङ्ग भवानी का वर्णन

हमें

न किसी का दिल दुखानाहै । दिल दुखाता सो दिवानाहै ॥

हे प्रिय **पाठको!** आप भली भांति जानतेहैं कि पण्डे लोग नशीली चीज़ों=मादक वस्तुओं का खूब प्रयोग करतेहैं अर्थात् भांग, गांजा अफीम, चरस, पोस्त, चण्डू, सुलफा, तमाकू और मदिरा आदि पदार्थों का बहुत ही बहुत सेवन किया करते हैं। परन्तु धर्म-शास्त्रों चिकित्सा ग्रन्थों, नीति-पुस्तकों और विचारवान् पुरुषों ने इन के (मतवाला करने वाली वस्तुओं के) खाने पीने का निषेध किया है। यथा—

१—मनु कहते हैं—**वर्जयेन्मधु मांसं च ॥ १४२ ॥**

देखो! मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७७ ॥

२—**शारङ्गधर** जी कहते हैं—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ।
तमोगुण प्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥१४३॥

देखो! शारंगधर संहिता अध्याय ४ श्लोक २१ ॥

अर्थ—जो पदार्थ बुद्धि का लोप करे उस को मदकारी कहते हैं यह तमोगुण प्रधान है। उदाहरण जैसे सुरादिक, भांग, गांजा, अफीम ॥ बुद्धि शब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्तिकादि वाचक है। ग्रंथ धारणा शक्ति को मेधा कहते हैं। संतुष्टता को धृति कहते हैं। बीती हुई बार्त्ता के याद रहने को स्मरण कहते हैं। बिना जानी वस्तु

के ज्ञान को मति कहते हैं। और अर्थाववोध प्राकट्य को प्रतिपत्ति कहते हैं। "सुरादिकं ,, इस पद में आदि शब्द करके सम्पूर्ण मद कारी वस्तु जैसे भांग, गांजा, अफीम, चरस, चण्डू आदि जानो। तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य मतवालाकरने वाली चीज़ों का कभी भी सेवन न करे॥

३—विद्या वाचस्पति पण्डित श्री बालचन्द्रजी शास्त्री। रामगढ़-जिला सीकर—राजपूताना निवासी कहते हैं—

पाठको! प्रथम तो मनुष्य जन्म दुर्लभ, पीछे उस को पाके पशु की नाई गमाना = खोना = विताना वड़ी हानि की वार्त्ता है॥

भांग छान के पीजाना, दूसरे को भी पिलाना, फिर पिशाच रूप बन जाना, गालीं गुफ़ता बकना, पराये घरपर मूंड मुड़ाना, मिथ्या निन्दा स्तुति करना, सारे दिन दर दर भटकना, क्रोध वाचा को जिन्हा पर रखना, ये कर्म विद्वानों के नहीं हैं। परन्तु ये सब अपगुण भांग-पान से ही उत्पन्न होते हैं। इस लिये मनुष्यों को उचित है कि भंग का सेवन कभी भी न करें। देखिये—

तमो गुणस्य स्थितिरत्र विज्ञै, रुद्राहृता सुश्रुत शेष मुख्यैः।
ज्ञात्वेति तां कः प्रपिवेदऽमत्तः, पिशाचिनी हां विदितज्ञतत्त्वः॥१४४

अर्थ—इस भंगमें तमोगुण रहताहै यह सुश्रुत चरक आदि महात्माओं ने कहा है। यह जान के जिसने विद्वानों के तत्त्व को जानलिया है ऐसा सावधान नर पिशाचिनी की चेष्टा वाली भंग को नहीं पीता है॥

दृष्टा न यैः कल्मषपेटिकास्ते, पश्यन्तु भंगां हृतबुद्धि साराम्।
किं किं न दुर्वृत्तमसौ विधत्ते, भंगा तरंगै र्व्यसनी व्यथावत्॥१४५॥

अर्थ....जिन्हों ने पाप की पेटी नहीं देखी है वे बुद्धि बल को हरने वाली भांग को देखलें, भांग पीने वाला क्या क्या दुःखदायी खोटे आचरण नहीं करताहै। अतः भांग सज्जनों को छोड़नी चाहिये अर्थात् न पीनी चाहिये॥

न रोगमूलं किमु भंग पानं, न दुःख मूलं किमु भंग पानम् ।
न हानि मूलं किमु भंग पानं, ज्ञात्वेति हेयं ननु भंग पानम् १४६

अर्थ=भांग पीना क्या रोग मूल नहीं है ? हां हां, नशे में बहुत खाने से अजीर्णादि रोग होते हैं। भंग पीना क्या दुःख मूल नहीं है ? हां हां, आकाश पाताल एक होने लगते हैं, मुख सूखने लगता है। भांग पीना क्या हानि मूल नहीं है ? हां हां, कुछ सुधि नहीं रहती। यह दोष जान के भांग पीना सज्जनों को छोड़ना ही चाहिये ॥

भंगा प्रमादं विदिधाति पुंसः, प्रमाद उग्रं व्यसनं विधत्ते ।
निहन्ति बुद्धिं व्यसनं तु शीघ्रं, सबुद्धि नाशो मरणं ददाति१४७

अर्थ= भांग पीने से पुरुष को प्रमाद होता है। प्रमाद व्यसन पैदा करता है अर्थात् व्यभिचार आदि दुष्ट कर्म प्रमाद से होते हैं। व्यसन बुद्धि का नाश करता है। बुद्धि नष्ट हुए पीछे क्या होता है ? मरण ही--अतः भांग परंपरा संबन्ध से मरण का भी कारण है। अतः इसे छोड़ना हीं उत्तम है ॥

भंगा तरंगा कुलितो न सत्यं, ब्रूते कदाचिन्मनुजो न मत्यम् ।
अतश्च सत्यस्य विरोधिनींकः, पिवेद पूर्वं सुख मीक्षमाणः।१४८।

अर्थ—भांग की तरंग से व्याकुल न तो कभी सत्य बोलता है, न बुद्धि बढ़ाने लायक कुछ उपदेश देता है। यह तो उपदेश करताही है। कि—लो पिवोरे भंग मचाओ जंग=ऊधम=हा हू। अतः सत्य के विरोधी वस्तु को उत्तम सुखाभिलाषी कौन पीवेगा अर्थात् कोई नहीं पीवेगा ॥ देखो भंगा निषेध ॥

४—चरक चि० अ० १२ में लिखा है। कि—

हर्ष स्मृति कथो पेतमतुष्टं पान भोजने ।
सम्बोध क्रोध निद्रार्तमापानं तामसं स्मृतम् ॥ १४९ ॥

अर्थ=उस पान को तामस जानना चाहिये कि जिस के सेवन से ये बातें उत्पन्न हों—हँसे तो हँसताही रहे। कुछ स्मरण करे तो पिछली

बातही स्मरण करता रहे। बके तो बकताही चला जावे। खाने-पीने में कभी सन्तुष्ट न हो। जागे तो जागताही रहे। क्रोध करे। नींद में पड़ाही रहे। भंग में ये सब बातें पाई जाती हैं। इससे निश्चय हुआ कि भांग तामसी है। और कृष्णादि महात्माओं ने तामसी पदार्थों के सेवन का वर्जन किया है। देखो! भगवत गीता अध्याय १० श्लोक १७॥ बस इससे निर्णय हुआ। कि-भंग कदापि न पीना चाहिये॥

५—आपस्तम्ब ऋषि कहतेहैं—सर्वं मद्यमपेयम्—सर्वमद्य अपेय हैं अर्थात् किसी मादक वस्तु का कभी सेवन न करना चाहिये। किन्तु भांग मद की माता है। यथा—मदस्य माता मदिराथ भंगा इस से भंग का सेवन कदापि न करना चाहिये॥

६—भंग बहुधा मनुष्यों के प्राण भी लेलेती है। देखिये! श्रीमान् ठाकुर जगन्नाथसिंह जी वर्म्मा चन्देल रईस रियासत बरखेरवा जिला हरदोई अवध लिखते हैं—इस ग्राम के निवासी ठाकुर भरतसिंह जी बहुत भांग पिया करते थे। परन्तु तारीख १०-२-०६ ईस्वी को उन्हें ऐसा नशा चढ़ा कि जिस के कारण उक्त महाशय इस असार संसार से प्रस्थान कर गये॥

देखो! आर्य्यमित्र आगरा वर्ष ८ अंक ८ पेज २ कालम ५॥

७—भंग बहुत खवाती है जिस से बहुधा मनुष्यों को अफरा हो जाता है और फिर वह अन्त को उसी अफरे से मर जाते हैं॥

८—भंग से होश भी नहीं रहता—प्रायः देखने में आता है कि ठठोलिये ठठोली में आकर भंगड़ियों को जिमाने के समय बकरी की मेंगनियों को खांड़ में पाग कर परोस देतेहैं और वह लोग (भंग-पीने वाले) आंख मीचे हुए आनन्द पूर्वक खाते चले जाते हैं॥

९—भंग में बोल चाल की भी योग्यता नहीं होती॥ बहुधा भंग पीने वाले अपने को "हम" और दूसरे को "तू" या "अरे" कहा करते हैं॥

१०—भंग खाती भी बहुत है। देखिये! एक समय भंग के नशे में पांच चौबों ने इतना अधिक खाया कि जिस से उन सब को हैजा होगया। अन्त को बड़ी कड़ी दवाई देने पर दो की जान बची और तीन परमधाम को सिधार गये। जब इस बात की रिपोर्ट उस समय के डिप्टी कलक्टर श्रीमान्वर पण्डित महाराजनारायण शिवपुरी को पहुँची तो उन्होंने भी चौबों को बुलाकर भंग न पीने को कहा ॥

११—भंग का ध्यान रात-दिन खाने ही में रहताहै ख़ास कर मिठाई में। बस यही सबब है कि जो जादा भंग पीता है वही जादा दूध-रबड़ी आदि मिठाई खाता है। चाहै कपड़े—लत्ते, बर्त्तन—भांड़े भी क्यों न बिक जायं ॥

१२—भंग पीने वाले यहभी जानते हैं। कि—मनुष्य भंग पीने से बौराहा=बावला=सिड़ी होकर बड़े बुरे वचन बोलता है। व्यंग वाक्य बकता है। अप शब्द कहता है। निठल्लाठाला बैठारहता है। ठलुआई हांका करता है। और कभी कोई निकम्मा कामभी करने लगताहै। इस का यही प्रत्यक्ष प्रमाणिक प्रमाण है कि जब कोई जबरदस्त=बलवान मनुष्य बुरा बोल बोलने वाले भंग पियक्कड़ को डांटता है तो वह भंगड़ी दोनों कर जोड़कर चटसे कहदेता है। कि—महाराज! मांफ़ करौ, हमतो भांग पीवे वारे हैं, भांग पीवे वारे कौं तो कछू होस ही नांय रहे, जैसी मन में आवे है वैसीही बुरी बावरी बकदेऔ करे है, अरे भैया! भांग—भुगैया के कहे सुने को तो कोऊ बुरोही नांयमानों करै है। अरे! तू जान पूंछ के हमको बेमतलब काहेको धमकावे है?

बोल भंग—भवानी की जै।

और हम कौ एक पैसा दै॥

१३—सर्व सत्यानाश नी भंग भवानी विद्या महारानी कीभी शत्रु रानी बनी रहती है। देखिये! जिन विद्वानों के पास भंग भवानी पहुंचती है उनके पाससे विद्या महारानी को तुरन्त ही मार भगाती है। जो विद्यार्थी विजिया का आदर सत्कार करता है उस को वि-

द्या का निरादर करना पड़ता है अर्थात् जो भंग पीता है वह विद्या नहीं सीख सक्ता है यदि पहिले से कुछ सीखा हुआ होता है तो भूल जाता है ॥

१४—भंग के पीने से दात–रोग भी हो जाते हैं । जैसे—

१—भंग पीने वालों की कमर में दर्द हुआ करता है ॥

२—भंग पीने वालोंको शौचभी भली भांति नहीं होता अर्थात् दस्त = पाखाना भी अच्छी तरह नहीं उतरता । इस का यही प्रमाण है कि भंगड़ीलोग ५–६ दफ़े रोज़ शौचजाया करतेहैं ॥

१५—भंग—मद्य और विष के समान होती है । इसीलिये इस को व्यवायी कहते हैं ॥

व्यवायी उसे कहते हैं, जो औषध अपक्व हो, सकल देह में व्याप्त हो और फिर मद्य विष के समान पाक को प्राप्त होय । जैसे भंग और अफीम । यथा—

पूर्वं व्याप्याखिलं कायंततः पाकंच गच्छति ।
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥१५०॥

देखो! शारंगधर संहिता अ० ४ श्लो० १९

नोट—अरे भंग प्रेमियो ! क्या इस शारंगधरी वाक्य को श्रवणकर के भी इस विषयली वस्तु से घृणा न करोगे ? दा- प्र- श- दान-त्यागी ॥

१६—भंग अपने चढ़ाव–उतार में प्राणियों के शरीरों=अंगों को ऐंठा = मरोड़ा भी करती है । जैसा कि एक भंग पीने वाली स्त्री ने अनुभव करके कहा है—

हरित रङ्ग मोहि लागत नीको । वाबिन सब जगलागत फीको ।
"उतरत चढ़त मरोरत अंग" । क्योंसाखिसज्जन नासखि भंग ॥

१७—भंग की तरंग = उमंग = लहर बहुतही बुरी होती है अर्थात् बड़ी दुःख–दायक होती है । इसीलिये कविवर वृन्द जी कहते हैं—

प्रेम निबाहन कठिन है । समझि कीजिये कोय ।
भांग भखन है सुगम पै । लहर कठिन हीं होय ॥

१८—भांग पीने से मनुष्य बेहोश होजाता है ॥

एक बार एक यजमान ने अपने भंगड़ पुरोहित को, जो कि अढ़ाई कोस की दूरी पर रहता था, बुला भेजा। सन्देसा सुनतेही दान लेने के लालची पुरोधा घर से चल पड़े। परन्तु एक सुन्दर कूप को देखकर भंग पीने के लिये फिसल पड़े। और भंग पीकर इतने अचेत होगये कि सारा दिन और रात वहीं पड़े रहे। जब दूसरे दिन कुछ चेत हुआ तो फिर आगे चले, कुछही दूर चले होंगे कि बगीचा नज़र आया। बगीचा देखतेही विजिया पीनेको दिल ललचाया। चटबहीं डटगये औरझट-पट भांग घोटना शुरू करदिया। पीकर फिर अचेत होगये और वहीं लेट लगाया किये। फिर तीसरे दिवस होश हुआ तो आगे बढ़े। बस इसी तरह पीते—पाते, रुकते—रुकाते नौ दिन में दान दाता के पास पहुँचे। यजमान ने पूंछा कि आप इतने दिन बाद क्यों आये? उसी दिन क्यों नहीं आये? पुरोहितजी ने उत्तर दिया—महाराज! हम चल तो उसी दिन दिये थे पर क्या करें हम पै तो भांग सवार हो गई जिस से ९ दिन लग गये ॥

बस उसी रोज़ से यह मसल मशहूर हुई है। कि—

पीकर भांग हुए बेहोश। नौ दिन चले अढ़ाई कोश ॥

शब्दार्थ—पुरोधा = पुरोहित। फिसलपड़े = ठहरगये। कोश = कास २ मील ॥

१९—भंगड़ियों को कुछ सुधि बुधि भी नहीं रहती ॥

एक बार एक भंगड़ी अपने छोटेसे (३ वर्ष के लड़के) को लेकर रामलीला देखने गया। महाविद्या देवी के नीचे बगीचेमें जाकर—

बं बं भोला बं बं भोला। घोटो पीसो छानो गोला ॥

कहते हुए बैठ गया। फिर खूब विजिया पान किया। पश्चात् लड़केको कन्धेपर बिठलाकर मेला—मैदानमें आ रामकौतुक देखने लगा। देखते २ भंग के चढ़ाव में अपने कन्धे चढ़े हुए बालक को भूलगया।

बस फिर क्या था ? घबड़ा कर इधर उधर तलाश करता फिरा, सारे मेले का चक्कर लगाडाला, सारा मैदान देख डाला, सारा बाग छानडाला, साराजमघट खोजडाला, पर कहीं पता नपाया, तब लाचार होकर रोतापीटता अपने घर पर आया । और अपनी औरत से डकरा कर कहने लगा । कि—" अरी पारोकी ! आज तो छोरा खोय गयो " । औरत ने कहा—" अरे निपूते के निपूते ! बताय तो सही कां खोय आयो ? अरेज्वानीपीटे ! तु छोरा बिना काहे कों आयो ? हाय ! तूता बड़ो अभागो है ! अरे भंगी के जाम अऊते के अऊते ! तू इतनी भांग काहे को पिऔ करे है ? अरे ! मरजाय तेरो बबला, लगाऊं तेरी भांग रांड़ में आंच । अरे कारे म्हौंड़े के ! तू भांग पीवो नाय छोड़ेगो, अरे मर गये सत्यानासी ! तूभांग पिये बिना काहे कों रहेगो । अरे मिटगये ! तू भांग बिना काहे कों मानें-गो । औरत की इस चिल्लाहट को सुनकर कन्धे पर सोता हुआ बचा जाग कर रो पड़ा । औरत ने झट से झपटकर उसे गोद में ले लिया और कहा—अरे मरे ! अब तो तू जा रांड़ कोंछोड़ दे, देख ! जाही सों तेरे सबेरे लच्छन झर गये हैं, अरे ! ज छोरा आज बच गऔ तोका काल खोजाइगो, बस उसी दिन से यह कहावत प्रचिलित हुई है ॥

कि—बालक बगल में । ढंढोरा नगर में ॥

२०—भंगड़ियों की स्त्रियां भी भंगड़ों का सदा निरादर करतीं हैं। क्योंकि वो उनसे सदैव दुःख पातीं रहतीं हैं ॥

अच्छा एक भंग पिवक्कड़ की स्त्रीका बिलाप भी सुन लीजिये—

॥ लावनीं ॥

तिरिया सात घर२ से चलीं जल भरन कुए पर सुन ज्ञानी ।
नशेबाज सातों के पिया दुःख रोती जायं भरैं पानी ॥
पहिली सखी यों कहै सखीरी मेरा पिया भंग पिया करै ।
पीकर भंग जंग हम सेती नाहक़ किस्सा किया करै ॥
और रहै चुल्लू में उल्लू वो लोटे भर लिया करैं ।

ना जानें क्या मज़ा उन्हें सब घर के ताने दिया करें॥
अच्छे घर में लाडाला। कैसी कीनी हकताला।
वो भंग पिये रहै मतवाला। ऐसे से पड़ा मेरा पाला॥
सखी ! यौंही चली जवानी।
नशेबाज सातों के पिया दुःख रोती जांय भरें पानी॥

२१—भंगड़ी मूर्ख होते हैं॥

बहुधा भंग पीने वाले मूरख हुआ करते हैं॥

(प्र०) कैसे ?

(उ०) देखिये ! भंग पिवक्कड़ों में प्रायः ये पांच लक्षण पाये जाते हैं—
गर्व = अहंकार १, *दुर्वचन = गाली* २, *क्रोध = गुस्सह* ३, दृढ़वाद = कलह करने में मजबूत ४, दूसरे के वाक्य का अनादर = तिरस्कार ५॥

और जिसमें ये उक्त पांच लक्षण होतेहैं वह मूर्ख कहलाता है।यथा—

मूर्खस्य पंच चिन्हानि गर्वो दुर्वचनं तथा।
क्रोधश्च दृढ़वादश्च पर वाक्येष्वनादरः॥ १५१॥

कोई कोई इस श्लोक को इस प्रकार भी पढ़ा करते हैं—

मूर्खस्य पंच चिन्हानि गर्वी दुर्वचनि तथा।
हठी च दुर्वादी च परोपकार न मन्यते॥१५२॥

अर्थ = प्रथम अभिमानी अर्थात् विद्या तो कुछ न हो परन्तु अभिमान इतना हो कि अपने आपको गौतम, वृहस्पति और कणादि से भी अधिक समझते हों वा आप भ्रष्ट = स्वधर्महीन होकर संसार भर को भ्रष्ट = पतित करते हों। दूसरे कटु वचन बोलते हों, जिनकी जिभ्या स्वाधीन न रहती हो अर्थात् जो जीमें आया सोई अपशब्द = गाली = दुर्वचन दूसरे भले मनुष्य को कहते हों अर्थात् जीभ से फूहर हों अर्थात् आगा पीछा न सोचकर मनमाने बकते हों। तीसरे हठी = हठ करने वाले

अर्थात् विना समझे अपनी वातको सत्य और दूसरोंकी वातको झूंट बतलाते हों । चौथे विना प्रमाण तर्क करते हों अर्थात् आपतो कुछ लिखना पढ़ना न जानते हों किन्तु इधर उधर से सुन सुना कर गपोड़े हांकते हुए विद्वानों से दलील = तर्क करने को तत्पर रहते हों । पांचवें जो कृतघ्नी हों अर्थात् दूसरे के किये हुए उपकारों को न मानते हों अर्थात् जो भलाई करै उसी के साथ बुराई करते हों । जैसे बन्दर और लंगूर चना खाते खाते अपने चना खिलाने वाले को घुड़कते रहते हैं ॥

बस अब रेखागणित पहिले अध्याय की पहिली स्वयं सिद्ध परिभाषा के अनुसार सिद्ध होगया कि भंगड़ी मूर्ख होतेहैं ॥

२२—भंग भवानी और गर्धभसेन का सम्वाद ॥

हाय ! यह भंग ऐसी बुरी वस्तु है कि जिससे गधेभी घृणा करतेहैं। एक समय की वार्त्ता है कि एक खेत में, जिसमें कि भांग की नई नई हरी हरी कोमल कोमल मनोहर पत्तियां, जैसी कि दूब होती है, ऊग रहीं थीं एक गधा कुछ सूखी—साखी, सड़ी—सड़ाई घास को, जोकि एक ओर पड़ी हुई थी, खा रहा था । गदहे को चरते हुए देखकर भंग ने कहा कि अरे नीच गदहे ! जब कि अच्छे अच्छे मनुष्य = श्रेष्ठजन मेरा सेवन करते हैं तो तू मुझे भक्षण क्यों नहीं करता अर्थात् क्यों नहीं खाता ?। तब **सीतला**—वाहन ने उत्तर दिया । कि—अरे राक्षसी ! तू बड़ी **निकृष्टि** = नीच = बुरी है, अरे ! तेरेखाने—पीनेसे जब विद्वान मनुष्य **अविद्वान** = मूर्ख = गधा होजाते हैं तो फिर यदि मैं (गधा) तुझे (**भंग को**) खाऊंगा तो न जाने मैं किस अधमाधम गति को प्राप्त होऊंगा ? अर्थात् न मालूम मेरी कैसी बुरी दशा होगी ? बस यह समझ कर मैं तुझे **खाना** = चरना नहीं चाहता । बस इसी आशय को लेते हुए किसी एक विद्वान ने यह एक श्लोक रचा है——

सद्भिस्तु सेविता रे त्वं नमाम्भक्षसि गर्धव ।
नरो गर्धवतां याति गर्धवस्य तु का कथा ॥१५२॥

२३—स्वर्णपदक प्राप्त सुप्रसिद्ध कवि श्रीमान्यवर बाबू भगवन्नदीन जी उपनाम 'दीन' सम्पादक 'लक्ष्मी' मासिक पत्रिका गया—विहार तथा सभापति काव्यलता सभा छत्रपुर—बुन्देलखण्ड कहते हैं—

॥ भंग—तरंग ॥

होश में आके संभल बैठिये भंगड़ सुलतान ।
पूंछ फटकारके और खूब हिलाकर निज कान ॥
सींग तो हैंही नहीं जिसका हमे हो कुछ ध्यान ।
घास खा खाके किया बुद्धि को तुमने हैरान ॥
मैंने है आज बड़े भोर से ऐसी ठानी ।
सुन के फिटकार भगैगी तेरी वृद्धा नानी ॥ १ ॥
है विषय भंग का लिखना यही दिल में गुनकर ।
'दीन' की लेखनी में आया है मिरचों का असर ॥
बात कड़ुई जो लगै तुमको तो घर पर जाकर ।
चार दे लेना मुझे गालियां उल्लू कहकर ॥
पर नहीं सत्य के कहने से मुकरते हैं हम ।
ध्यान से सुनलो तुम्हैं कूंडी व सोंटा की कसम ॥
क्या समझ के भला तुम भंगको यों खाते हो ।
क्यों भला सब्ज परी जान के इठलाते हो ॥
इस के उपकार भी संसार में कुछ पाते हो ।
देखा देखी ही कि यों भेड़ बने जाते हो ॥
इसके पीनेसे तुम्हें मिलता है धन या कुछ ज्ञान ।
कीर्ति, आनन्द, कि कुछ धर्म कि जगका कुछमान ॥ २ ॥
इसको पीते ही मनुज बुद्धि को खो देता है ।
बनके इक बैल सा बस पेट को भर लेता है ॥
तजके सब लोगोंको बस अपना ही तन सेता है ।
भूल मर्याद सभी अपनी हीं इक खेता है ॥

न मुरौवत; न रिआयत, न ज़रा शोच संकोच ।
सबही भंगेड़ियों को देखते हैं नीच व पोच ॥ ४ ॥
बुद्धिमानों के निकट पाते नहीं कुछ आदर ।
है अदालत में नहीं उनके कहे की कुछ दर ॥
पंच भी भंगियों की बात को इस कान में कर ।
दूर कर देते हैं उस कान से फ़ौरन बाहर ॥
ऐसी रुसवाई है संसार में भंगेढ़ियों की ।
जैसी होती नहीं देखी है कभी भेड़ियों की ॥ ५ ॥
किसी भंगी का कभी घर नहीं देखा ख़ुशहाल ।
वंश वालों के लिये होता है जी का जंजाल ॥
व्याहता रोती है संतान बिलखती है विहाल ।
आप, रंडी, के यहां लेटे उड़ाते हैं माल ॥
कुछ न करना न कमाना न गिरिस्ती का ख्याल ।
शाम को भंग छनै सबको चढ़े खावे काल ॥ ६ ॥
बुद्धि मानों से ज़रा पूंछो तो इस के नुक़सान ।
प्यार इस सब्ज परी का है, नसाना ईमान ॥
झूंठ बकने को भंगेड़ी जी समझते हैं ज्ञान ।
कहते कुछ, करते हैं कुछ रखते नहीं बातका ध्यान॥
क्या इसी चाल से दुनियां में लहोगे सम्मान ।
है सदा सूझता सावन की हरेरी का ध्यान ॥ ७ ॥
कहते विजया हैं इसे उनकी य कुटिलाई है ।
कौन से भंगी ने रण खेत में जय पाई है ॥
किस भंगेड़ी ने कमाई कभी दिखलाई है ।
किस की मति खाके इसे घूमी न घबराई है ॥
आज तक हमने न देखा किसी भंगड़को अमीर ।
जब कभी देखा यही देखा कि भंगड़ हैं फ़क़ीर ॥ ८ ॥

भंग के घोटते घुट जाती है सारी दौलत ।
छानते, छनके निकल जाती है सारी हुरमत ॥
पीते ही पानी सी बह जाती है सारी इज्जत ।
चढ़ते ही, चढ़ती है बदमाशीकी सारी हिम्मत ॥
नेक चलनी तो वहीं कूंडी सी घिस जाती है ।
बुद्धिमानी भी सभी मिर्चे सी पिस जाती है ॥ ९ ॥
जब किसी नरको बना पाती है यह अपना यार ।
करके अलमस्त छोड़ा देती है सब घरका भार ॥
फिक्र माता की न औरत की न बच्चों की संभार ।
रात दिन सिर में भरा रखती है अपना ही खुमार ॥
बाप क्या चीज़ है उस्ताद कहां रहता है ।
कुछ खबर ही नहीं संसार य क्या कहता है ॥ १० ॥
हर तरफ भंग ही लहराती नज़र आती है ।
भंग की धार कि जमुना य बही जाती है ॥
सब्ज मैदान कि विजया की हरी पाती है ।
वृक्ष हिलते हैं कि विजया लता लहराती है ॥
है हिमाचल कि पसारी हुई मिर्चों का ढेर ।
मन में हरवक्त पड़ा रहता है बस ऐसा फेर ॥ ११ ॥
छल, कपट, झूंठ, दगा, धोखा, लड़ाई, झगड़ा ।
बुग्ज़, कीना, व हसद, मक्र, मुकरना, दंगा ॥
बस यही काम हैं भंगेड़ियों के शाम सुबा ।
इनका अच्छा सा कोई काम न हमने देखा ॥
ढूंढने से भी न भंगी कोई विद्वान मिला ।
न कोई वीरही ऐसा कि गिरा दे किला ॥ १२ ॥
भंग खाने से समूची रहे मति क्या मानी ।
भंग पीने से अभंगित रहे गति क्या मानी ॥

भंग के योग से खंडित न हो सति क्या मानी ।
भंग तोड़े न सुसंगति व सुनति क्या मानी ॥
नाम ही भंग है तब कैसे रहे बुद्धि अभंग ।
देख खरबूज़े को ख़रबूज़ा बदलता है रंग ॥ १३ ॥
बुद्धि भंडार हो ब्रह्मा ने न इस को खाया ।
शक्ति संचार रमापति ने नहीं अपनाया ॥
इस में संहार की है शक्ति यही दरशाया ।
इस लिये शिव ने इसे अपने ही घर घुटवाया ॥
आग, विष, व्याल, धतूरा की है संगत इसकी ।
इस को खा रक्खे सतोगुण य है हिम्मत किसकी ॥ १४ ॥
बस अगर आपको कुछ देश भला है करना ।
वंश को जाति को गौरव से अगर है भरना ॥
अंत में शांति सहित होवे जो भव निधि तरना ।
कुछ भी निज नामके हित होवे जो करना धरना ॥
भंग को छोड़ के निज वंश का धोवो धब्बा ।
करदो इस दीन से भारत को सुयश का डब्बा ॥ १५ ।

२४—श्री मती तोषकुमारी देवी जी (धर्म्म पत्नी श्रीमान् ठाकुर कर्णसिंह जी वर्म्मा रईस चहँडोली) कहती हैं—

॥ खड़ी हिन्दी में ॥

* कवित्त *

मन में जो अण्ड वण्ड जाती है समाय वही,
बेग बेग बकने ज़ुबान लग जाता है ।
आती है न शर्म्म चाहे कोई बैठा सामने हो,
ऊल उनमादपना ख़ूब प्रगटाता है ॥
पूछता है कोई यह किस का चढ़ा है नशा,
इतनी श्रवण कर गालियां सुनाता है ।

घोट घोट भंग नित पीता है बलम ऐसा,
देवी ने हैं पाया स्वांग देखने में आता है ॥ १ ॥
खूब भंग घोट कर पीता है न मानता है,
बुद्धि हीन मूरख बड़ा ही कहलाता है।
अमृत समझता है पीना इसका ही रोज़,
वाह! वाह!! तारीफ़ के गीत जग गाता है॥
कठिन बड़ा है अक्खड़ी को समझाना ये कि,
चेत करे हाय पै न चेत उर लाता है।
ऐसे बुधूं बलम को पाय कुढ़ती है देवी,
वश चलता न मान मर मर जाता है ॥ २ ॥
मैं ने यदि जाना होता पीता है अनारी भंग,
तो नहीं कदापि उर सेवा व्रत धारती।
पढ़ी लिखी देवी एक मूरख के संग व्याही,
धीरज से ज़िन्दगी जगत में गुज़ारती॥
रहता है सत्त न ज़ुबान पर क्रोध बना,
लड़ने को आता है न सामने पधारती।
कहती हमेश यह छोड़ दो नशा को तुम,
मानता है पै न इसे शोक मैं उचारती ॥ ३ ॥

※ दोहा ※

पीजै भंग न घोट कर। यह मानो सिख एक।
पवित ही सब जांय मिट। शीघ्रहि बुद्धि विवेक ॥४॥
मनें करें वैदहु सबै। भंग न पीना जोग।
सब सुध बुध बिसराय दे। और जांय बढ़ रोग ॥५॥

२६—श्री मान्यवर ठाकुर कर्णसिंह जी वर्म्मा रईस चहँढौली पोस्ट हर दुआ गंज ज़िला अलीगढ़ कहते हैं—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्म वशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५४ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्व मात्म वशं सुखम् ।
एतद्विद्या त्समासेन लक्षणं सुख दुःख योः ॥ १५५ ॥

देखो ! मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १५९–१६० ॥

॥ अर्थ हिन्दी कविता में ॥

ऊपर जो श्लोक दिये हैं उन्हें प्रेम से पढ़ लीजे ।
क्या ही उन का दिव्य अर्थ है सूक्ष्मतया ध्यान दीजे ॥
जितने कर्म किये जाते हैं पराधीन होकर भाई ।
उन्हें यत्न से त्याग दीजिये क्योंकि न हैं वे सुख दाई ॥
उन कर्मों में नहीं दुख है जिन्हें स्वतंत्र किया जाता ।
यही ध्यान में अब रख लीजे धर्म शास्त्र है दरशाता ॥
मन इन्द्रिय जब अपने वश हों तब ही परमानन्द लहैं ।
भाषण का है यही खुलासा जिसे आप से 'कर्ण' कहैं ॥

भावार्थ— " परमानन्द ,, प्राप्ति करने वाले मनुष्य को भंग कदापि न पीना चाहिये क्योंकि भंग—सेवन से मनुष्य स्वाधीन नहीं रहता, पराधीन (भंग के वश में बेहोश) होजाता है और जो पराधीन होता है अर्थात् जिस का मन और इन्द्रियां वश में नहीं रहतीं वह परमानन्द कदापि प्राप्ति नहीं कर सकता इस लिये मनुष्य को उचित है कि भंग कभी भी न पीवे ॥

आगे चलकर आप फिर कहते हैं—

भंग न है पीना भले मानसों का काम ।
इस को पीकर तुम रोज़ लजावो नहिं नाम ॥
जब चढ़ जाती है भंग सुध बुध नहिं रहती ।
बड़ा चूतिया दास है खलकत सब कहती ॥

२६—श्रीयुत सैयदहैदररज़ाजीसाहब दिल्ली निवासी कहते हैं—

हर एक मजहब के लोग कहते हैं कि हमारे धर्म्म ग्रन्थों में शराब पीने की सख्त मुमानियत है। क्या ईसाई, क्या मुसलमान, क्या हिन्दू सब लोग कहते हैं कि हमारे धर्म्मग्रन्थ इन्जील, कुरान और वेदों में मद्य पान का घोर निषेध है। कोई भी धार्मिक पुरुष यह कहने का साहस नहीं दिखा सकता कि हां, हमारे धर्मग्रन्थों में शराब पीना लिखा है। मेरी समझ में शराब ही क्या बल्कि कोई भी मादक द्रव्य जैसे गांजा, भांग, चर्स न पीना चाहिये। क्योंकि जिस चीज़ के खाने पीने से खुद अपने आप को दूसरे के ताबे में कर देना पड़े, क्या उस चीज़ से सिवा हानि के और किसी तरह का फ़ायदा हो सकता है ?

देखो–हिन्दीकेसरी भाग २ अंक १७ पेज ३ काल्म २ लाईन ४०-५७॥

२७—एक शायर ने कहा है-—

यह भंग भी वह सब्ज़ क़दम है कि अल हज़र।
नुक़सान इससे रूह का है जिस्म का ज़रर॥
चक्कर दिमाग को है तो पैदा है दर्द सर।
होशो हवासो अक़्लो ख़िरद सब हैं मुंतशर॥
क़ाफ़ी नशे को इस का फ़क्त एक चुल्लू है।
कमजर्फ़ आदमी है तो चुल्लू में उल्लू है॥

यदि आपको भंगड़ों की वातें सुननीं हों तो श्री मान्यवर पण्डित श्री राधाचरण जी गोस्वामी विद्या वागीश आनरेरी मेजिस्ट्रेट और म्यूनी सिपिल कमिश्नर वृन्दावन की रचीहुई "भंगतरंग" नामक पुस्तक को अवलोकन कीजिये! या भोले भाले बमभोले = भोलानाथ = भूतनाथ के भंग स्नेही चेलों = शिव–शिष्यों की शय्या के समीप बैठकर उन की वार्तालाप श्रवणकीजिये! क्योंकि मुझेतो यहांपर अब अन्तिम–प्रार्थना के अतिरिक्त और अधिक कहने का अवकाश = सावकाश ही नहीं है।

* सम्पादकीय–प्रार्थना *

अरे मेरे प्यारे भंग पीने वाले भाईयो! क्या अब भी भंग पीना

न छोड़ोगे ? अरे ! यह वही भंग है कि जिसने तुमारे सारे अंग भंग कर डाले अर्थात् किसी काम का ही न रक्खा । अरे ! यह भंग वही डायन् है कि जिसके प्रताप से आप विद्याध्ययन नहीं कर सक्ते । धर्म्मोन्नति, देशोन्नति, जात्योन्नति में नहीं लग सक्ते । सदैव आलस्य से ग्रसित रहते हो ! अरे ! यह भांग वही राक्षसी है कि जिसके तेज के मारे आप सदा निरुत्साही बने रहते हो । अरे ! यह वही पिशाचनी = पूतना है कि जिसने अपने बलसे आप को किसी सुकर्म का ही नहीं रक्खा और सर्व विद्वानों की दृष्टि से गिरादिया ! अरे ! यह विजया वही बुद्धि नाशिनी डाकिनी है कि जिसने आप के अच्छे अच्छे विद्वानों को अविद्वान, पण्डितों को मूर्ख, शूरवीरों को कायर, क्षत्रियों को कुक्कड़, धनियों को भुक्कड़, सुबुद्धियों को निर्बुद्धी, पहलवानों = बलवानों को निर्बल बनादिया । हाय ! यह भूतनाथ की भंगभूतनी ऐसी पापिनी है कि जिस के पीने से मनुष्य अन्धा होकर चौपट्ट राजा के समान सबको (भले–बुरों को) एक ही सा समझने लगता है । यथा—

ऊंच नीच सब एकहि ऐसे । जैसे भड़ुए पंडित तैसे ॥
कुल मरजाद न मान बड़ाई । सबै एक से लोग लुगाई ॥
वेश्या जोरू एक समाना । बकरी गऊ एक करि जाना ॥
ऊंच नीच सब एकहि सारा । मानहुं ब्रह्मज्ञान विस्तारा ॥
दोहा=कोकिल वायस एक सम, पंडित मूरख एक ।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहां न नेकु विवेक ॥

अरे ! यह वही निगोड़ी–नाठी, खोटी–छोटी, टूटी–फूटी, बूटी है ! कि–जिसने तुमारी बुद्धिका नाश करदिया । अरे ! जब बुद्धि = (मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्ति आदि शक्ति) ही न रही तो फिर तुमारे पास मनुष्यता कैसे ठहरेगी ? और जब आपके पास से मनुष्यता जाती रहेगी तो आप अवश्य मूर्खपने के कार्य्य करने लगोगे अर्थात्

वन्य पशु समान विचरोंगे और सब लोग भी आपको मूर्ख, मूढ़, अबूझ, अचेत, अज्ञानी, निर्बुद्धि, शठ, अहिमक़, बेवुक़ूफ़, फूल, नादान और बेशऊर आदि कुनामों से पुकारेंगे। इस लिये यदि आप बुद्धिवान बनना चाहते हैं तो इस बुद्धि नाशक विजया का पीना शीघ्रता से छोड़दो ! देखो ! शारंगधरजी के इस—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ १९६ ॥,
देखो ! शारंगधर संहिता अध्याय ४ श्लोक २१ ॥

श्लोक काभी यही स्पष्ट भावार्थ है । कि—जो २ पदार्थ बुद्धि का नाश करने वाले हैं उनका सेवन मनुष्य कभी भी न करे अर्थात् भंग कभी भी न पीवै ॥ दामोदर—प्रसाद —शर्म्मा—दान—त्यागी

षोड़स—परिच्छेद

॥ भङ्गड़ियों—की—गपशप ॥

एक समय एक बाज़ार में एक विद्वान मादक द्रव्यों के खान—पान के निषेध पर एक बड़ा गम्भीर व्याख्यान दे रहा था जिस में भंग का भंग भी किया गया था । व्याख्यान अभी पूरा भी न होने पाया था कि चटसे एक भांग स्नेही, जिसका नाम बजरंगबली सिंह साहब भंगड़ियों का गुरू था, क्रोधान्ध हो भेड़ियेके सदृश रक्त वर्ण नेत्र करके सिंहनाद कर पुकार उठा—" क्यों रे भूतनी रांड़ के ! अब तू ऐसो हैगयो सो हमारी भंग भवानी की निन्दा करै है । कहै तो अभी तेरी टांग पकड़ दै मारूँ और पढ़िबो—लिखबो, कहिबो—सुनबो सगरो भुलाय दैउँ"। इतनेही में भंगेड़ियों की एक चौपई चौपाई गाते हुए आपहुंची जिस में भंगड़-गुरूजी जामिले और उछल २ कर नीचे लिखेहुए रागअलापनेलगे—

* दोहा *

काहे को जप तप करै । काहे को व्रत दान ।
भांग मिर्च भोजन करै । हृदय बसैं भगवान ॥

तेज बुद्धि बल को करै । हरै सकल सन्ताप ।
भांग भांग मन में कहै । तन में रहै न पाप ॥
जग कारन तारन तरन । हरन सकल भव भीर ।
या विजया के योग सों । रोग न रहत शरीर ॥
योगी जन जप तप करैं । रहैं सदा मुख मौन ।
बिना भांग भगवान को । भजन न भावै तौन ॥
शुक शारद नारद नकुल । सनकादिक दुर्वास ।
भक्त भये भगवान के । विजया के विश्वास ॥

* सवैया *

पहिले तोहि मथ्यो शिवने द्वितिये सनकादिकको व्रत धार्यो ।
देव दिगम्बर नारद शारद व्यास लई तव वेद उचार्यो ॥
अंगदादि सुग्रीव लई हनुमन्त लई तब लंकहि जार्यो ।
या विजिया बलवन्त महा जब राम लई तब रावण मार्यो ॥

शिखिरणी—छन्द ॥

अधेले की बूटी मिरच दमड़ी की लेलई ।
मसाला पैसे का रगड़ कर गोली करलई ॥
लिया साफ़ी पानी जुगत कर छानी सहज में ।
पिवैगा जो कोई हरि हरि भजैगा लहर में ॥

कवित्त—चहै चित्रकूट में पवित्रले सुचित्त होके नित्तही प्रवीन पढ़े वेद औ पुरान को । चाहै तंत्र मंत्र से अघोर घोर सिद्ध करै, चाहै करै कानन गोविन्द गुण गान को ॥ चाहै शिव-राय गिरिनार के गुफा में बैठि करैं जप जोग यज्ञ कोटिन विधान को । ज्ञान सों अनेक भांति करै विप्रमान दान बिना भांग भजिबो न भावै भगवान को ॥ १ ॥

गणपति ज्ञान के निधान भये भांगही तैं भांग ही तैं शेष भूमि भार सों बचे रहैं । भांग ही तैं पालैं विष्णु भांग तैं

सँहारैं शिव भांग ही तैं ब्रह्मा नित सृष्टि को रचे रहैं ॥ भांग ही से सिद्ध और मुनींद्र महाराज भये, इन्द्र के हमेशा मोद मंगल मचेरहैं। कवि शिवराम प्रिय भांगको प्रभाव बड़ो भांग सों गोविन्द जू फणींद्र पै नचे रहैं ॥ २ ॥

॥ वाणी ॥

भंग कहैं सो बावरे। विजया कहैं सो कूर।
इसका नाम कर्मलापती। नैन रहैं भर पूर ॥
भंग गंग दोऊ बहिन हैं। रहतीं शिव के संग।
तरन तारनी गंग है। लड्डूआ खानी भंग ॥
साधो खाई सन्तो खाई। खाई कुंवर कन्हाई।
जोविजयाकी करे बुराई। ताहि खाय कालका माई ॥
जोविजयाकीकरैवदबोई। वाके वंश में रहै न कोई ॥
जो भंग का करै गिल्ला। उसकी माकुत्ती बापपिल्ला॥
आवै आवै आवै ऐसी लहर आवै।
किं हाथी का सवार भुनगा ही नज़र आवै ॥
हाथी मच्छड़ सूरज जुगुनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात ॥
हरी भांग में हरि वसैं। भूरी में भगवान।
या विजया के सकल गुण। को करि सकै बखान ॥

अरे ! ऐसो कौन है ? जो भांग भवानी की पूरी पूरी बड़ाई करि सकै क्योंकि

विजया हरि को रूप है। को कहि पावै पार।
कुछ प्रभुता तुमसों कही। प्रेम विलोकि तुम्हार ॥

बहुधा भंगड़ लोग भंग राक्षसी की मिथ्या स्तुति में ऐसी ही गपशप हांका करते हैं। और इसी प्रकार अन्य नशेबाज़ भी अपने२ नशों की असत्य बड़ाई में ऐसे ही गपोड़े मारा करते हैं। यथा—

गांजेबाज कहता है—

जिसने न पी गांजेकी कली । उस लड़के से लड़की भली ॥

हुक्कची बकता है—हुक्का हरि को लाड़लो, राखे सबको मान।
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिनमें कान॥

॥ शेर ॥

मज़ाइस्का चक्खो तो पीलोज़रा, फ़िज़ूलीयवक़् नातो सबसे बुरा।
निहायत् मज़ा इस्में है बेनज़ीर, इसी से कियाहै यदिल् नेपिज़ीर॥

तमाकू वाला चिल्लाता है—

कृष्ण चले वैकुण्ठ को, राधा पकड़ी बांह।
यहां तमाकू खाय लो, वहां तमाकू नांहि ॥ इत्यादि

॥ हुक्का खंडन—तर्ज ख्याल ॥

बिन पीये नहिं हानि तुम्हारी, लाभ नहीं कुछ पीने में।
ठाली का यह झार लगाना, दाग़ लगाना सीने में॥
क्यों नुक़सान न होगा उन को, गरमी के जो महीने में।
ठीक दुपहरी चलकर आकर, भरकर पीयें पसीने में॥
सोच समझ कर चलो पियारे, होना क्या फिर हीने में।
तरह तरह के मर्ज़ लगाकर, ख़तरा करना जीने में॥
छिके हुए कहिं आय चचोरें, होय लड़ाई छीने में।
बे मतलब मत जिस्म जलाओ हुक्का आग उझीने में॥
ध्यान लगाओ पर ब्रह्म से उसी कि आज्ञा नित्य करो।
सदाचार आरूढ़ होय कर सत्यमार्ग चल दुःख तरो॥
तजि कुसंग परि के सुसंग में दुर्व्यसनों से दुर्विचरो।
वेदविरोधी काम छोड़ सब नियम धर्म का व्रत पकरो॥
आफू भांग आदि जे मादक इनके फन्द से तुम चपरो।
दुःख बड़े बढ़ि गए इन्हीं के पीने से सब ढंग पतरो॥
वृथा आयु धन धर्म खोय मति बुरे हुक्क के झार परो।
सर्व दुःख की खानि हुक को तजौ हुक्ख को मत कतरो॥

* ओ३म्—खम्ब्रह्म *

—०:-:०—

सप्तदश—परिच्छेद

* यमुनापुत्र—विचित्र—चरित्र *

—*—:—:—*—

एक दिन मेरेबड़े भाई [नारायणदासजी] अपने मन्दिर में बैठे हुए श्रीमत्भागवत की कथा श्रवण कर रहे थे। वहां पर ३०—४० यमुना-पुत्र = चौबे भी उपस्थित थे। जब कथा समाप्त होचुकी तब उन्हों ने मुझ से पूछा। कि—कहां से आया है?

मैं—आर्य्यसमाज से ॥

एक य० पु०—अरे! आर्य्यसमाजी तो सबकी बुराई करौ करैं हैं॥

मैं—महाराज! आप की तो नहीं करते?

य० पु०—अरे! हमारी कैसें करैंगे? और जो करेंऊँगे तो उन के करे सों होही का है। अरे! देख—हमारी बड़ाई तो श्रीबाराहजू महाराज पहिले ही सत्ययुग में कर गये हैं॥ ले सुन—

माथुराणां हि यद्रूपं तन्मे रूपं वसुंधरे।
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥१५७॥
न केशव समो देवो न माथुर समो द्विजः।
न विश्वेश समं लिङ्गं सत्यं सत्यं वसुंधरे ॥१५८॥
माथुरा मम पूज्याहि माथुरा मम वल्लभाः।
माथुरे परितुष्टेवै तुष्टोऽहं नाऽत्र संशयः ॥१५९॥
माथुराः परमात्मानो माथुरा परमा शिषः।
माथुरा मम देहावै सत्यं सत्यं वसुंधरे ॥१६०॥

भवंति सर्वे तीर्थानि पुण्या न्याय तनानि च ।
मंगलानि च सर्वाणि यत्र तिष्ठन्ति माथुराः ॥१६१॥
माथुराणांतु यद्रूपं तद्रूपंमे विहंगमः ।
ये पापास्ते न पश्यंति मद्रूपान्माथुरान् द्विजान् ॥१६२॥

अर्थ=जो रूप माथुर ब्राह्मणों का है वही रूप मेरा है । हे पृथ्वी ! सौ कोटि (करोड़) ब्राह्मणों के जिमाने का जो फल होताहै वही फल केवल एक माथुर ब्राह्मण के भोजन कराने का होता है ॥ १५७ ॥

हे पृथ्वी ! मैं तुम से यह सत्य सत्य कहता हूँ कि जैसे देवतों में केशवदेव और महादेव के लिङ्गों में विश्वनाथ श्रेष्ट हैं वैसेही सब ब्राह्मणों में माथुर ब्राह्मण श्रेष्ट हैं ॥ १५८ ॥

हे पृथ्वी ! माथुर ब्राह्मण मेरेपूज्य हैं, माथुर ब्राह्मण मेरेप्यारे हैं इसी लिये मैं माथुर ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने से सन्तुष्ट होता हूँ ॥ १५९॥

हे पृथ्वी ! मैं तुमसे सत्य सत्य कहताहूँ कि माथुर ब्राह्मण मेरी परम आत्माहैं, माथुर ब्राह्मण परमाशिपैहैं और माथुरब्राह्मण मेरी देहहैं ॥१६०।

सबरे तीर्थ वहीं निवास करैं हैं, पुण्य पवित्र स्थान वही है, मंगल भी सब वहीं हैं जहां माथुर ब्राह्मण स्थित हैं ॥ १६१ ॥

हे वसुन्धरे ! माथुर ब्राह्मणों के पूजन से मैं परम संतोप को प्राप्त होता हूँ क्योंकि जो माथुर ब्राह्मण हैं सो मैंही हूँ, जो पापात्मा पुरुष हैं वो इनको नहीं देखते अर्थात् नहीं पूजते ॥ १६२ ॥

देखो ! श्रीमत् वाराह पुराणान्तरगत श्रीमथुरा महात्म्य अध्याय १२॥

दूसरा य० पु०—अरे ! देख—हम याहू सों बढ़के सुनावें हैं—

अनूचो माथुरो यत्र चतुर्वेद स्तथा परः ।
चतुर्वेद परित्यज्य माथुरं परि पूजयेत् ॥१६३॥
कृषीबलो दुराचारो धर्म मार्ग पराङ् मुखः ।
ईदृशो पूजनीयो पि माथुरो मम रूपधृक ॥१६४॥
एके न पूजिते न स्यान्माथुरेणाखिलं हितत् ।

वेदैश्चतुर्भि नैवस्या न्माथुरेण समः पुमान् ॥१६५॥

अर्थ=जहां विना वेद पढ़ा माथुर ब्राह्मण हो और चारों वेद का पढ़ा अन्य ब्राह्मण भी हो तो वहां चार वेद पढ़े ब्राह्मण को छोड़दे अर्थात् न पूजे और विना पढ़े (मूर्ख) माथुर ब्राह्मण को पूजै ॥ १६३ ॥

यदि माथुर ब्राह्मण खेती का करनेवाला हो, दुराचार करने में वली अर्थात् महादुराचारी = दुरात्मा (दुष्ट = पापी) हो, धर्म मार्ग रहित अर्थात् अधर्मीहो तोभी पूजनीयहै क्योंकि वह=माथुरब्राह्मण मेरारूपहै १६४

एक माथुर ब्राह्मण के पूजन करने से सब काम होजाते हैं, चारों वेद के पढ़े हुए ब्राह्मण का पूजन माथुर ब्राह्मण के पूजन के तुल्य नहीं होता अर्थात् मूर्ख माथुर ब्राह्मण का पूजना अच्छा है अपेक्षा एक अन्य ब्राह्मण के जो चारों वेदों का पढ़ा हुआ हो ॥ १६५ ॥

तीसरा य० पु०—अरे! त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रजीने तो यहांतक कही है। कि—तुम सदैवके लिये मेरेपूज्य हो, रक्षकहो औरपोशकहो। यथा—

भवन्तो मम पूज्या हि रक्ष्याः पोष्याश्च सर्वदा ॥ १६६ ॥

तुमारे (माथुरों के) पूजन करने से परमात्मा प्रसन्न होता है। यथा—

येषां पूजन मात्रेत्र परमात्मा प्रहृष्यति ॥ १६७ ॥

देखो! वाराह पुराण—मथुरा माहात्म्य अध्याय १२ श्लोक ५४—५९

तुम हो चार वेद के ज्ञाता। चातुर्वेदी नाम कहाता ॥
तुमको सबजग शीश नवाता। दर्शन तुमरा सबको भाता ॥

चौथा य० पु०—श्री शत्रुहन जी महाराजहू हम कों बड़ो समझते हे। देखो! एक दिन यज्ञ में मुनीसरों की गिनती पूरी न भई। तब उन ने संखा पूरी करवे कों कछू माथुरन कों मिलाय लीनों और कह्यो कि एक २ चौबे के पूजन को महातम एक २ हजार मुनीके बराबर होयहै ॥

पांचवां य० पु०—लै! हमारी हू सुन-द्वापर के अंत और कलियुग के आदि में श्रीकृष्ण भगवान ने हूं हमारे गुन गाये हे और हमें यग्य करत देख कें राजी भये हे और फिर हम सों यग्य को परसाद = भात मांग के अपुन ने खायौ हो ॥

छटा य० पु०—अरे ! हमारोहू एक कवित्त सुन—
भूरे भूरे विपत अखंड भुजदंड देह अष्ट पहर ठाड़ेरहैं रविजा के द्वार पर । देत हैं अनेकन को दान वरदान सदा पूजैं सो उतरैं भवसागर के पार पर ॥ ऐसो कियो यज्ञ कोटि तेतीसों जो आये सुर मोहन न पहौंचे ध्यान महिमा अपार पर । पांच हज़ार वर्ष भये तब आये हे कृष्णचन्द्र मांगी ही भीख आय माथुर के द्वार पर ॥

सातवां य० पु०—अरे भैया ! वेद मतावलम्बी, दक्षिणी ब्राह्मणों ने हूँ हम को वेद मूर्ति कह्यो हो ॥

इसके बाद एक और चौबेजीने, जो कुछ पढ़े भी थे, कहा—सिवाय इन उक्त प्रमाणोंके औरभी अनेक प्रमाणोंसे हमारी बड़ाईपाई जातीहै । देखो !

श्रीशंकराचार्य, रामानुज, विष्णु स्वामि, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, आदि ने भी हमको परम उत्कृष्टता के साथ मान्य कियो सो उनके लेख पत्रों से स्पष्ट है और अकबर, आलमगीर, शाहजहां के फ़रमान भी हम लोगन के पास हैं और लीकजरनैल साहब वग़ैरह के परमाने राजा महाराजों की सनदें भी हमारे लोगन के पास मौजूद हैं ॥

सब मिलकर—क्यों साब ! कहौ, का इतने पै हू कोऊ हमारी बुराई करसकै है ? ॥ इस को सुनकर मेरे बड़े भाई ने कहा—नहीं महाराज ! किसी की भी ताक़त नहीं है । जो आपकी बुराई करसकें । यह (मैं) तो कुछ समझता नहीं है ॥

मैं—अजी महाराज ! आपने जो कुछ पहिली बातें सुनाईं हैं सो उन के लिये तो मैं कुछ नहीं कहूंगा क्योंकि वह समय ही बीतगया । पर अब आप को कुछ वर्त्तमान समय का वृत्तान्त भी विदित है ?

सबजने—वर्तमान को वितांत कैसो ?

मैं—कुछ कहनाहीं चाहताथा कि चट से उठकर—

एक चौबे—अरे ! जा समय में भी हम सब सों सब बातन में बढ़कें हैं । देख ! एक भीख मांगबे में ही हम और सबरे भिखमंगन के कान काटो करें हैं अर्थात् हमारे बराबर कोऊ भीख मांगबाऊ नांय जानें । सुन ! एक पोत परमेसुर कों न मानबे वारे सराउगिन की बरात आई सो हम वहां हूं जाधमके और उनसों जै ऋषभदेव की, जै महावीर स्वामी की कहिकें कहिबे लगे । कि—महाराज ! तुम बड़े धरमात्मा हौ । तुमारें जीउ की बड़ी रच्छा होय है। तुम तो भैया खटमल, पिस्सू, कीड़ी, मकोड़ी, तक कों नांय मारौ हौ किन्तु उन कों पालौ करौ हौ। तुम तौ बड़े भारी दयावान हो। हम तौ तुमारो बड़ो नाम सुन कें बड़े दूर सों आए हैं ॥

महाराज ! हमहू तो दुनियां के एक जीव हैं । देखो ! दो दिन सों मांगबे में हमकों कछू नाय मिलो सो भैया दया कर के कछू हमहू कों देउ । जब हमने विनकों ऐसी दो चार मन सुहांतीं बातें सुनाई तो दूल्हा के बापने हमकों पांच रुपैया दये । हम रुपैया लेत खेम ही चलदीये । कहौ, कैसे नास्तिकन कों जाय मारो । बस जही हमारी चतुराई है ॥

दूसरा चौबे—अरे जाहू सों बढ़कें हम तोय एक और अपनी अक्कल सुनावें हैं । सुन् ! एक बखत एक ठंढी सड़क पे हम दौर करबे कों गये हे । सो वहां एक मुसलमान बड़ो आदमी मिलो । वाने पूंछी " तू क्यों भागता है ? " हमने कही महाराज ! हमतो हव्वा लेब आये हैं । वाने पूंछी तू क्या चाहता है ? हमने कही मियांजी ! जो तुम देदेउगे सो ही लेलेयगे रुपैया–पैसा । वाने कही तू तो हिन्दू= काफ़िर है । हम हिन्दू को नहीं देते । यह सुन कें हम फिर गड़गड़ा के बोले अजी मियांजी ! हम हिन्दू तिन्दू इन्दू सिन्दू मियां मलेच्छ कछू नांय जाने हमतो नबी साहब की मुहब्बत के मलंग हैं । बस भैया बस ! जे सुनते ही वाको रोम रोम राजी है गयो । वाने खुसी मों खीसा में सों

निकास कैं दो चिहरासाही अव्वल दुव्वल हम कों देदीने । भैया ! रुपैया लैकैं हम झट्ट भगाड् चले आये । अरे ! देखौ हम कैसे अकलवर हैं ॥

तीसरा चौबे—अरे ! अब थोरे से दिनन सों कछु लोग आरीया वनबैठे हैं । वह न तीरथ जानें, न मूरत मानें, न मरेन को सराध ठानें, न सूतक समझें, न जमना न्हावें, न संकल्प करावें । पर भैया ! हम तो उन्हूं सों कछू न कछू लैही लैऔ करें हैं । हम तो विन के सामने ऐसी बातें कहौ करें हैं जासों वह राजी है है के खूब हंसो करें हैं । अरे ! जौ वह संकल्प नांय करें तो मत करौ हमारो का नुकसान होय है । अरे ! हम तो सैर कराइ कुल्हइ कै और बातें बनाइ चुनूइ कैं कछू न कछू लैही मरै हैं । कल्ह की बातहै हाथरस की रेल पै एक भलो सो आदमी उतरो,हमने पूंछी—का भइया तीरथ जात्रा करैगो । वह बोलो हम तो **आर्य्य हैं, बतलाओ समाज मन्दिर कहां है ?** हमने वाको समाजमें लाय बैठारो. तब पूंछी—कहौ कछू सैर ऐर करौगे । वाने कही—हां हां करैंगे । तब हमने कही—हमही तुम्हैं सैर सपट्टा कराय लावैंगे । सो भैया ! वह राजी है गयौ तब हम वाय लै उडे और मथुरा की सबरी चीजें बताई फिर विसरान्त की आरती दिखाई पर डर के मारे वासों ज न कही कि जमनाजी पै कछू भेट चढाओ । फिर जमना के किनारे २ दिखावत भये आरीया समाज में लेके छोड दियो तब हमने वासों कही कि महाराज ! तुमारे गुरू दयानंद जी तो बडे परतापी भए हैं विनने बडो तप कीनो हो और गरीब अनाथन कौ देवो बताओ हो और तुम हू गरीबन कों देऔ करो हो और महाराज मैं बडो गरीब हौं सो मोहू कौ कछू देउ । बस भैया ! ऐसी लल्लो पत्तो की बातें कहीं सो वह राजी हैगयो और **रुपैया चार** हम कौ देगयो । कहौ भैया ! हम कैसे हैं पक्के मँगैयः कि आरीअनहूं सों लीये बिना नाय रहैं हैं ॥

चौथा चौबे—अरे ! हम छीना झपटी और मारा पीटी हू में बडे नपुण होऔ करे हैं । देख ! एक बेर एक बाबन ने, जो आज कल

ल्लाकट, साव कहावेंहै, हम चौबेन की कछू बुराई छापी ही सो हमारे एक कविराज ने वाको डुपट्टा उतार छीन लीनों और एक थप्पड़ मार दीनों तब सों वो हमारी बुराई नांइ छापे है ॥

प्र०—कविराज ने कविता ही में उस का उत्तर क्यों न दिया ?

उ०—अरे भैया ! कविता करबे में तो बड़ी देर लगौ करै है ॥

प्र०—अजी महाराज ! देर लगे तो लगने दीजिये किन्तु लिखावट का उत्तर तो लिखावट ही में दिया जाता है और हाथा पाई करना तो भले लोगों का काम नहीं है क्योंकि यह तो मूर्ख उजड्डों का काम है । यदि सब ही लोग ऐसा अक्खड़पने का काम करें तो कवि और कुक्कड़ में फ़र्क ही क्या रहै ?

उ०—अरे भैया ! हमारे कविजी **भंग–भवानी** को सेवन बहुत करौ करें हैं जासों कबू २ वाकी लहर मेंलहराय उठौ करें हैं और कबू आलस में हूँ पड़े रहैं हैं । बस यही बात है कि उन का कोई काम **(लिखने–पढ़ने का)** पूरा नहीं होता । अरे भैया ! हमारे कवि जी निरे कवीश्वर ही नांयने । वे तो तीतर–बटेर के समान आधे कवि और आधे कुक्कड़ = फक्कड़ = अक्खड़ हैं ॥

प्र०—वाह ! यह बात तो मुझे आज ही विदित हुई कि आप के कवीश्वरजी कुक्कड़ = फक्कड़ = अक्खड़ भीहैं । मैंतो उनको एक बड़ा सुशील विद्वान समझता था । खैर–यह कहावतें भी देखने में आगई—

१-विषरसभरा कनकघट जैसे। 2-A. Serpent under the rose

पांचवां—अरे ! हमारे बरब्बर कोऊ नांयने, देख ! चारों सम्प्रदाय के आचार्य्यों ने हमारे बड़ेनको चरन पूजनकियो, ५२ राजाओं ने सन्मान कियो और दिल्ली के बादशाह ने सत्कार कियो । यथा—

चतुर्णां संप्रदाया नामाचार्यैं धर्म वित्तमैः ।
उजागरांघ्रि पद्मानि पूजितानिश्च भक्तितः ॥१६८॥
द्विपञ्चाशद्भूप वृन्द माथितोय उदारधीः ।

मथुरायां स्वीचकार पौरोहित्यं तदीयकम् ॥१६९॥
गुणैर्यदीयैर्बहुभिर्विचित्रैश्चमत्कृतश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
दिल्लीश्वरोनाकबरो करोतिकम् सुसत्कृतं नाकगुरूपमंयम् १७०
॥ देखो ! माथुर भास्कर पृष्ठ २०-२१ श्लोक ५०-५१-५२ ॥

छटा-अरे! अभहू राजा, राउ, महन्त, गुसाईं हमारे लिये शिर झुकायौ करैं हैं । यथा—

दोहा-भानु सुता के पुत्र हम, वेद विदित विख्यात ।
सदा कृष्ण बलरामपद, ध्यान धरें निशमात ॥
चौ०-ध्यान धरें निशमात नाम चातुर्वेदी कहलामें ।
राजा राउ महन्त गुसाईं हर दम शीश नवामें ॥
दिव्यरूप विद्वान:कवी पंडित गुणवंत सभा में ।

सातवां—अरे भईया ! आज कल हू हजारन लाखन जात्री जात्रा कों आय आय कैं हमें पूजैं हैं ॥

आठवां—कछू और सुनोगे ?

बड़े भाई—महाराज ! आप बड़े हैं आप की महिमा का पार कौन पासक्ता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥

शब्दार्थ—यमुनापुत्र = मथुरा के चौबे । विचित्र = मनोहर । चरित्र = वृत्तांत । माथुर = यमुना पुत्र = मथुरा के तीर्थ पुरोहित चौबे ॥

नोट—प्रिय पाठको ! यहां पर पढ़ने में शुद्धाशुद्ध का विचार न करना । जो जैसी बोली बोलता है उस की वैसी ही यहां पर नकल की गई है ॥

(नेपथ्य में) क्या होरहा है ?

बड़ेभाई—(सत्यार्थीजी को देखकर) आइये ! आइये !! बैठिये !!! चौबे लोगों की बातें सुन रहाहूं ॥

सत्यार्थीजी—(बैठ कर सब लोगों से) महाराज ! यह लोग

(चौबे) बातें तो मीठी मीठी करते हैं किन्तु विद्या का आदर नहीं करते ॥

एक वृद्ध माथुर—अरे ! विद्या तो दूर रही । हम तो महा विद्या को सतकार = पूजन करो करैं हैं । अरे ! जा जगत में हमारे बरब्बर तो कोऊ हैऊ नांय । जबी तो सब जने हमें (चौबों को) पूजे हैं ॥

सत्यार्थीजी—महाराज ! आप का यह कथन असत्यता सहित है क्योंकि सब लोग आप के कर्त्तव्यों की समालोचना बुरी करते हैं ॥

वृद्धमाथुर—अरे ! कौन करै है ?

सत्यार्थीजी—सब लोग ॥

वृद्धमाथुर—अच्छो ! दो—चार के नाम तो बताय ॥

सत्यार्थीजी—लो ! कान लगा सुनियेगा ॥

१—अत्रि ऋषिजी आपके पूजन का वर्जन करते हैं । यथा—

माथुरो मागधश्चैव कापटः कीट कानजौ ।
पंच विप्रा न पूज्यन्ते वृहस्पति समायदि ॥ १७१ ॥

माथुरो = मथुरा के चौबे । देखो ! अत्रिस्मृति अ० १ श्लो० ३८६॥

२—महर्षि दयानन्द ने कहा है—" मथुरा तीन लोकसे निराली" तो नहीं परन्तु उस में तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल स्थल और अन्तरिक्ष में किसी को सुख मिलना कठिन है । एक चौबे जो कोई स्नान करने जाय अपना कर लेने को खड़ा रहकर बक्ते रहतेहैं लाओ यजमान ! भांग मर्ची और लड्डू खावें पीवें यजमान का जय २ मनावें, दूसरे जल में कछुवे काटही खाते हैं जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है, तीसरे आकाश के ऊपर लाल मुख के वन्दर पगड़ी टोपी गहने और जूते तक भी न छोड़ें काट खावें धक्के दे, गिरा मार डालें और ये तीनों पोप और पोपजी के चेलों के पूजनीय हैं मनों चना आदि अन्न कछुवे और वन्दरों को चना गुड़ आदि और चौबों की दक्षिणा और लड्डूओं से उनके सेवक सेवा किया करते हैं ॥ देखो! सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३२४ पंक्ति ८ से १७ तक॥

३—श्रीमान् बाबू तोताराम जी वर्म्मा वकील हाईकोर्ट पश्चिमोत्तर देश अलीगढ़ निवासी कहते हैं—

मथुरा के चौबे प्रसिद्ध हैं। इन में बड़े२ धनी हैं बली हैं१। परन्तु विद्या के वैरी हैं२। यमुना तट बैठकर जन्म पूरा करते हैं३। पढ़ते लिखते एक अक्षर भी नहींहैं४। भोजन को भली भांति पहचानतेहैं। घी मिष्टान रहित भोजन को भूत भोजन कहतेहैं। लड्वा पेड़े तो चाहे वर्षों तक खाते रहैं। विजिया इनकी जन्म घुटी है। व्यायाम करतेहैं५॥

कटु वचन कहकर दूसरे को दुःख नहीं देते ६। सन्तोष भी इतना है कि याचक में होना कठिन है। आप दुःख सहकर यात्रियों को सुख देने वाले हैं। यात्रियों को सुख उन से बहुत मिलता है७। कहने में बड़े चतुर और निडर निदान चौबे जितने हैं उनमें खोजने से भी कोई मलीन मुख न मिलेगा। सब को चैतन्य और प्रसन्न हमने देखा है। इनकी स्त्रियां इन से भी अच्छे स्वभाव की और देवी स्वरूप हैं ८॥

मथुरा के बन्दर भी चौबों से कम प्रसिद्ध नहीं हैं। हाट, बाट, घाट, सब बन्दरों से भरे हुए हैं। कोई स्थान विना बन्दरों के देखने में नहीं आता है। भांति भांतिके उपद्रव नित्य करते हैं। नगर के लोग और यात्रियों को बहुत कष्ट पहुंचाते हैं। प्रति वर्ष १०—२० मनुष्यों को छत्तसे गिराकर यमलोक में पहुंचाते हैं। बन्दरों की लीला बर्णन से बाहर है ९। कुछ पकड़ कर वन को भेजदिये गये परन्तु फिर भी चौबों से कम नहीं हैं॥

चौबे और बन्दरोंके सिवाय मथुराके कछुवेभी प्रसिद्धहैं। ये बड़े २ स्थूल होते हैं। विश्रान्त घाट पर इनकी अधिकता है। इनको लोग चून की गोली और अन्न आदि डालते हैं। कोई कोई काट भी खाता है १०॥ ॥ देखो! "ब्रज विनोद" पृष्ठि ८८॥

* नोट्स *

१—जब थे तब थे किन्तु अब तो न धनीहीं हैं और न बलीहीं हैं॥

२-जब विद्या के बैरी हैं तबही तो बहुत (१०-१२ सेर) खाकर
अपना नाम विख्यात करते हैं अर्थात् चौबे पण्डों में वही बहुत बड़ा
और अच्छा चतुर कहाता है जो सबसे अधिक खाता है । यथ —

नरों में नौआ—पक्षियों में कौआ ।
डरों में हौआ—पण्डों में खौआ ॥

बहुधा चौबे लोग अपने अधिक खाने की बड़ाई में कहा करते हैं ।

* कवित्त *

आठ आठ आठबेर चार चार चारबेर, एकेक अनेक
बेर यही ठेकठानी है । पूरी पिसताई और मिठाई दो
चार सेर, झोर परसैयन ने हार हार मानी है ॥ मूंग
लूट कूट खात भात खात ना अघात, घ्योंको सोखजात
जैसे बारू बीच पानी है । और लोगनकी भूख सांझ
और सवेर की, चौबेजी की भूंख एक दमकी बखानी है ॥

परन्तु विद्यावान बहुत नहीं खाता । और बहुत खाना योग्य भी
नहीं है । यथा—

बड़े पेट के भरन को । है रहीम दुःख बाढ़ि ।
याते हाथी हहरि कै । दिये दांत दुइ काढ़ि ॥
नाम भजन को आलसी । खैबे को तैयार ।
तुलसी ऐसे पतित को । बार बार धिक्कार ॥

३-जमुना तट पर न बैठें तो क्या करें वह तो उनकी जीविका
का दर्बार है ॥

४-पढ़ लिखकर क्या करैंगे ? जब कि बिना अक्षर ज्ञान के ही
सैंकड़ों बरन हजारों रुपये पाते हैं = कमाते हैं ॥

५-बहुधा अब व्यायाम भी नहीं करते ॥

६-आपस में तो अरे, तरे, तू, तड़ाक, क्योंरे, हांरे, क्योंबे, हांबे,
होरे, अरे आदि शब्दों का प्रयोग कियाही करते हैं किन्तु कभी

कभी गरीब यजमानों (दाताओं) को भी कटु वचन बोलते हैं और जब कोई बुरा मानता है तो अपने बचाव के कारण कह देते हैं। कि—अरे यहां की तो बोल चालही ऐसीहै । सुन—

बोलन्त हेला बचलन्त गारी । देखी कान्ह मधुपुरी तिहारी ॥

७—यदि यात्रियों को उन से सुख मिलता है तो उनको भी यात्रियों से धन खूब मिलता है ॥

८—इसका मतलब मेरी समझ में तो नहीं आया किन्तु वकील तोताराम जी ने तो अपने दिलमें कुछ न कुछ अवश्य सोचा ही होगा जिसको विचारवान् पुरुष शायद अब भी समझ सकें ॥

९—यकीन है वकील साहब ने **रामायण** को नहीं पढ़ा । यदि पढ़ते तो ऐसा न कहते । कि—"बन्दरों की लीला वर्णन से बाहरहै" ॥

१०—सुना जाता है कि इन तीनों (चौबे--बन्दर--कछुओं) का स्वभाव एकहीसा होता है । यथा— ॥ दोहा ॥

मथुरा में दुखदा रहैं, सुखदा जमना माय ।
माथुर मर्कट मच्छ बन्धु, छीन झपट कर खांय ॥

कोई कोई ऐसा भी कहते हैं—

मथुरा में मँगता बसें, रानी जमुना देत ।
बामन बनियां बांदरा, लूट लिपट लै लेत ॥

शब्दार्थ—डरों = भय । खौआ = अधिक खानेवाला । हहरिकै = घबराके । **स्वभाव** = प्रकृति । दुखदा = दुःखदेनेवाले । **सुखदा** = सुखदाता । माथुर = चौबे । मर्कट = बन्दर । मच्छबन्धु = कछुआ । मँगता = भिखारी, मँगन । बामन = वो ब्राह्मण जो मांगकर पेट—पालना करते हैं । **बनियां** = वो दुकानदार जो मेहशियों को धोका देकर तिगुने चौगुने छःगुने दाम मार खाते हैं और फिर लड़ने को तैयार हो जाते हैं ॥

११—यह भी सुनने में आया है कि इन तीनों में आपस में बड़ी

गाढ़ी मित्रता रहती है, केवल जीते ही नहीं पर मरने पर भी क्योंकि यमुना-पुत्र मरकर बन्दर या कछुआ होता है, बन्दर मरकर कछुआ या यमुनापुत्र होता है और कछुआ मरकर यमुना पुत्र या बन्दर होता है। कारण ये तीनों श्रीयमुना जी के अति प्यारे हैं इस से श्री--जी ने इन को आपस में मित्रता से रहने को कह दिया है, जमुना जी इन तीनोंको अपनी आंख की ओझल में भी नहीं जाने देतीं अर्थात् सिवाय इन तीन जोनियों के किसी अन्य चौथी जोन में नहीं भेजतीं ॥

प्र०-क्या जमना में इतनी सामर्थ है जो ईश्वरीय नियम के विरुद्ध कोई कार्य्य करसके ?

उ०-हां हां, उस में सब सामर्थ्य है। अरे! वो तो पापी से पापी महापापी को भी मोक्ष देती हैं। कारण वह मृतकों के हाकिम श्री यमराज की दुलारी बहिन और यशोदा नन्द नन्दन आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र श्री कृष्ण चन्द्र भगवान त्रिलोकी नाथ की परम प्रिय पटरानी है। इसीलिये वह उन के बल भरोसे पर सब कुछ कर सक्ती है ॥

नोट-पर-नोट-यह बात मैं ने श्री शिवजी की बूटी पीने वाले; लड्डुआ पेड़ा खानेवाले; जसुमति धैया, जमुनामैया, बलदेव भैया, कृष्ण कन्हैया की जै जै पुकारने वाले एक बुड्ढे प्राचीन जमुना-पुत्रसे सुनी थी न मालूम यह झूँठ है या सच्च ॥

शब्दार्थ-श्री--जी=जमुना। ओझल = ओट। धैया = धाय ॥

४--श्रीमान् राय बहादुर लाला बैजनाथ जी. बी.ए.एफ. ए.यू. जज अदालत खफ़ीफ़ा इलाहाबाद लिखते हैं। कि-- चौबे कहते हैं कि औरों की विद्या और चौबों की महाविद्या जिसका अर्थ यह है कि भांग पीना और लड्डू खाना और कुश्ती लड़ना और एक आदि बार किसी भूले भटके यात्रीका माल लूटना और उसको कभी कभी मार भी डालना ॥

देखो ! "धर्म-विचार" पृष्ठ ७६ पंक्ति ६ से १० तक ॥

५—श्रीमान् राय **ज्वाला प्रसाद** जी एम. ए. मथुरा प्रान्तके डिप्टी कलक्टर साहब ने श्रीमान् महात्मा **मुन्शीरामजी** मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी-हरिद्वार से कहा था । कि-जितना रुपया ये कुत्ते (यह नाम आपने चौबों को देने की कृपा की थी) यहां खा जाते हैं उतनेसे एक उत्तम श्रेणी का कालिज चल सक्ता है ॥ देखो ! सद्धर्म्म प्रचारक साप्ताहिकपत्र जालन्धर शहर भाग १९ संख्या ३७ पृष्ठ १५ कालम १ लाईन ६-९ तारीख़ २० दिसम्बर सन् १९०७ ई० ॥

६—हबड़े के आनरेरी मजिस्ट्रेट श्रीयुत **मोतीलालजी** हलवासिया लिखते हैं—मथुरा के चौबे लोग जो यहां के पण्डे हैं यात्रियों का नाम ग्रामादि पूछने में बहुत दिक करतेहैं नये आये हुए यात्रियों के पास सुबह से शाम तक इन लोगों का आने जाने वालों कासा मेला लगा रहता है । बड़े खेदकी बात है कि ये लोग उत्तम भोजन खाना और आलस्य में पड़े रहनेही में अपना जन्म सफल समझते हैं । इन की सामाजिक दशा मारवाड़ियों की तरह बड़ीही शोचनीय है १ । और सुधार की तरफ तनिक भी ख्याल नहीं है २ । इनमें **शिक्षा** की बहुत ज़रूरत है ३ ॥ देखो ! भारतमित्र कलकत्ता खण्ड ३१ संख्या ३६ पृष्ठ २ कालम ८ तारीख़ ५ सितम्बर सन् १९०८ ईस्वी ॥

❋ नोट्स ❋

१—**मारवाड़ियों** की सामाजिक दशा जो कुछ बिगड़ी हुई है सो सारे भूमण्डल को विदित है इस लिये यहां पर मेरी लेखनी उस लेखको लिखने की आवश्यकता नहीं समझती ॥

२—और ख्याल कभी होगा भी नहीं क्योंकि **जमुना-मैया** का पूरा भरोसा है ॥

३—मेरी समझमें शिक्षा की तब तक कोई आवश्यकता नहीं है जब तक कि सूर्य की पुत्री; **यमराज** की बहिन और **श्री कृष्ण** भगवान की

पटरानी सहायता देतीहै। स्मरण रखियेगा! उनका शारीरिबल उसी दिन घट जायगा जिस दिन कि उनको मानसिक शिक्षा दीजायगी। और उनका केवल यह एक शारीरिक बल ही ऐसा है जो कि परिश्रम करके उन को यजमान से धन दिलाता है। यदि शारीरिक बल न होगा तो कोई दाता (यजमान) धन भी न देगा । चौबे खुद कहते हैं–भैया! जिजमान कौन कौ? मजूरी करे ताकौ। और ऐसेही यजमानभी कहते हैं–चौबाजी! तुम हौ तो हमारे कुल के पुरोहित पर क्या करें? यह (दूसरा चौबे) दो दिन से हमारी सेवा–टहल, मिहनत–मजूरी, नौकरी–चाकरी कर रहा है सो हम तो अब इसी विचारे को देवेंगे। महाराज! अब आप जाओ, सिर न खाओ और किसी दूसरेको पकड़लाओ = घेरलाओ, आप कहा भी करते हैं–अरे! तीसरीखे तौ तीन सौ साठ रोज़ हमैं मिलौ करैंहैं। बस इसी लिये वहां विद्या की कोई आवश्यकता नहीं है। वहां तो फ़क्त मज़दूरी करने और हांजी २ कहने की ज़रूरत है। कहावत भी है–करेगा सेवा तौ पावेगामेवा॥

७— भारत मित्र कलकत्ता खण्ड २६ संख्या ४४ पेज २ कालम ३ तारीख़ १४-११-०३ में लिखा है कि केवल दान के पीछे जो चौबे महाराज अपना जीवन व्यर्थ खोरहे हैं वह यदि समझ जायं--तो इस से अच्छी बात और क्या है॥

८— आर्य्यावर्त्त रांची खण्ड १७ अंक ३१ पेज३ कालम ४—५ तारीख़ १४--११--०३ में लिखा है कौन--नहीं जानता कि मथुरा के चौबे खाने के ऊपर प्राणों से हाथ धो बैठते हैं और यात्रियों से दान तथा भिक्षा के लिये शहद की मक्खियों की तरह चिपट जाते हैं। मथुरा के चौबों ने विद्या को त्याग कर निराक्षर भट्टाचार्य्य रहते हुए केवल भीख पर ही अपना निर्वाह सोचा है क्याही उत्तम हो यदि चौबों को साथ साथ विद्याभ्यास कराते हुए उन को वास्तविक चौबे अर्थात् चतुर्वेदी बनाया जावै॥

नोट— जब चौबैपन मेंहीं हाज़ारों का धन मिलता है और लाखों जन शीश नवाते हैं तो फिर चतुर्वेदी बनने की क्या आवश्यकता है ? वाहरे हिन्दूभाइयो ! धन्य है तुमारी बुद्धि को जो अपने धन को व्यर्थ व्यय करते हो ॥

९ —— भारतमित्र-- कलकत्ता खण्ड २७ संख्या २८ पृष्ठ ३ कोठा२ तारीख़ ९-७-०४ ई० में लिखा मिलता है । कि—— मथुरा के चौबे लोग कहते हैं कि हम सब ब्रह्मणों से श्रेष्ठ ऊंचे दर्जे के चारों वेदों के ज्ञाता चतुर्वेदीय माथुर ब्राह्मण यमुना जी के पुत्र जगत गुरू चौबे कर के प्रसिद्ध हैं । हम से ही श्री कृष्ण चन्द्र ने भात मांगा है । श्री राम चन्द्र जी आदि से लेकर सब ने हमारा पूजन किया है । श्री वाराहदेव ने सब ब्राह्मणों में अधिक हमारा ही माहात्म्य और महिमा वर्णन की है । हम लोग खेती नहीं करते तथा गौ नहीं बेचते । हमारे कुल में यज्ञोपवीत विवाह आदि सम्पूर्ण संस्कार वेद और धर्मशास्त्र के अनुकूल होते हैं वेद के विरुद्ध हम लोग कोई रीति नहीं करते ॥

कृपा सिन्धु ! अब आप इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अद्भुत वेद रीतियों को सुनिये—— मथुरा के चौबे लोगों में परस्पर विवाह बदले से होते हैं । ,, बदला ,, आप की समझ में न आया होगा ध्यान दीजिये ! मैं आप को उदाहरण देता हूं । जैसे देवदत्त ने अपनी बहन यज्ञदत्त से विवाह दी और उस के बदले में उस की बहन के साथ अपना विवाह कर लिया । अथवा देवदत्त की स्त्री से एक कन्या मौजूद है पीछे उस स्त्री के मरजाने से देवदत्त ने अपना दूसरा विवाह यज्ञदत्त की बहन के साथ किया और उस के बदले में अपनी वह कन्या यज्ञदत्त के साथ विवाह दी । अथवा देवदत्त नें अपनी उस पुत्री का यज्ञदत्त के पुत्र से विवाह कर उस के बदले में अपना विवाह यज्ञदत्त की पुत्री के साथ कर लिया इत्यादि ॥

और सुनिये ! अगर बदला देने को न हो तो चार सौ रुपये का तमस्सुक * बेटा वाला बेटी वाले को लिख देना है । ० गत प्रथम जेठ में एक ऐसा विवाह हुआ जिस में वर की अवस्था २ वर्ष की थी जो कि अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता था और वधू की उमर ६० दिन से भी कम थी अर्थात् दाई से भी निवृति नहीं हुई थी । इन लोगों में छः छः महीने की लड़कियों की शादियां सैकड़ों होगई हैं । अब इस बाल विवाह ने यहां तक पांव पसारे हैं कि दो महीने से कम उमर की कन्या का विवाह बड़ी धूम के साथ होगया ॥

इन लोगों के यहां पन्द्रहवें दिन एक सभा होती है जिस का नाम माथुर सभा है । बड़े आश्चर्य की बात है कि सभा होने पर भी यह कुरीतियों को त्याग नहीं करते हैं और कहते हैं । कि— " हम सब ब्राह्मणों से श्रेष्ट हैं " ॥

* नोट्स *

* यह तमस्सुक स्पष्ट प्रगट करता है कि वधू मोल ली जाती है । या यों कहिये कि बेटी बेची जाती है ॥

१— हाय ! इन लोगों ने ही माथुर सभा का भी नाश कर डाला ॥

२—हाय ! इस बाल विवाह ने ही बहुतसी सुकुमारियों को बाल-विधवा बनाकर छोड़ दिया । जो कि अनाथों के नाम से पुकारी जाती हैं ॥

३—हाय ! इस बदले के बाल विवाह ही ने इन के २५सौ मनुष्यों कोगटक लिया । मतलब यह है कि चार हज़ार से घटते घटते अब केवल १५ सौ रहगये हैं ॥

४—हाय ! इस बेटी-बदले ने ही इन को बदलुआ नाम से मशहूर कर दिया ॥

५—हाय ! इस बेटी-बदले ने ही इन के सैंकड़ों पुरुषों को आयु पर्य्यन्त क्वारा रख मारा जिस से सैंकड़ों घर उजड़ गये ॥

६—यदि मुकाबले की दोनों बेटियां बराबर की न हुई अर्थात् छोटी

बड़ी हुई तो बड़ी बेटी वाला छोटी बेटी वाले से बेटी-बदलाई की घटी को पूरा करने के लिये २००-३०० का माल, जिस को दात अधूर्त कहते हैं, लेता है ॥

१०— करहेला निवासी रासधारी वैद्य सुन्दरलाल जी कृत "चौबे-लीला,, और वृन्दावन वासी श्रीमान् पण्डित राधाचरण जी गोसाईं रचित "भंग—तरंग,, नामक पुस्तकों को देखिये कि उन में आप के (चौबों के) चरित्रों के कैसे सच्चे चित्र खींचे गये हैं ॥

११—पहिले आप लोगों में कोई हवन = होम किये विना नहीं रहता था अर्थात् सब करते थे। हां! एक मनुष्य ने हवन करना छोड़ दिया था सो सब लोग उसको अहोमिया = होम न करने वाला कहा करते थे जिसकी औलाद के अबतक अहोमियां अर्थात् अझोमियां यानी अझुमियां पुकारे जाते हैं। परन्तु अब आप स्वयं आंख पसार देख लीजिये कि कितने मनुष्य हैं जो नित्य हवन करते हैं। पर अब तो आप के यहां **थियेटर** कम्पनी बनाने का शौक़ जादा है जिस में अच्छे अच्छे घरानों के भले भले सुन्दर २ लड़कों को स्वांग बनाने के लिये गाना, बजाना, ता थेईता करके नाचना, ताली फटकारना, ऊँचे स्वर से हा, हे, हो, करना सिखाया जाता है। परन्तु यह कर्म लौकिक और धर्म्म दोनों के विरुद्ध है। यथा—

> न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्।
> नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ १७२॥
> देखो! मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ६४ ॥

अर्थ = न नाचे, न गावे और न मृदंगादि बाजे बजावे; राग वा प्रेम में भरकर हाथ से हाथ (ताली) आदि को वा पृथ्वी को न बजावे; मुख वा दांतों से आं २ वा हूं २ आदि अव्यक्तशब्दों को गधे आदि के तुल्य बोलने वा रोने की नक़ल न करे ॥

सारांश यह है। कि—गृहस्थ नाचना गाना बजाना आदि बुरे व्यसनों

में फसजाने पर कर्त्तव्य धर्म कर्म को भूल जाता और रागी=कामी (ऐयाश) होके भृष्ट होजाता है ॥

देखिये ! इसी नाचने, गाने, बजाने की बदोलत दिल्ली के मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह ने, जो कि सन् १७१९ में तख़्तपर बैठा था, दिल्ली की बादशाहत को बिगाड़ दिया और ईरान के बादशाह नादिर शाह के सम्मुख, जिस ने कि सन् १७३९ ई० में दिल्ली का क़तल-आम कराया था, रोदिया और कुछ न करसका ॥

हाय ! इसी नाचने, गाने, बजाने ने लखनौ के बादशाह वाजिद अलीशाह को ऐसा ऐयाश बना दिया कि उस से मुल्क का बन्दोबस्त भी कुछ न होसका बस इसी बजह से वह (वाजिद अलीशाह) ७ फ़रवरी सन् १८५६ ई० को लखनौ की बादशाहत से अलग किया गया और कैद कर के कलकत्ते भेजा गया, बस इसी तारीख़ को अवध के मुल्क से मुसलमानी राज्य उठगया और इंगरेजी राज जमगया ॥

हाय ! यह ता थेई ता गाके और ताली बजाके नाचना लड़कों को सिखाना बड़ा बुरा काम है । प्यारे यमुना पुत्रो ! यदि भला चाहते हो तो अपने पुत्रों को नाचने, गाने, बजाने वालों के पास तक मतजाने दो । क्योंकि यह काम (ता थेई ता) तो केवल ढाढ़ी=मीरासी लोगों का है न कि चतुर्वेदी कहलाने वालों का । चतुर्वेदी कहलाने वालों का काम तो वेदाध्ययन करने का है । इसी लिये अब मैं फिर आप से कहता हूं । कि—

नहिं नाचो गाओ नहीं—बाजा नाहिं बजाउ ।
ताल ठोक रद कटकटी—करो न रञ्च विराउ ॥

१२—पहिली जनवरी सन् १९०१ ई० की मनुष्य-गणना= मर्दुम-शुमारी के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने भी आप के कर्मानुसार आप लोगों को ब्राह्मणों में श्रेष्ट=अव्वलदरजे का नहीं माना बल्कि ब्राह्मणों के तीसरे दरजे में रक्खा है ॥ देखो ! गवर्नमेन्ट पश्चिमोत्तर व अवध देश

की छपी हुई चिट्ठी नम्बर ५२४ तारीख़ २५ फरवरी सन् १९०१ ई० अज़ मुक़ाम इलाहाबाद बनाम चौबे रामदास जी मुनीम मथुरा ॥ सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ने मनुष्य गणना के पुस्तक में इसका कारण भी लिख दिया है ॥

सवैये = जैसी करनी जगत में, कीनी नर तन पाय ।
तैसी सोच विचार के, भोग करोगे भाय ॥

१३—मथुरा के पुराने कलेक्टर ग्राउस साहब मथुरा मेमोरिअल में लिखते हैं—

" 'The Chaubes' of Muttra, however, numbering in all some 6,000 persons, are a peculiar race and must not be passed over so summarily. They are still very celebrated as wrestlers and in the Mathura Mahatmya, their learning and other virtues also are extolled in the most extravagant terms; but either the writer was prejudiced, or time has had a sadly deteriorating effect. They are now ordinarily described by their own countrymen as a low and ignorant horde of rapacious mendicants. Like the Pragwalas at Allahabad, they are the recognized local cicerones; and they may always be seen with their portly forms lolling about near the most popular ghats and temples, ready to bear down upon the first pilgrim that approaches."

भावार्थ—मथुरा में लगभग छः हज़ार के चौबे रहते हैं । उन की चाल–ढाल, बोल–चाल, रहन–सहन, उठन–बैठन एक अनोखे प्रकार की है । उन की पहलवानी की बड़ी तारीफ़ है । उनकी विद्या और योग्यता की मथुरा माहात्म्य में बड़ी प्रशंसा की गई है । परन्तु उन के वर्त्तमान कर्मों से विदित होता है कि या तो लिखने वाले ही ने इक तरफ़ी बातें लिखी हैं या समय के प्रभाव से वह सब बातें नष्ट होगई हैं । आज कल उन के ही देश वासी उनको [चौबों को] नीच, अपढ़, लुटेरे कहते हैं । वे लोग बहुधा जात्रियों को शहर की इमारतें = मकान दिखाते हैं । वे लोग बहुधा घाटों और मन्दिरों में घूमते फिरते रहते हैं और ज्योंही कोई यात्री आता हुआ दीख पड़ता है उस पर एक दम से टूट पड़ते हैं ॥

देखो ! चतुर्वेदी पण्डित श्रीराधेलाल जी बि.ए. की बनाईहुई पुस्तक "चौबस कलेक्टेंटस" पृष्ठ २९कोठा १ पंक्ति ६ से २६ तक ॥

१४—क्रुक साहिब कहते हैं। कि—

Crooke reads them in a line when he speaks of their present-day motto as a life being well lived that is spent in gorging sweets. It is a relief, though on mature reflection this relief at once vanishes, to think that they, at least, through the art of wrestling present to the world specimens of that stalwart humanity of ancient *B*harata, and thus appear to be trying their level best to arrest the progress of the physical degeneracy that is speedily over taking the race. with Rhadamanthine impartiality do we say that had their aim been (to suppose the unthinkable) to put a period to such effeminacy it could not have been overpraised On the contrary, it accentuates our pain to learn that they do not improve their health for health's sake, but exploit it for the sake of a few round coins.

भावार्थ—आज कल चौबे उस मनुष्य के जीवन को अच्छा जानते हैं जिस को खाने के लिये मिठाई यानी लड्डू पेट भर कर मिलते हैं उक्त मत पर थोड़ा सा सन्तोष इस बात का है कि वे बहुधा पहलवान होते हैं और भारतवर्ष के पुराने बल का स्मरण कराते हैं किन्तु थोड़ा विचार विचारने से जाना जाता है कि यह आनन्द थोड़ी ही देर का है क्योंकि वो लोग अपना स्वास्थ्य स्वास्थ्य के कारण नहीं बनाते हैं परन्तु दंगलों वगैरह में कुछ रुपये पैदा करने के लिये बनाते हैं ॥

देखो ! चतुर्वेदी पण्डित श्री राधेलाल जी बि. ए. कृत " चोक्स क्लेमेंटस" नामक पुस्तक पेज २९ काल्म १–२ लाइन२६से११तक.

नोट—वास्तव में साहब का कहना सच है क्योंकि जब से बड़ोदा के महाराज खांडेराव मरगये तब से इन्हों ने मल्लयुद्ध करना भी कम करादिया ॥ दान–त्यागी ॥

१५—श्री मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित श्री राधेलालजी बि. ए. कुलीन अपने बनाये हुए पुस्तक "चोक्स क्लेमेएटस" के २८ व २९ वे पृष्टि पर मथुरा के चौबों के विषय में कहते हैं—

*B*ereft of those precious unities, they have now degenerated into a community of beggars, whose highest ideal on this side of Eternity is to glut themselves with sweetmeats. Shorn of decent dress, with eyes out stretched and reddened by Bhang (भंग), with ashes adorning their foreheads, pluming themselves on the ideaof an indulgence in humorous butobscene talk, these pot-bellied heroes are to be witnessed, wandering about in groups like so many beasts in herds, in all the leading cities of India at all times in the year, in the rainy season in particular. Our description of the degradation of the present Chaubes of Muttra is, by no means, over-drawn.

भावार्थ—एक समय वह था जब कि वह लोग भारतवर्ष की बहुत सी जातियों के पुरोहित और धर्म्म कर्म्मों में सम्मति देनेवाले यानी उपदेशक थे। उन जातिओं के आदमी उन [चौवों] की अनुमति के अनुसार सर्व कार्य्य करते थे। उनके कहने को कभी नहीं टालते थे और उनका बहुत सन्मान = आदर सत्कार करते थे। इन उक्त बातों के वे उस समय में सर्वथा योग्य थे। किन्तु आज कल उन सब सन्मानों के लिये अपने को योग्य न बनाकर उनका उद्योगसिर्फ इस बात का है कि किसी तरह से उनको अच्छे से अच्छा भोजन = लड्डुआ मिल जाय। बस केवल यही उनका धर्म्म कर्म्म है। वह लोग [मथुराके चौबे] अपनी उदरदरी भरने के लिये मसखरेपन की अश्लील बातों को बकते हुए पशुवृन्द की तरह भारत के प्रधान २ नगरों में सदैव घूमते दिखलाई देते हैं। उनके नेत्र भंग से लाल लाल रहते हैं। माथा

राख में लिपटा रहता है। और फटे फटाये कपड़े पहने हुए उत्तम भोजन [लड्डू] मिलने की आस में फूले नहीं समाते हैं। यह ऊपर लिखा हुआ हाल यथार्थ में बहुत ठीक है। हा ! उनकी जाति का यह विनाश बड़ा ही शोचनीय है उन का जातिपर उक्त लिखे हुए कटाक्षों को सोचते हुए हृदय विदीर्ण होता है। इस विनाश का मुख्य कारण उनके बाप दादाओं की भिक्षा वृत्ति ग्रहण करना ही हुआ है॥

नोट—यहां पर उक्त पुस्तक से इंगरेजी इबारत तो थोड़ीसी नक़ल की है पर भावार्थ बहुतसी इबारतका लिखा है॥ दामोदर प्र. श. दा. त्या.

१६— आगे चलकर देखिये ! श्रीमान् चौबे पन्नालाल जी चौधरी डङ्के की चोट विज्ञापन देते हैं·——

श्री जमुना जी सदा सहाय

नोटिस

बनाम जुमले माथुरान मथुरा निवासीन से यह प्रार्थना है। कि—मेरे ऊपर कृपा करके अब भी चेतो, अब भी चेतो। माथुर भाई ! इस बेहयाई की नींद में ग़ाफ़िल मत सोओ कि वह तुम्हारी इज्ज़त को बट्टा लगाती है और लगावैगी और जो तुम्हारी बिरादरी के थोड़े आदमीन ने आंधी = बेहयाई की ख़ाक उड़ा रक्खी है कि जिस से कुल बिरादरी को बदनामी उठानी पड़ती है और मुल्कों में अपकीर्ती है। उस के मैल के धोने की फ़िकर करो, कि कूआ = बेहयाई में न गिरो, जो कुछ बुराई होती है वह सिर्फ तुमारी समझ से तो उसी की है जो करे, मगर यह ख़याल तुम्हारा सिर्फ़ आपुस में है, बाहर वाले व आन बिरादरी नहीं समझैगी। संसार में यह बात मशहूर है कि " चौबे लोग औरतों की कमाई से गुज़र करतेहैं और ख़ूब भंग पीतेहैं और मिठाई उड़ाते हैं ,, मसल है—लज्जा परित्यज: त्रैलोक्य विजई भवेत्। क्यों कुल चौबों के नाम को डुबाते हो ? हया रूपी पानी से इस धूल = बदनामी को साफ़ करना कुछ मुशकिल नहीं है " हिम्मत

मरदां मदते ख़ुदा ,, । देखो ! सब जात फ़िज़ूल ख़र्ची और वदचलनी को दूर करने की कैसी कोशिस कर रहे हैं । तुम पाइयों के मंगा अशरफ़ियों के ख़रच रखने वाले हो । क्यों अपने महाराजों और गद्दी नशीनों को जिन को तुम अपना वली और वड़ा समझते हो । और प्रदेशी भाइयों को जो वड़े २ ओहदेदार हैं और साहूकारी करते हैं क्यों उनकी भी इज्ज़त को खराव करते हो । जल्दी एक सभा रसम रिवाज की कायम करो और पांच पंच अच्छे २ इस काम के निमित्त मुकर्रिर करो और उनके अनुसार प्रबन्ध होने दो । ईर्शा और घमंड को छोड़दो क्योंकि थोथा घमंड और आपुसकी विरोधता तुमको खराव कर रही है और हर रोज़ करैगी, मानो, मानो, वरने तुम्हारी नामवरी देशान्तरों में वहुत होरही है और होगी । अगर आप लोग समझो तो कहीं वैठने को भी जगह नहीं है ॥ फक़्त ॥

तारीख़—— २७ फरवरी सन् १८९१ई० स्याम काशी प्रेस—मथुरा	आपका शुभचिन्तक पन्नालाल चौधरी गली कूआवाली—मथुरा *

* यह छपेहुए नोटिस की असली नक़ल है ॥ दान—त्यागी ॥

१७—फिर देखो ! श्रीमान्चैत्रि **गणेशीलाल**जी चौधरी मुदर्रिस ग्राम **बलदेव** वर्त्तमान मथुरा ने लिखा है । कि—**हाय ! हा !! सोच !!!** आज यह दिन आगया कि चातुर्वेदियों को अपने **गोत्र, शाखा, प्रवर, सूत्र,** कुलदेव आदि भी अच्छी तरहसे याद नहीं हैं इसके सिवाय शुद्ध शुद्ध संकल्प और अपनी पूजा पद्धति भी नहीं आती और जो किसी किसी को आती भी है तो ऐसी अगड़म बगड़म याद है जिसको सुन-कर पढ़ा लिखा यजमान कहता है " बस महाराज बस देख लिये " इस से यही सिद्ध होता है कि निरे भैंस के ताऊ आस पास के व्रज़-वासी हर जोता कठ मिसराओं से कुछही बढ़कर हैं ॥ देखो ! — " चतुर्वेदी उन्नति का पहला चुटकला " नामक पुस्तक पृष्टि १—२ ॥

आगे चलकर आप फिर उसी पुस्तकमें लिखते हैं। कि—(येलोग) फूट और अहंकार के खजानेहैं। फागुन के महीना में०००मा. बहन दादी. चाची. बेटी आदि के सामने कुफ़्र बकतेहैं ॥

देखो ! पृष्ठ ३ पंक्ति ४-५-७-८ ॥

नोट—उक्त पण्डितजी भी नास्तिकता को लिये हुए एक अद्भुत बुद्धि के मनुष्यहैं। देखिये ! सारा संसार ईश्वरको अन्नदाता मानता है पर आप जमनाको जानतेहैं। सम्पूर्ण जगत् अपने पापोंको परमेश्वर से क्षमा कराताहै किन्तु पंडितजी एक पशु = गाय के कानमें "या देवी सा देवी धेनु रूपे सरस्वती मेरे जाने न जाने पाप दूर कर" कहकर पाप दूर हुए समझ लेतेहैं। वाहरे पंडितजी धन्य है आपको आपही सरीखे लोगोंने दुनियां में नास्तिकता फैलाई हुई है। खैर पंडितजी पुराणोंकी दल दल में फसजानेसे धर्म्म विषयमें कैसेही हों परन्तु जाति—सुधार में बड़े चतुरहैं ॥ दान—त्यागों ॥

१८—यमुना पुत्रों के नाम ॥

श्रीमान् पण्डित गणेशीलालजी का कहना बहुत ठीक है। वास्तव में यह लोग ऐसेही होतेहैं। सिवाय इसके इनके नामभी अजब ढंग के होते हैं॥

सुनिये—अक्खे. झक्खे. ईंटा. ईंटे. ईना. गीना. बीना. कब्बू. झब्बू. लब्बू. खबूतर. चूतर. किन्ना. मिन्ना. खुन्ना. चुन्ना. मुन्ना. गुन्ना. ढुन्ना. कब्बा. डिब्बा. ठुन्ठुन. मुन्मुन. चुन्चुन्. खुन्खुन्. झबदू. गबदू. गौना. खौना. बौना. टौना. खट्टा. मिट्ठा. चड्डा. भड्डा. खड्खड्डा. हुरदङ्गा. हुदन. हुदन. फिदन. बुटकन. लुड़कन. लटकन. छुटकन. उल्लू. पुल्लू. झड़े. अड़े. हौआ. मोर. मोरी. चुनचुनिया. सुनमुनिया. गलगल. बुलबुल. छीनी. छौना. फुन्दा. झबदा. गद्दा. भद्दा. फद्दा. गुल्लो. कुल्लो. फन्नाटे. रजो. टीटे. टेन्ची. धतूरे. टोली. भोली. मटोली. गल्ढ्. मल्ढ्. सठो. मठो. बन्दर. सिकन्दर. खिलन्दर. बूचा. बूची. , लुची. बच्ची. बीछू. छूछू. हक्की. रीछा. खोलटा. लोटा. घोटा. सोटा. कोरिया. भेड़िया. चखा. मखा. घोंघों. सोंसों.

टोंटों. भैंम. नैन. नवाव. नोती. तोती. फुत्तो. चूंचूं. फच्चू. वच्चू. मंच्चू. गैंदा. वेंदा. सिरिया. माथा. नोता. छूली. टांटे. मुटके. बुटके नकटे. मटके. फैली. सेंतमेत. दामखर्चे. चौंगा. रोरा. मटका. सटका. भटका. कूका. सूका. चूका. सौंखे. निग्गे. तिग्गे. फौना. नौना. कारे. गोरे. कुना. मुना. नथिया. जंगी. मंगी. दंगी. रंगी. मांची. नगरा. झगरू. तीन कौड़ी. छकौड़ी. दम्मी. छदम्मी. ढप्पा. लट्टा. ढरूआ. जद्दू. कुद्दू. बुद्दू. झक्कर. कुन्नी. खुन्नी. निन्नू. लंगुड़ा. टूंटूं. मूंमूं. सग्गा. गल्ली. चटरा. मटरा. तत्तन. पंजू. टोला. मोला. गोला. सोले. गोले, चेला, हेला, पुतरू, गुल्लू, कुल्लो, पच्चा, फत्ता, फांदा. रांजे, हीरोला. डोकरा, फक्कड़. फेरू, फेरी, खिल्लू. झांगी, कंचन, वलन, तन्नू. वन्नू. घर्रा. टुण्डा. कुनिया. खुटो. मांना. सटकी. कल्लूअट. पोथी. गला. हुल्ला. समीस. ढमीरा. लालोघालो. पाई. पुत्ती. कुत्ती. पूत्रो. वूत्रो. जीमा. मीमा. भेंचूआ. सानू. मानू. घंटा. झलाझल. टेरी. भेरी. मच्छर. झींगुर–सेंगरा–मौंगरा. इत्यादि । यदि इन से अधिक अद्भुत प्रकार के सुनना चाहोतो सन् १९०१ ई० की मनुष्य गणना को देख लीजिये॥

१९– यमुना पुत्रोंकी बोली ॥

यमुना पुत्रोंकी वोलचाल के शब्द भी अलगही होतेहैं । यथा– घी = घ्यौ । दही = दह्यौ । नहीं = नांयने । लड्डू = लडुआ । बूरा बूरौ । लुगाइ = लुगिया । भाई = भैया । माई = मैया । कढ़ी = झोर । कलश = करसा । लाठी = लठिया । खिचड़ी = खीचरी । थोड़ा = थोरो । बहुत = मुकतो । ताला = तारो । इधर = इत्तिन । उधर = उत्तिन । पेड़ा = पेरा । बड़ा = वड्डौ । छोटा = लहौरो । इत्यादि ॥

२०—यमुना पुत्रोंकी स्त्रियांभी वड़ी निडर होतीहैं वह कभी किसी की कुछ परवाह नहीं करतीं । जो मनमें आतीहै सोही करतीहैं । इसी लिये यमुना पुत्रोंको वड़े वड़े कड़े कड़े नियम वनाने पड़ते हैं पर वह कड़े नियमभी उनपर कुछ अपना प्रभाव नहीं जमा सक्ते । देखिये ।

प्रथम बाबा श्री १०८ शील चन्द्रजी महाराजने बनायेथे. पर किसीने न माने। द्वितीय सं० १९३२ में कुछ मनुष्योंने रचेथे पर उनसे भी कुछ फल न फला। फिर समय २ पर लोग बाग कुछ न कुछ उपाय करते ही रहे पर कुछ लाभ न हुआ। अन्त को सं० १९६० में कुआर सुदी ९ को सबने मिलकर एक बड़ीभारी पंचायत की जिसमें स्त्रियोंको दबाने के लिये कठिनसे कठिन = कठोरतम नीचे लिखे हुए ४ नियम ऐसे बनाये कि जिनमें स्वधर्म को भी तिलाञ्जली देदी ॥

१—भरतमिलाप, गौचारन और कंस लीला में अपनी जात में से छोटी बड़ी अवस्था की कोई स्त्री न जावे। और जिन महाशयोंके मकान मेलोंकी जगह तथा रास्ते में हैं वेभी अपनी तथा दूसरोंकी स्त्रियों को न बैठने देवें ॥

२—सब मेला परिक्रमा दर्शन तमाशों में सम्पूर्ण अवस्थाकी स्त्रियां हर समय अपने घर के मर्दों के साथ जासक्ती हैं लेकिन भरतमिलाप, गौचारन और कंस लीला में मर्दोंकेभी साथ नहीं जासक्ती हैं ॥

३—जमनाजी के जन्मदिन को संध्या आरती से पहिले और रामनौमी को दिन के दो बजे तक सब अवस्था की स्त्रियां जा सक्ती हैं और कार्तिक में अक्षयनौमी को केवल मथुरा की परिक्रमा और भादों में करवटनी एकादशी को गोवर्द्धन सब अवस्था की स्त्रियां जा सक्ती हैं लेकिन् सभा मुनासिब न समझे तो ४० वर्ष से नीची उमर की नहीं जा सक्ती हैं ००००० और कार्तिक स्नान को प्रकाश होने पर सब स्त्रियां जा सकतीहैं और होलीमें ४० वर्षसे कम अवस्थाकी खेल के दरशनों को नहीं जासकती हैं ॥

४—मथुरा वृन्दावन गोवर्द्धन आदि तमाम ब्रज के मेले परिक्रमा में ४० वर्ष से कम अवस्था वाली नहीं जा सक्ती हैं ००००० रात्रि के समय किसी मेला आदि में नहीं जा सक्ती हैं और वृन्दावन के हिंडोला, ब्रह्मोत्सव, वैकुण्टोत्सव, वसन्तपंचमी आदि में नहीं जा सक्ती हैं ॥

देखिये ! तीर्थ यात्रा और ठाकुर दर्शन को न जाने देना यह हिन्दू धर्म के विरुद्ध है और कैसा बड़ा भारी पाप है पर चौबों ने इन पापों की परवाह न की और उक्त कड़े से कड़े नियम बना दिये. परन्तु स्त्री जाति ने इन नियमों पर कुछ भी खयाल न किया । और अपने कर्त्तव्यों से नेक न डिगीं और अब भी अपने पुराने दस्तूर के मुताबिक बिन अंकुशके हाथी या बिन नकेलके ऊँट या बिन बागके घोड़े या बिन नाथके बैल समान तीर्थ यात्रा करने और पाषाण मूर्तियों के दर्शन पर्शन को सदैव इधर उधर चक्कर लगातीं डोलतीं घूमतीं फिरतीं रहतीं हैं। ये स्यापे की भी बड़ी शौकीन हैं रात को ३-४ बजे सेही उठकर चलीं जाती हैं। यमुना पुत्रों ने इस सवेरे के स्यापे के तोड़ने काभी बहुत कुछ यत्न किया पर इन स्त्रियों के सामने उनकी कुछ न चली अन्त को हार मान चुप हो बैठे ॥

नोट—जब पांच हजार वर्ष पहिलेही इन चौबों की चौबिनों पर न चली तो भला अब क्या चलेगी । जब चौबिनें कृष्ण बलदेव को भोजन लेकर चलीं थीं तब चौबोंने रोका था । पर चौबिनों ने नहीं माना था और कहाथा—

दोहा—नहीं रहैं रोकी पिया, सुनों हमारी बात ।
वन में भूखे कृष्ण जी, और बलदाऊ भ्रात ॥
चौ०—मति रोको हमको पियप्यारे। देखनदेओ नन्द दुलारे ॥
वन में भूखे राम कन्हाई। हमतोतिन्हेंजिमावनजाई॥
तीन लोक दशचार पिताई। करिहितहमसोंछाकमँगाई॥
रागनी-मत रोकौ हमैं पिया जानेदो मति रोकौ हमैं पिया जानेदो॥
तीनलोक दशचार भुवनपति अरे तिन्हकौं हमैं जिमानेदो ॥
मन तो गयौ पास मोहनके तनकौं क्यों दुख पानेदो ॥
राग रसिया—मति रोको बलम हमारी डगरी ॥ तीन लोक दश चार भुवन पति खायंगे छाक आज हमरी ॥ मति० ॥ संग सहेली

सब तिन ढिंग आईं श्याम दरश जिन भई पगरी ॥ मति० ॥
जो तुम जानो रोक रहैंगे गये प्राण कहा करो खलरी ॥मति०॥

जब चौबों ने जबरदस्ती रोकना चाहा तो वह छुड़ाकर भाग गईं—

दोहा—चलीं भाज सब द्विज त्रिया—लेकर थार अनेक ।
भोजन नाना भांति के—अधिक एक तें एक ॥
कछुक थार लिये आप कर—कछुक ग्वालन माथ ।
कछु सुधि बुधि तिनकौं नहीं—तन मन दीनों नाथ ॥

इत्यादि ॥ देखो ! चौबेलीला नामक पुस्तक पृष्टि १८—२१ ॥

वृद्ध माथुर—अरे सतारथी ! तूतो हमारी निन्दा करै है ॥

सत्यार्थीजी—नहीं महाराज ! मैं आपकी निन्दा नहीं करता, मैं तो आप की स्तुति करताहूं । देखिये ! " गुणेषु दोषारोपणमसूया " अर्थात् "दोषेषु गुणा रोपणमप्यसूया" और " गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः " । जो गुणों में दोष दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण दोषों में दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्या भाषणका नाम निन्दा और सत्य भाषण का नाम स्तुति है सो महाराज ! मैंतो निडर होकर सत्य २ कहरहाहूं ॥

क्योंकि—सत्ये नास्ति भयंकचित् ॥१७३॥

वृद्ध माथुर—अरे सोंसों ! जा कों तू अपनी बड़ाई में १ कवित तो सुनाय दे ॥

सोंसों—भौत अच्छौ गुरू ! अरे सतारथी ! सुन— ॥ कवित ॥

हीरा से न नग लाल से न रंगदार कंचन से न पीत पयोध से अमान हैं । रथ से न बाहन दाहन कृशानु हू से सूरज से न तेज अन्न दान से न दान हैं ॥ कामधेनु से न धेनु कल्प वृक्ष सें न वृक्ष वेद वानी सी न वानी सो प्रगट प्रमान है । माथुर समान कोऊ विप्र नाहिं जगत माहिं मथुरा समान कोऊ तीरथ न आन है ॥ १ ॥

टॉटॉ—अरे ! मेरो हू सुन लेर—

वेदन हूं गाने बखाने पुरानन हूं लोक सनमाने सुत सूरज-सुता के हैं । सांचे साफ राह के सलाह के दिवेया अच्छी चाह के करैया छाके प्रेमरंग पाके हैं ॥ खड्ग कवि जाने नेम धर्म कर्म श्रमदार चतुर उदार नित पास जाय ताके हैं । कायर कपूत क्रूर कृपन सों न राखें हेत जाहर जहांन जानें चौबे मथुरा के हैं।२।

वृद्धमाथुर—अरे मेंमें ! तेरो हू एकहै जाय ॥

मेंमें—पण्डित कबीस रंग रस के विलासी शुभ माथुर मुनिशि सीस मधुपुरी धाम के । करें दंड लिपतंड चढ़ावें रज चन्दन भूषण वसन वसुदेव देव काम के ॥ पंडित हैं देस २ द्वेप ना सभा के मध्य पय के पिवैया पूरे अमलैया भांग के । रूप के रिझैया नीके भोजन करैया संग चौदहसौ भैया ये सनेही वलराम के ॥ ३ ॥

सत्यार्थीजी—(सब यमुना पुत्रों की ओर देखकर) हाय ! इन्हीं मिथ्या प्रशंसित वाक्यों और पुराने परमानों, फरमानों, सनदों और सारटीफिकटों के सहारों ने आप को चतुर्वेदियों से चौबे बना दिया यदि आप लोग बाराह, राम, कृष्ण आदि की प्रशंसाके भरोसे= आसरे पर आलसी न बन बैठते और अपना करतव्य= " वेदाध्ययन " करते चले आते तौ इस अधोगति अर्थात् वर्तमान् दशा (कुदशा = दुर्दशा) को कदापि न पहुंचते या यों समझिये कि आप हिमालय पर्वत की उच्च शिखर से रपटकर खिसलते, फिसलते, लुड़कते, पुड़कते, ढुलकते हुए नीचे रसातल की खोह में न जागिरपड़ते । सत्य है—

कर्म्म प्रधान विश्व कर राखा ॥

सत्यार्थीजी—के उक्त वाक्यों को श्रवण कर विद्वान चौबे तो कुछ विचारने लगे और भंग–स्नेहियों ने कुवाच्य कहने प्रारम्भ किये

भंग—प्रेमियों के अपशब्दों को सुन कर सत्यार्थीजी ने कहा कि यह लोग (भंगड़) भंग की तरंग में अनंग और निहंग=अचिन्त हो

सन मानो बरजानी बानी बोला करते हैं और उन्मत्त हो मतंग को कच्छप सा समझा करते हैं। यह लोग (भंगड़ी) भंगके रंग में ऐसे रंग जाते हैं कि इन भंगविक्कड़ों को देखने और कहने की भी सुधि-बुधि नहीं रहती॥ इसीलिये देखिये—

स्वर्ण पदक प्राप्त सुप्रसिद्ध कविश्री मान्यवर बाबू गोविन्द दास जी उपनाम "दास" सैकण्ड मास्टर महाराजा हाईस्कूल छत्रपुर तथा मंत्री काव्यलता सभा छत्रपुर—बुन्देल खण्ड कहते हैं—

॥ भंग निषेध ॥

भँग कौन कहै हित साधक है ? ।
जब नाम अमंगल वाचक है ॥
बल बुद्धि बिलात सबै इह से ।
कुल कीर्ति नसात सबै इह से ॥
जिस ने इस का सनमान किया ।
उस ने निज गौरव पान किया ॥ १ ॥

बस ! भंग पियो रस भंग हुआ ।
महान महत्व का तंग हुआ ॥
राघव-गिरि- श्रृङ्ग उतंग हुआ ।
घर बाहर नंगम नंग हुआ ॥
जिसने भँग का सनमान किया ।
उस ने निज गौरव पान किया ॥ २ ॥

कामाग्नि घनी बरिबंड करै ।
अरु पातुर-प्रीति प्रचंड करै ॥
दर-दर्पण संयम खंड करै ।
मन की गति अंड की बंड करै ॥
भँग का जिस ने सनमान किया ।
उस ने निज गौरव पान किया ॥ ३ ॥

नित भंगड़ आंख चढ़ी ही रहै ।
अरु चाल सदा बिगड़ी ही रहैं ॥
कलहावलि पास खड़ी ही रहै ।
असि बाहर म्यान कढ़ी ही रहै ॥
भँग का जिसने सनमान किया ।
उसने निज गौरव पान किया ॥ ४ ॥

भँग-सेवक सभ्यता-शत्रु अहै ।
मधु-भाषण सों अति दूर रहै ॥
नहिं बात का उत्तर ठीक कहै ।
सबही को प्रवंचन देन चहै ॥
भँगका जिसने सनमान किया ।
उसने निज गौरव पान किया ॥ ५ ॥

भँग-भक्षक खव्वड़ होत बड़े ।
हलवाई के द्वार रहैं ही खड़े ॥
बिन कारण हू कहुं जायं लड़े ।
जहँ जाय अड़े तहँ जाय अड़े ॥
भँग का जिस ने सनमान किया ।
उस ने निज गौरव पान किया ॥ ६ ॥

नित भंगड़ भंग में चूर रहैं ।
घर निर्धनता भर पूर रहैं ॥
सुत नारि क्षुधातुर पूरि रहैं ।
सुख संपति कोसन दूर रहैं ॥
भँग का जिस ने सनमान किया ।
उस ने निज गौरव पान किया ॥ ७ ॥

नहीं भंगड़ बात अदालत में ।
स्वी होत है कौन हू हालत में ॥

यदि भंगड़ सांची हू बात कहै।
सब जानहि ताहि असत्य अहै॥
भँग का जिस ने सनमान किया।
उस ने निज गौरव पान किया॥ ८॥

नहिं भंगड़ आपही गारत हैं।
वरु औरन को हू बिगारत हैं॥
घने भांग के लाभ बखानत हैं।
सबै आपने पाश में आनत हैं॥
भँग का जिसने सनमान किया।
उस ने निज गौरव पान किया॥ ९॥

भँग द्रव्य औ काल को नष्ट करै।
शिर में घुसि कें मति भृष्ट करै॥
गुरु लोगन को अति रुष्ट करै।
निरबुद्धिता को परिपुष्ट करै॥
भँग का जिसने सनमान किया।
उस ने निज गौरव पान किया॥ १०॥

※ भंग—चरित्र ※

श्री मान् पंडित रामदीनजी अरजरिया सभासद काव्यलता सभा छत्रपूर—वुन्देलखण्ड कहते हैं—॥ नरेन्द्र—छन्द॥

गणपतिशारद शिवा शिवापति रमा रमापति ध्याऊं।
तिनकी कृपा पाय आनंद युत भंग चरित्र सुनाऊं॥
पण्डित दामोदर प्रसाद जी शर्म्मा दान त्यागू।
तिनहू ने यह आयुस दीन्हीं मोकों सह अनुरागू॥
दोहा—पिय प्यारी संवाद यह। सुनहु सुजन मन लाय।
जामें महिमा भंग की। कैसी अजब दिखाय॥

※ चौपाई ※

पीकर भंग एक मतवाला । निज घरकों डगरन्यौ ततकाला ॥
चूरनशा में घर तक आयौ । बहुत समय मग मांझ गंवायौ ॥
खिलीचांदनी निशि अधराता। आ पछीत हो बोल्यौ बाता ॥
अरी किवारे खोल गँवारी ! धूपन चुरती देह हमारी ॥
दोहा—तब घरकी घरनी जगी। सुनि पिय बचन पछीत ।
आज इन्हैं का हांगयौ । मन में भई सभीत ॥
पुनि धरि धीर कहै पियपाहीं । वह पछीत दरवाजा नाहीं ॥
तुम्हैं चांदनी रवि सम लागै । जातें आतप कौ दुख भागै ॥
कहौ भांगसी तुम का खाई ? । यह सुनि औरहु गयौ रिसाई ॥
अरी ! पछीतहु आज खोलतू । ज्यादा अब जिन कछू बोलतू ॥
दोहा—रहत सूर्य्य की धूप नित । आज चांद की धूप ।
देर करत तो जब सलक । दे साया कौं सूप ॥
तब पड़ौस इक हँसी छुगाई । सो सुन कछू गयौ शरमाई ॥
भीत टटोलत दर पर आयौ । खुलौ भाग तें फाटक पायौ ॥
गिरो पलँग पर बहु अतुरान्यौ। कियौ पांइते को सिरहानौ ॥
प्रात बैठि तिय लगी सिखावन । बिनती सुनहु मोर मन भावन!॥
दोहा—अब कबहूं जिन पीजियो । प्रीतम ! विजया भूल ।
यामें गुण कछु है नहीं । केवल अवगुण मूल ॥
भंग पियैं हरजा हैं जेते । तुम कों सकल गिनाऊं तेते ॥
इक तो दर तें बेदर होवै । दूजे संपति घर की खोवै ॥
तीजें होत तिजारत हरजा । चौथें चढ़त मूढ़ पै करज़ा ॥
पांचयें पंच न ढिंग बैठारैं । छटयेंछोटपन सबहिनिहारैं ॥
दोहा—सातयें सत्य न मानि है । कोउ तुम्हारी बात ।
आठयें आलस युत रहत । जो विजिया नित खात ॥
नवम नौकरी ग़फलत होवै । दशम दिमागी कूवत खोवै ॥

ग्यारहँ गुम्म अक़ल होजावै । बारहँ बदनामी शिर आवै ॥
तेरहँ तकिया पै उंघरावैं । चौदहँ चक्कर शिर में आवैं ॥
पंद्रहँ पीरौ तनु परि जाई । सोरहँ सोवौ अधिक सुहाई ॥

दोहा—सत्रहँ सुख परवश भयें । कछु पायौ किन पीय ! ।
अट्ठारहँ अब जिन बनौ । उल्लू विजया पीय ॥
उन्नीसयँ अन्दाज कैं । पिय ! सोचौ यह बात ।
बीसयें विश्व तमाम कों । ताके ऐब दिखात ॥
याते मस्तरहौ दिन राती । मत छानौ विजियाकी पाती ॥
करिकैनशानसामतजाना । रामदीन यह भांति बखाना ॥

दोहा—भंग छानि कर जो चहौ । करैं हरी को ध्यान ।
पाखंडी सब कहैंगे । तुम्हें भंगेड़ी जानि ॥

हे भाई ! विजिया मत छानौ । रामदीन का कहना मानौ ॥
मैं तो बात कहत हूं हित की । तुम्हैं चाहि लागै अनहितकी ॥
सुनि कैं कछू खफ़ा मत होना । मानौं बात चाहि मानौं ना ॥
जो मेरी दानिश में आया । सोई मैंने कहि समुझाया ॥

—०००००—

दोहा—रामदीन रामैं भजौ । जामें होय अनंद ।
पीना छोड़ौ भंग का । केवल अवगुण कंद ॥

ताके बदले पान चवाऔ । अधरन पै लाली दरसाऔ ॥
लौंग लायचीआदि पिलाऔ । मतलब यार ! भंग मत खाऔ ॥
अथवा नये कपड़े बनवाऔ । तिन को पहिन सभा में आऔ ॥
मन भावै सो अतर लगाऔ । मतलब यार ! भंग ना खाऔ ॥
अथवा कुछ गहना बनवाऔ । घरैं सुंदरी को पहिनाऔ ॥
या विधि भल मंसई दरसाऔ । मतलब यार ! भंग ना खाऔ ॥
चाहे पक्का गृह बनवाऔ । हवा हेत खिरकी रखवाऔ ॥
चिकै चांदनी कांच लगाऔ । मतलब यार ! भंग जिन खाऔ ॥

अथवा रोज़ पुरी बनवाओ । साधू विप्रन नैंवत जिमाओ ॥
तिनतेंबहुविधिआशिषपाओ। मतलब यार ! भंग ना खाओ ॥
चहौ सभा में द्रव्य लगाओ । नूतन कविता कछू बनाओ ॥
तातें जग में नाम कमाओ । मतलब यार ! भंग ना खाओ ॥
जो धन है तो धर्म कमाओ । निर्धन हो तो सत न गँवाओ ॥
यातें मेरी सुनते जाओ । भ्राता गणों ! भंग मत खाओ ॥

दोहा—कहना था सो कह दिया । रामदीन समुझाय ।
मानै ना मानै करे । जाकों जौन दिखाय ॥

भला आप ही तो यह सोचो । यह है काम भला कै पोचो ॥
यामें भूल जात सुधि तन की । ऐसी दशा भँगेड़ी पनकी ॥
प्राणी मात्र अकल का घर है । बुद्धिमान की अधिक कदर है ॥
छोड़ो भंग कौनसा डर है । क्या वह जब्रन हाथ पकर है ? ॥

दोहा—वह ताक़त उस में नहीं । जो तुम को गहि लेय ।
अथवा कहुँ इजलास में । जाकर नालिश देय ॥
याकै काहू सबल कों । ल्यावैं देग चढ़ाय !
कहौ कौन बल भंग में । जाभय तजी न जाय ॥

नोट—साथही इसके इसी पुस्तक के १६२ वें पन्ने से पढ़ना प्रारम्भ कर दीजिये । यदि भंग निषेध पर कुछ और अधिक देखना चाहते हो तो ॥ दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा—दान—त्यागी ॥

भंग निषेध पर उक्त वाक्यों को सुनकर गरुड़ पुराण की कथा कहने वाले एक भंग स्नेही चौबेजी, जोकि अपने को काव्य तीर्थ प्रगट करते हैं, कहने लगे—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व धर्म बहिष्कृते ।
जना दुर्जन कर्माणः सर्वे धर्म विवर्जिताः॥१७४॥

अरे ! कैसो घोरंघोर कलिकाल आयगयौ है कि लोगननें अपनो सनातन धरम छोड़कै भांग की बुराई करवो लैलीनों है पर ज नांइ जानें

कि जा भांग को भोग दाऊदयाल और शिवने लगायोहो। अरे! तबी-तो ज सिवबूटी कहावे है॥

सत्यार्थीजी–अजी काव्य तीर्थ जी! आप धर्म धर्म तो वहुत चिल्लाते हौ पर यह तो कहौ कि किसी से धर्माधर्म पर शास्त्रार्थ भी करोगे?

काव्य तीर्थजी––अरे! शास्त्रार्थ का चीजहै? हमतो शास्त्रार्थ हू करवे कों तैयार हैं पर का करैं हमैं तो एक मरे के यहां गरुड़ पुराण बांचवेकों जानोहै जासों हम तो नांइ करसकैं पर गुरूजी जरूर करेंगे॥

गुरूजी––स्वर्गे बृहस्पतिः पाताले शेषनागः।
भूलोके अहं बृहन्महा महोदरः॥ १७५॥

अरे! स्वर्ग में बृहस्पति (देवताओं के गुरू) हैं, पाताल में शेष-नाग हज़ार मुँह वाले प्रसिद्ध हैं, पृथ्वी में मैंहूं और चौथा विद्वान है ही कौन? जासों मैं अड़ौं (शास्त्रार्थ करौं)॥

सत्यार्थीजी= (सब चौबोंकी तरफ ख़ासकर गुरूजीकी ओर देखकर)

निश्चय तुमने ही निज हाथों अपनी दशा बिगारी।
सर्बस चौपट करके अपना पूरे बने भिखारी॥
रहे तुम जो ज्ञानी हुए सो भिखारी।
फिरो दास हो खारहे मार गारी॥
न तौ भी तुम्हैं हाय कुछ लाज आती।
नहीं शोक से हाय फटती भी छाती॥
जो थे मणम्य पहिले तुम कीर्त्ति मान।
विज्ञान और बल विक्रम के निधान॥
सम्पति शक्ति निज खोकर आज सारी।
हा हा! हुए तुम वही सहसा भिखारी॥
कहारहे द्विज वंशकाह अब भयेपिआरे।
करम फेरसों हाय सब सुधि बुधि हारे॥
वेद छूटि व्रत छूटि छूटिगे कर्म्म तिहारे।

घरघर मांगत भीख गुलामी करत सुधारे ॥
वह गौरव वह तेज कहां वह मान बड़ाई ।
मिटत मिटत मिटगई भावकी सुन्दरताई ॥
जिन देखत छन माहिं पापसब दूर पराते ।
सो अब कारज कूर करत हिय शरम न लाते ॥
जिन भृकुटी कों देखि रहे नृप कांपत थरथर ।
सो अब खाते लात फिरत चिट्ठी लै घरघर ॥
लात खातहू शक्ति रही नहिं बोलन केरी ।
कलपि कलपि मरि जात पाइ आपत्ति घनेरी ॥

* चौपाई *

तुमहिं कहत मूरख सब लोगू । अति अविवेकी अपढ़ अयोगू ॥
सुनत ऊंच कुल के तुम जाये । निगमागम जिनका यश गाये ॥
विद्या निधि यश गुण के सागर । तिनके सुत तुम जगत उजागर ॥
पढ़न लिखन की चरचा त्यागी । रहत रात दिन आलस पागी ॥
रहत सामने कर जुग जोरे । खड़े बेंत वत करत निहोरे ॥
तिन सों मांगत लाज गंवाई । अपने कुल महँ दाग लगाई ॥

(नेपथ्य में) नौतो है जी नौतो मिरचा के यहां के बारहें को ३॥
सब य० पु०—(चौकन्ने होकर) अरे ! ज नौतो कौन के यहां कोहै ?
एकबुड्ढा—(एक लड़के से) क्योंरे ! कौन मरगयो है ?
लड़का—अरे गुरू ! हमैं तो खबर नांय ॥
बुड्ढा (गुस्सा होकर) क्योंरे सुसरी रांड़ के ! तोय खबर नांइने ? सब दिन तो सारो इत्तिन वित्तिन फिरौ करै है ॥
लड़के का भाई—(भौं चढ़ाकर) अरे तो गुरू ! या नै का काऊ बिरचोद की खीर खाई है ? सो तुम वेफाइदा इठे जाओ हो ॥
एकयुवा—(सब से) तौ भैया ! अब बगीची अखाड़ैं चलौ । और जल भांग पीऔ ॥

दूसरा—तौ हम हूं अपने घर जाय कें रसोई पानीकी नाई करि आमें ॥

तीसरा—कहौ काऊ के पास भांग आंगऊ है ? आछो ज.दा सी चहींये॥

लड़का—अरे गुरू ! भांग तो नांइने पर मिर्च मसालो तो मौत है ॥

छोटा छोरा—अरे उस्ताद ! एक पाउली तौ मोपै है। कल्ह अल-गोग वारी रांड़ने दीनी हीं ॥

बुड्ढा—कल्ह वाकें का हो ?

छोटा छोरा—का हो ? हो का ? जान पूंछ कें पूछौ हौ। कल्ह वा कें कैऊ जने आए और रुपैया भौत से देगए सो वाने खुसी में आइकें एक मासौ हमें हूं भांग पीवे को झुकाय दीनो ॥

बुड्ढा—थारे छोरा ! तू तो बड़ो चतुर निकरो। अरे ! तेंनें तो वाइ खूब जाइ मारो। वह रांड़ तो बड़ी लोभिन है। अरे ! हमें तो वा रांड़ ने कभू एक कौड़ी हू न दीनी ॥

एकयुवा—अरे गुरू ! विना बात काहे कों झूंट बोलौ हौ। वह रांड़ तो तुम्हें कभू न कभू कछू न कछू देऔही करै है जौ वह कछू तुम्हें न देती तो जा म्हौल्ला में कैसे रहन पाती ?

दू० यु०—अरे गुरू ! ज तो मैं हूं जानौ हौं कि वह तुम्हें केउ पोत झुकाय चुकी है और तुम हूं कैऊ पोत वाकें जाचुके हौ ॥

बुड्ढा—अरे तौ भैया ! हम ने वाइ पैचानी नांइ हीं ॥

ती० यु०—अरे गुरू तुम काहे कों पैचानोंगे ? तुमारो तोवही हाल है कि जौ काऊ ने एक पाई देदीनी तौ तुमने वाकों लडुआ निधान कहिदीनो और जौ काऊ ने कछू न दीनों तौ तुम ने गुरू ! वाकों षना निधान बताय दीनौं। अरे गुरू तुम तो निरे खात्रामीतही हौ ॥

बुड्ढा—अरे ! तुम अवी जानो नाइनों। अरे ज तौ हमारो काम ही है। ऐसी न कहैं और न करैं तो हमें देई कौन ?

चौ० यु०—अरे छोरा ! तौ तू अब जल्दी जा और भांग झट-पट लैआ और चटपट भिगोयदै। जबतक व रांड़ भींगैगी तवतक हम सब जनें आमें हैं ॥

पां॰ यु॰--कहो आठ आठ होंयगे या मुखामिल ?

छटवां यु॰--यहां का पूंछै ? वगीची चलैगो तब आप मालूम पर जाइगी ।।

वृद्धमाथुर--(भाई साहब से) लेउ साब ! अब हम जायं हैं जा नौते की खबर लेंइगे देखें कौन मरो है ?

भाई साहिब--महाराज ! थोड़ी देर तो और ठहरिये ।।

सब य॰पु॰----नांइ साब नांइ अब नांइ ठैरेंगे अब तो वगीची अखाड़े जांयगे जल भांग पीमेंगे । (वृद्धमाथुर से) अरे बाबा ! अब तो चलौ भौत देर हैगई ।।

वृद्ध माथुर--चलौ अबी चलें । (भाई साहब से) साब ! अब तो जांयं हैं फिर आमेंगे । (सत्यार्थी जी से) साब ! तुमारो कहियो भौत ठीक है । सांचेऊं हम भौत नीचे उतर आए हैं । देखो ! अब हम हूं अपने यहां पंचाअत करेंगे !!

भाई साहिब----बहुत अच्छा महाराज ! कहिये कुलीनों को बुलाओगे या नहीं ?

य॰पु॰----अजी ! ज कुलीन बड़े मतलबी होओ करैं हैं । देखो ! देनी दक्षिणा लैबे की पोत तौ कैसे गरीब बनजाओ करैं हैं । हमारी कैसी खुसामद करौ करैं हैं । और कहौ करैं हैं । कि----गुरू ! हम और तुम तौ एक ही हैं । परन्तु जब बेटी के व्याह की बात आवे तौ अलग है जाओ करैं हैं और आप कुलीन रोजगारी बन कैं हमें बदलुआ भिखारी बताओ करैं हैं और जह कहिकैं पंचात में सोंहूं अलग है जाओ करैं हैं ।कि----तुमारी रीति जुदी और हमारी रीति जुदी । देखो ! गंगाबकस कुलीन के भतीजे बृजवासी की चीठी कों----

श्री चतुर्वेदी माथुर सभा मथुरा ।।

आप का जो पत्र आया सो हर्ष पूर्वक लिया जातिय रसम बन्दी जो आप के यहा तथा हम लौगौ मे जो हो रहा है वो कोई मिलती

नही है क्यौकि कुलीनौ की जो सभा हो रहे उस मे आप का कोई जिकर नही है कि आप अपनी रसम तबदील करौ इसलिये आप से प्राथना है कि आपनी सभा की वृद्धि करें और हम कुलीन लौगो को क्षमा करे।

आप लौगो का सेवक वृजवासी लाल।

नोट = १—यह पत्र उस सभा में भेजागया था जो मिती कार्त्तिक बदी ५ सम्वत् १९९० को जंगी मिश्रजी के स्थान में हुई थी ॥

२—उक्त पत्र में अशुद्धियों का विचार न करना। ब्रजवासी लाल जी के निज हाथ से लिखे हुए पत्र की यह असली कौपी है। वह ऐसाही अशुद्ध लिखा करते थे क्योंकि भंगभवानी हर समय उन के सिर सवार रहती थी और उसी ने उनकी लूली लंगड़ी कानी कुतरी विद्या को उनके पास से मार भगादिया था ॥ दान—त्यागी ॥

भाईसाहिब—महाराज ! आप ब्रजवासी की क्या कहते हो ? हमने तो उसके पिता गूजरमलजी और चचा गंगाबक्सजी को भी रात दिन आप लोगों की ख़ुशामद करते देखाहै। मुझे तो मथुरा में ऐसा कोई कुलीन दिखलाई नहीं देता जो आप का कहना न मानता हो बल्कि वह सब बिचारे हाथ बांधे हुए आप लोगों की ख़ुशामद करते रहते हैं क्योंकि वह लोग (जिनको आप कभी २ कुलहीन या कु—लीन कहा करते हो) निसि—दिन बिन कुछ परिश्रम किये आप लोगों से भीखकी दैनी और दक्षिणा पाते खाते रहते हैं। कहा भीहै—

१ मुंह से खाना। आंख से लजाना ॥

२ जिस से कुछ पाना। उसी के गुन गाना ॥

और आप (यमुना पुत्रों) की उदारता को धन्य है कि आप लोग भी बिना कुछ काम कराये कुलीनों को घर बैठे हुए अपनी मांगी हुई भिक्षा में से भिक्षा देते रहते हो। सच है—

भीख में से भीख दे। तीन लोक जीतले ॥

सत्यार्थी जी—भाई साहिब ! मथुरा में भी ऐसे कुलीन हैं जिन्हों

ने कदी भिक्षा नहीं ली । जैसे श्री मान् त्रिवेदी लक्ष्मी नारायणजी ॥

काव्य तीर्थ जी—अजी ! का कुलीन और का चौबे सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं ॥

सत्यार्थी जी—नहीं महाराज ! कुलीन और यमुना पुत्र एक नहीं हैं ये दोनों अलग २ हैं । इनदोनों में रात--दिन या जमीन--आस्मानका फर्क है । इन की रहन—सहन, बोल—चाल, उठन—बैठन, खान—पान, भाषा—भेष, चाल—चलन, रीति—नीति, धर्म्म—कर्म्म आदि सब बातें अलग २ होती हैं ॥

कुछ कुलीन—सत्यार्थीजी का कहना ठीक है । यमुना पुत्र हमारी बराबरी नहीं करसक्ते क्योंकि वह रातदिन भीख मांगतेहैं ॥

कुछ य०पुत्र—काव्यतीर्थ का कहना गलत है । हम कुलहीनों से श्रेष्ट हैं क्योंकि हम ब्राह्मण का कर्त्तव्य भिक्षा मांगते हैं और कुलहीन वैश्यका कर्म व्यापार करतेहैं । फिर भला एक कैसें ?

सम्पादकीय नोट—दोनों थोकों में दोनों प्रकार के मनुष्य पाये जातेहैं । कुलीनों में ऐसे बहुत से मनुष्यहैं जो झोली ले भीख मांगते और बचन दे बेटी बदला करते हैं । यमुना पुत्रों में ऐसे पुरुष हैं जो तलवार ले जमीदारी रखते और झगा पगा पहन दूकान करते हैं । इन दोनों थोकों में से मैंतो उस को अच्छा समझताहूं जो कुलीन = श्रेष्ट कर्म करता है नकि उसको जो कुलीन कहलाने वाले कुलमें पैदा होता है । देखिये ! एक महात्माने कहा है । कि—

न जारजातस्य ललाट शृंगं कुल प्रसूतेर्नच चन्द्रभालः ।
यदा यदा मुञ्चति वाक्य वाणं तदा तदा जाति कुल प्रमाणम् १७६

अर्थ = जो कुलीन कहलाते हैं उनके मस्तक पर चन्द्रमा नहींहोता और जो कुलीन नहीं कहलाते उनके मस्तक पर सींग नहीं होता जैसा जैसा मनुष्योंका बचन और कर्म हुआ करता है वैसा २ जाति और कुल का भेद गिनाजाता है ॥ दान—त्यागी ॥

वृद्ध माथुर—(सब यमुना पुत्रों से) चलौ भैया चलौ ! सतार्थी कहैतो सांचीहै । पर हमारे यहां कोऊ मानैतो नांइनै । जबी तो ज जात रांड़ डूबी जाय है ॥

सत्यार्थी जी—महाराज ! यदि आप अपनी जाति को सुधारना चाहते होतो श्रीमान्य वर चतुर्वेदी पंडित श्री रामप्रसाद जी महाराज (प्रसिद्ध नाम क्या खूब) को अपना प्रधान बनाइये, उनके उपदेश कराइये और उनके उपदेशों पर कार्य्य कीजिये और फिर देखिये आप की जाति का सुधार कैसी शीघ्रता से होताहै ॥

वृद्ध माथुर—अरे भैया ! अब हमारी नांय चलै । अबतो करौरी और आंतरी उचाड़ के हुक्का पीवन वारे और बैल लादन हारे यहां आयके पंडित बन बैठे हैं और उलटो हमसों वादानुवाद करो करेहैं। सचहै—

गुलतुरो सों जायकै वाद करै जु करील ।
हम तुम सूखे एकसे पूछ देखियै भील ॥ १ ॥
महुआ नितउठ दाखसों करत मसलहत आय ।
हम तुम सूखे एक से दूजतहैं रसराय ॥ २ ॥
कौआ कहत मरालसों कौन जातिको गोत ।
तोसौं वदरूपी महा कोउ न जग में होत ॥ ३ ॥
बगुला झपटत बाजपै बाजरहे सिरनाय ॥ ४ ॥
बस यह कहते सुनते सब लोग चले गये ॥

नोट—प्रिय पाठको ! ऊपर की गलतियों का ख्याल न करना क्योंकि वह लोग ऐसीही बोला चाला करते हैं ॥ दान- त्यागी ॥

अष्टादश-परिच्छेद

॥ तीर्थों में एक अज्ञात महान् पाप ॥

तीर्थों में जैसे अन्य अनेक प्रकार के पाप होते हैं वैसेही निम्न लिखित एक और महान् पाप भी होता है जिसको कि यात्री लोग नहीं जानते । देखिये ! श्री मान् वर पंडित श्री श्रोत्रिय शंकर लाल जी म-

हाराज रईस बिजनौर सम्पादक अबला हितकारक मासिक पत्र लिखतेहैं--

हमारे देश के स्त्री पुरुष अविद्या के कारण ऐसे लकीर के फ़क़ीर और शीघ्र विश्वास करने वाले होगये हैं कि जहां कोई बात आश्चर्य्य जनक देखी झट उसीको ईश्वरी माया समझकर पूजने लगजाते हैं उस के कारण या परिणाम पर कुछ भी ध्यान नहीं देते आज हम केवल यहां एकही बातका ज़िकर करते हैं कृपया इसको ध्यानके साथ पढ़कर विचारियेगा। बहुत करके आपने तीर्थों पर मेले के समय देखा होगा कि कुछ लोग गेरुआ कपड़े पहिने हुए और एक ऐसे गऊ या बैल को, जिसके शरीर में असल स्थान से प्रथक कहीं आधी टांग, कहीं जीभ, कहीं मांस का पिण्डा इत्यादि लगा हुआ होता है, लिये हुए घूमते रहते हैं और उस गौको पवित्र समझ कर हिन्दू लोग रुपये पैसे चढ़ाते हैं। पर वे अपने मनमें यह कभी नहीं सोचते कि यह क्या बात है और आया यह ऐसेही पैदा हुएहैं या क्या? लीजिये! अब हम सुनाते हैं। एक साथ या दोचार दिनके आगे पीछे पैदा हुए गऊ के दो बछड़ों मेंसे एक का जो हिस्सा दूसरे के लगाना चाहते हैं उस को काटकर दूसरे के जिस जगह लगाना होता है वहां की खाल काट कर उसको सीं देते हैं इससे वह बछड़ातो जिसका मांस काटा जाता है मरजाता है और वह जिस के लगाया जाताहै कुछ दिन कष्ट भोग कर अच्छा होजाताहै और कभी २ वह भी मरजाता है। यह कार्य कसाई और खटीक लोग करतेहैं और जो जितना इस कार्यमें चतुर होता है वह उतनीही नाज़ुक जगह और ज़ियादा हिस्सा मांस का लगा देता है। यह काम ऐसेही किया जाताहै जैसे एक पेड़ की कलम दूसरे पेड़ पर चढ़ाई जाती है। अब आप विचारिये कि कैसे अनर्थ और कष्ट के साथ इन गौओं के यह अधिक शरीर लगाया जाता है। हमारे हिन्दू भाई ऐसी अधिक अंग वाली गौओं पर अधिक पैसे चढ़ाकर उन कसाइयों का उत्साह बढ़ातेहैं जो धन पैदा करने के लिये ऐसी गौऐं बन वाते हैं॥

यदि यात्री लोग ऐसी गौओं पर पैसे चढ़ाकर उन पापात्माओं की सहायता न करें तो वह दुष्टात्मा भी ऐसा महानपाप कभी न करें अर्थात् गौ हिन्सा कदी न करें। ऐसे आदमी, जो एक बछड़े का मांस काट कर दूसरे के लगाते हैं, मथुरा ज़िले में बहुत थे परन्तु सजा होने से अब बहुत कम रह गये हैं ॥

देखो ! अबलाहितकारक मासिक पत्र वर्ष ६ अंक२ पृष्ट ८-९-१०

नोट-इसी लिये मैं कहता हूं कि जो मनुष्य तीर्थों में जाते हैं उन को बड़े बड़े जाने अन जाने पाप करने पड़ते हैं ॥ दान-त्यागी ॥

॥ तीर्थों पर कुलटाओं के कर्त्तव्य ॥

श्रीमान् बाबू शिवनारायण जी टण्डन कहते हैं—बहुधा तीर्थों में कुलटायें ऐसे कुकर्म करती हैं कि जिन को देखकर गणिकायें भी लज्जित होजाती हैं —

* दोहा *

नहिं वर्णन कछु कर सकूं, तीरथ का व्यापार।
गणिका तिनका देत मुख, लखि तिन का आचार ॥

॥ चौपाई ॥

कहा कहूं कुलटन की वाता । मन सकुचत हिय कांपतगाता॥
प्रात काल उठ मज्जन धावें। राहबाट में बहु इठलावें ॥
सरिता तट पर केल मचावें। करत किलोल नीर में जावें ॥
तैरत तहां मीन की भांती। लहलहात मन कामिन छाती ॥
तट ठाढ़ी हुइ नैंन लड़ावें। हंसत मनहुं मुक्ता बरसावें ॥
सेना वाती कर घर आवें। कर संकेत भौंह मटकावें ॥
खेंचि खेंचि धनु भृकुटी तानें। मारन चहत मनहुं काहु जानें ॥
भर भर लोचन माराहिं तीरा। परें धरन घायल बहु वीरा ॥
कुटनी सास बहू हो जावें। माता बेटी आन मिलावें ॥
दरशन लाग बहुरि वे आवें। सेनन मांहिं मीत समझावें ॥
मठ मंदर में जब पग धारें। काहुइ तारें काहुइ मारें ॥

दरसन मिस हरि ध्यान लगावें । जब दरसन निज जारके पावें ॥
नैना सैना करि चलि आवें । बहु कटाक्ष कर मन हुलसावें ॥
हाट वाट मग अवसर पावें । पुंगी पुंगा खेल मचावें ॥
मन में तनक न वे सकुचावें । हाथ बढ़ाय जार हिय लावें ॥

दोहा—पीहर मिस ससुरार में । पीहर में नंसार ।
निस निवास ग्रह जारके । तड़फत हैं भरतार ॥
भोग विलास कर्मन लिख्यौ । जारन के करतार ।
कंत अंत लों सिर धुनें । विहरत जार गंवार ॥
वर्णाश्रम नासे सबै । नारिन नें छिन मांहिं ।
तनक मोद के कारनें । भक्षा भक्ष्य जे खांहिं ॥
वृद्ध युवा और लरकिनी । सब की एकहि रीति ।
सास बहू और माता पुत्री । कलि कीनी दुर्नीति ॥
नारि भई स्वतंत्र अब । छोड़ छोड़ निज धर्म ।
इधर उधर करती फिरें । पातुरिया के कर्म ॥

* कवित्त *

हूजिये सहाय श्री गोपाल नाथ बेग अब कठिन करालक-
लि काल चढ़ि आयो हैं । नारिन ने सब धर्म छोड़े छोड़े सब
कर्म्म मन कुकर्मनमें लगायो है ॥ कुलकी सब रीति छोड़ी छोड़ी
नीति जाति की प्रतीत कीनी जार प्रीत रीत को लजायो है ;
जायं छोड़ घरकों करें बात वीथी (गली) मांहिं हाट वाट सब
ही घर आंगन कर पायो है ॥ १ ॥
निज सदनमें न बोलें बाप भाईसों सीधी कभू भवन में न कंत
मृदु मुसकान सों रिझायो हैं । तनकों इठलावें मटकावें भौंह
वारवार हेर हेर फेर फेर जुर जुर यार बतियायो है ॥ जायं दूकानन
पै बतियावैं दूकानदार सौदाके बहाने अड्डा अपनोही ज-
मायो है। आप जायं जार घर बुलावें जार निज घर हुइ के
निडर कलंक देखे कहे ताहीकों लगायो है ॥ २ ॥

गुरुजन की लाज छोड़ी सलिन समाज छोड़ी छोड़ी कंत कान कान कीनी हूं तो घूंघट नाम को दिखायो है । देकै पीठ स्वामी की दीठ कीनी कामी की घूंघट की ओट चोट प्रेम रस ख़ूबही बरसायौ है ॥ निकसतही देहरी घूंघट कपूर भयो देखतही मर्द चञ्चल अञ्चल उठायो है । चाल चलें ठुमुक ठुमुक ठिठिक ठिठिक बातें करें ठीठी मुंह फाड़े मीठी सीठी शब्द जब जार ने सुनायो है ॥ ३ ॥

बोले बिन बोले बिन पहचान सबही सों करके पहचान रिश्तो नयोही लगायो है । सोनी की दूकान जाय मनमें न लजाय हाथ खोल निज जंघा रंगा गहनो चढ़वायो है ॥ सोनीं सों कहै भैया तू लैलै रुपैया भैया मेरी ने मोहि सोंनों गढ़वायो है। देके रुपैया लेवे सोनी की बलैया सोनी भये मोनी ताहि जोवनरत्न भेट में चढ़ायो है ॥ ४ ॥

हलवाई पंसारी परचूनी और बजाज़ दर्ज़ी सो दलाल घरको मुकदम बनायो है । जांहि मनहारिन कें चूरिन के पैरन हेत लायके मनिहार चूरो अनूपम दिखायो है ॥ गहिके मृदु मंजुल पान बैठे ढिगएन आन चूरी चढ़ावत जूरी नैनन मिलायो है । धन धन मनिहारजी कहैं कहा बाहजी सुन्दर मनोहर रसीली बातन को सौदा तुरतही पटायो है ॥ ५ ॥

कहैं कहा साहूकार वे तो हैं महोपकार छोड़ २ सब को चेला गुसाइन को बनायो है । वे तो हैं गुरु घंटाल झुकावत हैं ख़ूबही माल भोगके बहानें तरातर पेग चढ़वायो है ॥ उठावें कबू सारी कबू सेला और दुपट्टा कबू गावें बजावें नाचें मन ख़ूबही रिझायो है । किलकें सब नारी कहैं हम हैं बलिहारी मानों साक्षात् श्रीकृष्ण हीं रूप धर आयो है ॥ ६ ॥

देखो ! कलियुग व्यवहार दर्पण पृष्ठ ४–११ ॥

नोट-१ प्रिय पाठको ! इस उक्त कविता में छन्द विषय की बहुत सी अशुद्धियां हैं। सो आप उन पर ध्यान न दे केवल इस कविता का मतलब समझ लैना ॥ दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्यागी ॥

२–बहुधा तीर्थ स्थानों परही ऐसी कुल्टाएं बहुत होती हैं क्योंकि वहांपर उनको तालाब–नदियों में न्हाने और मन्दिरोंमें दर्शन करनेको जानेके लिये हिन्दू धर्म्मानुसार कोई मने नहीं कर सक्ता। बस यही कारण है कि वो इसी बहाने घरसे बाहर हो सारे दिन रात अपने मन माने चक्कर लगाया करती हैं और अपने रिश्तेदारों को अपनी करतूत की ख़बर तक नहीं होने देतीहैं ॥ दामोदर--प्रसाद–शर्म्मा–दान-त्यागी ॥

॥ पण्डों के स्वरूप और स्वभाव ॥

प्रिय पाठक वृन्द ! पंडों की आकृति और प्रकृति भी अलग अलग होती है। देखिये-कोई गोरे कोई कारे कोई लम्बे कोई ठिगने कोई मोटे कोई पतले कोई सबल कोई निबल कोई कुरूप कोई सुरूप कोई हँसमुख कोई क्रोधान्ध होते हैं। कोई तेल फुलेल लगाते, अच्छे कपड़े पहनते और फूल माला धारण करते हैं। कोई लंगोट बांधते, उस के ऊपर धोती का टुकड़ा लपेटते और रज पोतते हैं। कोई मधुर शब्द और कोई व्यंग वचन बोलते हैं। कोई शराब कोई गांजा कोई चरस कोई भंग पीते हैं। कोई अपने जनाने में नौकर तक को नहीं जाने देते कोई अपने जनानों को नौकरों के ही भरोसे छोड़ देते हैं और आप शराब में मस्त रहते हैं। कोई अपने जनानों (औरतों) को घर से बाहर नहीं निकलने देते। कोई अपने जनानों की कुछ परवाह ही नहीं करते उन के जनानों को अधिकार है कि वह चाहे जहां अपने मन मुताबिक फिरें। प्रिय पाठको ! मैं बहुत से तीर्थों में गया हूं जिन में से एक में [मैं उस का नाम ठाम भूल गया हूं कारण बहुत दिन हुए] मैं ने जो कुछ देखा सो आप को लिख सुनाता हूं। ध्यान दे सुनियेगा·—

उस तीर्थ के पण्डे अपनी औरतों को बाजार से लाकर मिस्सी,

सुरमा, बिन्दी, कंघी, कपड़े नहीं देते, न रंगरेज से रंगवादेते, न सुनार से जेवर बनवादेते, कोई २ तो आलस्य के मारे अनाज तक लाकर नहीं देते। उन के घर का सारा सौदा उन की औरतें [तीर्थपण्डाइनें) खुद करतीं हैं। या तो बाज़ार से जाकर ले आती हैं या घर पर फेरी वालों से लेलेती हैं इसी लिये बहुधा फेरीवाले सब तरह की चीजें लिये हुए उनके बीच में रात दिन फिरा करते हैं। वह पण्डाइनें सोंठ चटनी और चटपटी चाट चाटने की भी बड़ी शौक़ीन होती हैं। शर्म लिहाज़ बिलकुल नहीं करतीं, घूंघट मारना तो जानती ही नहीं। कूटना–पीसना, दलना, छरना छांटना, फटकना, बीनना, चूनना, छानना, पानी भरना, बर्तन मलना आदि कर्म समझती नहीं। जले-बले बर्तन जैसे कढ़ाई, तवा और बटला आदि नीच वर्ण की स्त्रियों से मलवा लेती हैं। स्वभाव से कोमल और हृदय से दयालु होती हैं। अभिलाषी की अभिलाषा को किसी न किसी प्रकार से पूर्ण करदेती हैं। मतलब कांक्षी के चित्त को दुखने नहीं देतीं। प्रार्थी की प्रार्थना को पूर्ण करने के लिये अपने घरवालों की कुछ परवाह नहीं करतीं। सूरति शकल से भी सुन्दर, सुन्दर क्या बहुत ही सुन्दर होती हैं। देखिये! उन की सुन्दरता में किसी ने क्या अच्छी कविता की है— ॥ कवित्त ॥

जिन के रंग रूप आगे रूप रति को रतीकु लागे कञ्चन निरख देह जिनकी मन में लजायो है। नागिनसी बेनी सटकीली भटकीली भृकुटी द्वौ चञ्चला चपल नेत्र त्रिभुवन लुभायो है॥ रम्भा सी जंघा अम्बाइव युगल कुच मुख चन्द्र की प्रभा स्वयं चन्द्र हू लजायो है। चञ्चलासी चञ्चल पिकबेनी मृगनैनी जिन ००००००० कर पायो है॥

* रोला–छन्द *

देखो देखो उस तीर्थ पुरी की सुन्दर नारी।
देवी सी दरसाहिं अतिही अति सुकुमारी॥
हेमलता सी देह लसै उरु फल से सोहैं।

भौंर भीर से केश पाश नीले मन मोहैं ॥
नैन मैन के ऐन, वैन वीना धुनि सों वर ।
भोले मुख की कान्ति लगै एकान्त मनोहर ॥
भाल भला त्यहि मांझ रुचिर रोरी का टीका ।
भाव भरी दोउ भौंह सोह मन्मथ धनु फीका ॥
नव पल्लव सी अरुण वर्ण दोउ हाथ हथोरी ।
चंपकली सी लसी अंगुली सुन्दर गोरी ॥
नख गुलाव पांखुरी कि धौं दश शशिको देखा ।
मुंदरी मंजुल मानौं चंद परिवेष कि रेखा ॥
कंठी युत वरकंठ ठग्यो पारावत काहीं ।
सुघर नाभि गंभीर रोम राजी जनु छाहीं ॥
भुजा दोऊ छवि भरी धुजा मन्मथ रथ जैसी ।
कदली की छवि दली भली जंघा जुग ऐसी ॥
चरणन वरणन करै कौन कवि के है साहस ।
धरैं जहां पर पांव वहां वरसत गुलाल अस ॥
नखअबली लखिहोत हिये यहि विधि अनुमाना ।
मुख सों हारयो रह्यो चन्द चरणन धरि ध्याना ॥
मंद हंसी मन हरनि बरनि नहिं जाय मनोहर ।
गज पति की सी गति अनूप चितवनि जैसे शर ॥
ऐसी देखौं रूप रूपवन्ती अलबेली ।
घर २ राजैं रूपवती कुल बधू नवेली ॥ इत्यादि

बस यही कारण है कि वह मदमाती पण्डाइनें अपनी सुन्दरता और स्वच्छता के मद में अपने आलसी, भिक्षुक, मट्टी पोते हुए किरकिरे = किसकिसे शरीर वाले; नशा किये हुए वेहोश रहने वाले; मैले फटे लत्ते लपेटे हुए और चिकने चिथड़े चिपकाए हुए दरिद्री रूप रहने वाले पतियों से प्रेम के स्थान सदैव घृणा किया करती हैं । वस वास्तव में वह तीर्थ गुरू अपनी स्त्रियों के सम्मुख नौकर चाकरसे जचा करतेहैं ॥

॥ मिथ्या-विश्वास ॥

हाय! इन्हीं पंडे पुरोहितों ने हिन्दुओं को मिथ्या बातों पर विश्वास करना सिखाकर दीन दुःखी और डरपोक बनादिया ! देखिये—

१—घर से बाहर जाते हुए कोई टोक दे या छींक दे तो बुरा होता है ॥

२—मंगल को मिलाप और बुद्ध को बिछोआ करना और शनिश्चर को घर छोड़ना अच्छा नहीं होता ॥

३—घर से निकलते समय दही व मछली व पानी का घड़ा सम्मुख से आजाना अच्छा होता है। पर खाली बरतन, काना बम्मन, नंगे सिर मनुष्य, रांड़ स्त्री का आना; छींक का होना; सांप और बिल्ली का इधर से उधर जाना यानी रास्ता काटना अच्छा नहीं होता है ॥

४—काना विप्र मिले मग माहीं। प्राण जांय कछु संशय नाहीं ॥
तीनकोसलों मिलैजोकाना। लौटिआयसोइजानोसयाना ॥

५—यदि एक काम के लिये दो सगे भाई व बाप बेटे व तीन ब्राह्मण जावेंगे तो वह काम पूरा नहीं होगा ॥

६—विदेश जाते समय दही खाना अच्छा पर दूध पीना बुरा होता है ॥

७—नवे दिन, मास, वर्ष लौटकर घर में आना अच्छा नहीं होता ॥

८—गङ्गा में नहाने से मुक्ति होती है ॥

९—जमना में गोता लगाने से जम का फन्दा छूटता है ॥

१०—राम कृष्ण शिवादि कहने से बैकुण्ठ मिलता है ॥

११—पत्थर की माता, देवी, महाविद्या, चामुण्डा पूजनेसे सुख मिलताहै ॥

१२—मुहूर्त्त दिखाये विना प्रदेश को जाना बुरा होना है ॥

१३—जन्मपत्र मिलाये विना विवाह करना अच्छा नहीं होता ॥

१४—मूलों में बालक के पैदा होने से बाप मर जाता है या कोई और रिश्तेदार दुःख पाता है। इस लिये पैदा हुए बालक को घर से बाहर फैंक देना अच्छा है। यदि न फैंका जावे तो उसका मुख मा बाप को आठ वर्ष तक न देखना चाहिये। साथ ही इस के मूल शान्त भी किये जाते हैं ॥

१५—ग्रहों की पूजा करने से मनुष्य सुख पाते हैं ॥
१६—मरे हुओं के नाम पर कुछ देनेसे उन मरे हुओं को मिल जाता है ॥
१७—मनुष्य का दूसरा ब्याह करते समय नव वधू की गर्दन में उसकी मरीहुई सौतके नाम पर सोने--चांदी--तांबा--पीतलकी एक पुतली बनवाकर लटका देना चाहिये । जिस से वह मरी हुई सौत नव वधू को कोई बाधा न पहुंचावे ॥
१८—गर्भवती स्त्री को अपनी देहली उलांघना बुरा होता है ॥
१९—ससुर को आठवें मास अपनी गर्भिणी पुत्र वधू के हाथ की कीहुई रोटी न खानी चाहिये ॥
२०—भादों सुदी चौथ को चांद देखनेसे कलंक लगता है ॥
२१—स्वप्न में चिट्ठी आती देखे तो मृत्यु होय । दो दीपक जले देखे तो पुत्र हो । एक दीपक देखे तो लड़की हो । जो मरे उस की तो आयु बढ़े पर दूसरा मरे । ग्रहण देखना अशुभ है । दही मांस वा फल खाना वा देवताओं को पूजना वा वेश्या को तथा स्वहागिनी स्त्री को देखना शुभ है । विधवा को देखना व नहाना अशुभ है ॥
२२—इतवार को जन्म होय तो पित्त देहवाला, सुन्दर, गम्भीर, चालाक और ६० वर्ष की आयु वाला होता है ॥
२३—सोमवार को जन्म होय तो विद्यावान्, चतुर, भोगी, भलेस्वभाव का और ६४ वर्ष की आयु का होता है ॥
२४—मंगल को होय तो धनी, कठोर, मूर्ख, नास्तिक और ७० वर्षका हो ॥
२५—बुद्ध को पठित, धर्मात्मा, आलसी, दर्शनीय सौ वर्ष का होताहै ॥
२६—बृहस्पति को पैदा होय तो पठित, धर्म्मात्मा, धनी, बड़े परिवार वाला ९० वर्ष का होता है ॥
२७—शुक्रके दिन पठित, धर्मात्मा, धनी, वातविकारवाला ६० वर्षका हो॥
२८—शनिश्चर के दिन पैदा होने से स्वार्थी, रागी, द्वेषी, जाति पतित और आयु १०४ वर्ष वाला होता है ॥

२९—यदि लड़की ज्येष्ठा में जन्म लेय तो जेठ मरे। मूल में होय तो श्वसुर मरे। अश्लेषामें होय तो सास मरे। विशाखामें देवर मरे। रेवती के प्रथम चरण में जेठ मरे। दूसरे चरण में श्वसुर मरे। तीसरे में सास मरे। चौथे में देवर मरे॥

३०—मनुष्यका दाहिना और स्त्री का बांया अंग (आंख हाथ आदि) फड़कना शुभ होताहै और इसके विरुद्ध अशुभ होता है॥

बस, कहांतक लिख सुनाऊं ? ऐसे अन्ध विश्वास तो अनगाणित फैलाये गये हैं॥

नोट ज्योतिषी लोग भी पंडे पुरोहितों के समान भारत को गारत करने वाले हैं। किसी ने सच कहा है। कि ॥ दोहा॥

गणिका गणक समान हैं, निज पचांग दिखाय।
पर धन पर मन हरन को, करते सदा उपाय॥

हे प्रिय पाठको! यदि समय ने सहारा दिया तो वह शीघ्रता से फलित मानने वाले और राहु केतु की दशा वताकर अनेक लोगों को ठगने वाले ज्योतिषियों के चरित्रों को "ज्योतिष दर्पण,, नामक पुस्तक में लिख दिखलाऊंगा॥ दान-त्यागी॥

इसी प्रकार स्वामी भास्करानन्द ने अपने रचेहुए "सांख्ययोग--- कर्म योग,, नामक पुस्तक के तीसरे पृष्टि पर लिखा है। कि—मिथ्या विश्वास जैसे श्राद्ध, तीर्थ, मंदिर वगैरहमें हजारों रुपयेका कुभोग, कुपात्रों को दान, भिक्षा—वृत्ति वेशधारी साधुओं के झुंड के झुंड और सांसारिक खराबी जैसे कि बालल्यादि (स्त्री अशिक्षण वगैरः) कुरुढी, मरण और विवाह वगैरह प्रसंगों में हजारों रुपयों का निकम्मा खर्च अनेक ज्ञाति उपज्ञाति, परदेश गमन का प्रतिबंध व्यर्थ छूछा वगैरह२ ऐसे ऐसे कारणों को लेके हिन्दू प्रजा अवनति के चक्र में आरही है॥

*** मूर्ख पण्डों को दान देने से यजमान नष्ट हो जाते हैं ***

देखिये! महर्षि पतंजलि जी महाराज ने महाभाष्य में लिखा है—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ माह।

सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतो पराधात् ॥१७७

अर्थ—उदात्तादि स्वर, श, प, आदि अक्षर, इन दोनों की वा एक की भी जिस मन्त्र के पाठ में अशुद्धि होती है वह मंत्र अपने अर्थ को त्याग कर वचन रूपी वज्र बन जाता है और यजमान का नाश कर देता है ॥

नोट—मेरे प्यारे हिन्दू भाइयो ! आप प्रत्येक तीर्थ स्थान के अनपढ़ (मूर्ख) पण्डों को, जो कि केवल एक संकल्प के बोलने में हीं बीसियों अशुद्धियां करते हैं, करोड़ों रुपयों का दान करते हो । पर क्या कभी इस उक्त मंत्र पर भी ध्यान धरते हो जो कि आप के नष्ट होने का एक बड़ा भारी कारण है । यदि नहीं तो अब इस पर भी विचार विचारिये और अपना नाश न होने के हेतु उन अशुद्ध उच्चारण करने वाले तीर्थ पण्डों को दान न दीजिये ॥ " मूर्खों को दान न दो " इस विषय को मैं " ब्राह्मण दर्पण-ईश्वर अर्पण " नामक पुस्तक में भले प्रकार दिखलाऊँगा ॥ दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी ॥

❀ उन्नीसवां-परिच्छेद ❀

॥ दान लेना और भिक्षा मांगना बहुत बुरा होता है ॥

सुनिये ! यजुर्वेद अ० ४० मं० १ में लिखा है कि इस जगत् में ईश्वर सर्वत्र व्यापक है । हे मनुष्य ! परमात्मा से जो दिया गया है उसी का तू भोग कर (भिक्षा व चोरी आदि अन्याय से) किसी के धन को ग्रहण मत कर । भावार्थ यह कि पुरुषार्थ से धनोपार्जन कर न कि भीख से । यथा—

ईशा वास्य मिद ५ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जी था मागृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१७८॥

शतपथ ब्राह्मण का० ११ प्र० २ अ० ३ में कहा है कि जो जन अपनेतईं को दीन दरिद्री बनाकर निर्लज्जतासे भिक्षा मांगताहै उसका पैर मौत के मुंह में है अर्थात् भीख मांगने वाला मरा हुआहै । यथा—

अथ यदात्मानं दरिद्री कृत्यैव अह्री भूत्वा ।

भिन्नते य एवास्य मृत्यो पादस्त मेव परिक्रीणाति ॥१७९

मनुस्मृति अ० ४ श्लो० १८६ में लिखाहै कि दान लेने में समर्थ हो तौ भी दान न लेवे क्योंकि दान लेनेसे ब्रह्म तेज नष्ट होता है । यथा-

प्रतिग्रह समर्थोऽपि प्रसङ्गन्तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८० ॥

मनुमहाराज ने तो दान न लेने के विषय में यहां तक कहा है कि भूख से पीड़ित दुःखित रहता हुआ भी विद्वान् ब्राह्मण दान कदापि न लेवे अर्थात् ब्राह्मण को उचित है कि भूख के दुःख को तो सहन कर लेवे किन्तु दान कदापि न लेवे । यथा—

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥ मनु अ० ४श्लो० १८७

क्योंकि दान लेना एक निन्दित, नीच, तुच्छ, हलका, खराब अर्थात् बहुत ही बहुत बुरा काम है । यथा—

१—प्रतिग्रहः प्रत्यवरः = देखो ! मनुस्मृति अ० १०श्लोक१०९॥
२—प्रापणात्सर्वं कामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ १८३॥

देखो ! तुलसी राम की तीसरी बारी मनुस्मृति पृष्टि १५० ॥

अत्रि ऋषि कहते हैं— प्रतिग्रह लेनेसे उत्तम ब्राह्मण भी ऐसे नष्ट होजाता है जैसे जल से अग्नि । यथा—

प्रतिग्रहेण नश्यंति वारिणा इव पावकः ॥ १८४ ॥

देखो ! अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक १४२ ॥

लोभ वश जो जन वहां (कुरुक्षेत्र पर) ग्रहण में दान लेते हैं उन को सौ करोड़ कल्पों तक भी मनुष्य जन्म नहीं मिलता । यथा—

ये तत्र प्रतिगृह्णंति नरा लोभ वशं गताः ।
पुरुषत्वं न तेषां वै कल्प कोटि शतै रपि ॥ १८५ ॥

देखो ! स्कन्द पुराणान्तर्गत श्रीबद्रीनारायण माहात्म्य पृ० १७ श्लो-४३

विष्णु स्मृति अध्याय ४ श्लोक ७ में लिखा है कि दान लेनेसे ब्रह्म तेज का नाश होजाता है । यथा—

प्रतिग्रहेण ब्राह्मणानां ब्राह्मंतेजः प्रणश्यति ॥ १८६ ॥

देखो ! दान प्रकाश पृष्टि ४७ श्लोक १२८॥

विष्णु स्मृति अध्याय ३ श्लोक ५९ में लिखा है कि निज आत्मा को जनता हुआ किसी से प्रतिगृह (दान) न लेवे । यथा—

प्रतिगृहं न गृह्णीयात्परेषां किं चिदात्मवान् ॥ १८७ ॥

नोट--प्रिय पाठको ! यदि आप को दान और भिक्षा ग्रहण निषेध पर सहस्रों प्रमाण देखनेहों तो मेरेरचे हुए "दानदर्पण ब्राह्मण अर्पण,, नामक पुस्तक को पढ़ियेगा ॥

——÷:+*+:÷——

दान न लेने के लाभ

प्रतिग्रह समर्थश्च यः प्रतिग्रहं वर्जयेत् ।
सदा तृलोक माप्नोति ॥ १८८ ॥

अर्थ—जो जन दान लेने का पात्र होनेपर भी दान नहीं लेता है उसको वह लोक मिलता है जो उदार चित्त दाता को मिलता है ॥

देखो वि. स्मृति अ० २ ।७ और दान प्रकाश पृ.९२—१४७

प्रतिगृह समर्थोपि ना दत्तेयः प्रतिगृहम् ।
य लोका दान शीलानां सतानाप्नोति पुष्कलान् ॥ १८९

अर्थ—जो दान लेने के योग्य हो और दान न लेवै उसको इतने लोक मिलते हैं जितने दान देने वाले को मिलते हैं ॥

देखो याज्ञवल्कि स्मृति अं० १ । २१३ और दा० प्र०पृ०५३।१४७

पातंजल योग दर्शन द्वितीय साधन पादे ३९ वां सूत्र बताता है—

अपरिगृहस्थैर्ये जन्म कथन्ता सम्बोधः ॥१९०॥

* अर्थ—सोरठा *

जो नर देय बिहाय, दान १ मान अभिमान कौ ।
फुर ताको होजाय२, अनुभव पूरव जन्म कौ ॥१९०॥

तात्पर्य्य—१ = दान का लेना

२ = ऐसाभी कहतेहैं—(सच ताहि होजाय)

हस्ताक्षर दामोदर–प्रसाद–शर्मा–दान–त्यागी मथुरा ।

* ओ३म्—खम्ब्रह्म *

॥ उपसंहार ॥

प्रिय वाचक वृन्द! तीर्थ क्या है? तीर्थ शब्द का धात्वार्थ क्या है? तीर्थ की निरुक्ती क्या है? और यथार्थ में तीर्थ के अर्थ क्या हैं? आप पढ़चुके हैं। पुराकालीन आर्य्य सन्तान तीर्थ किसे मानती थी, वह भी आप जानचुके हैं। पर वर्तमान काल में तीर्थ शब्द के श्रवण मात्र से ऐसे भावोत्पन्न होते हैं कि जिन के साथही रोमाञ्च खड़े होजाते हैं। इदानीं काल के तीर्थों में होते हुए अनाचार, अत्याचार, दुराचार और व्यभिचार आदि आदि का भयानक चित्र दृष्टि पड़ने लगता है। तीर्थों का भाव आत्मा शरीर और समाज पर कैसा पड़ता है? सो इस के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि सम्मुख दृष्टि पड़ता है। प्राचीन कालमें जहां भारद्वाज, अत्रि, कपिल, कणादि से योगी, ज्ञानी, तपस्वी, ऋषिगण पद्मासन बैठे हुए आत्म चिन्तन करते थे। गौ, सिंह, मृग मैत्री भाव से क्रीड़ा करते हुए मग्न रहते थे। अग्निहोत्र के धूमसे वृक्षलता धूसरित बनी रहती थीं। महाराज रामचन्द्र आदि भी बड़े नम्र भाव से उपदेश लेते थे। वह तीर्थ थे। पर उस धार्मिक काल में उन्हें भी कोई तीर्थ नहीं कहता था ॥

हाय--आज के दिन महान् पुरुषों के शयनस्थान, शौच स्थान, जन्म स्थान, मरण स्थान सभी तीर्थ हैं। उन के आहार विहार के सभी स्थान तीर्थ हैं। आलस्य ग्रस्त, भगवत विमुख, स्वार्थरत, मूर्खजन अपनी उदर दरीची की दारुण ज्वाला मिटानेके निमित्त—कल्पना सह-कारेण तीर्थानुगत नाम करण कर अबोध जनों को लुण्डन कर स्वाचरण बिगाड़ कर देश धर्म और समाजोन्नति का नाश कर रहे हैं ॥

आज के दिन सत्य, क्षमा, दया, दम, दान, ज्ञान, धृति, सन्तोष, ब्रह्मचर्य्य, प्रियवचन बोलना आदि आदि तीर्थ नहीं हैं। इडापिंगला नाड़ियों में प्राणायाम की विधिवत क्रिया कर अष्टांग योग की साधन

रूपी सीढ़ी पर चढ़ना तीर्थ नहीं है । श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज, जिनको हिन्दू लोग षाड़श कला पूर्ण भगवान कहते हैं, के वताये हुए—

आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्थाः, सत्योदकाशीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र !, न वारिणाशुद्ध्यतिचान्तरात्मा ॥

१९१॥ के अनुसार भी तीर्थ के मानने वाले नहीं हैं ॥

अब तो महात्मा जनों के कर्म क्षेत्र जीविका के द्वार, उद्यमों की फेक्टरीस (Factories) और मिथ्या भाषणों के दुर्ग बनगये हैं । और उन के भी ठेकेदार रूपी पण्डा गण अर्थलोलुप, इन्द्रियां सुखानु भवी, सत्यधर्म कर्म राहित, निराक्षर, निन्दनीय कर्म लिप्त, मद्यप, पामर, प्रखर वक्ता, पाखण्ड पूर्ण, प्रतिभा हीन होकर सत्य पथ = धर्म मार्ग को छोड़कर नद, नदी, सरोवर, सरिता, दारु, पाषाण, मृत्तिका, धातु आदि को ही तीर्थ मानकर मुक्ति का मार्ग बताते हैं । उन के हृदयान्धकार में अब इन शास्त्रिय वचनों का चिन्ह भी नहीं है ।

मनो विशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचां यमस्त्वि न्द्रिय निग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीर जानि स्वर्गस्य मार्गं प्रति वेद यन्ति ॥१९२॥

प्रिय पाठक गण ! इस आस्तिक आर्य्यावर्त्त देश में मिथ्या वादरूपी भयावनी भावनाओं के कारण से जो नास्तिक वाद फैला है उसे सभी जानते हैं ॥

इन तीर्थों के कारण से दरिद्र भारत और भी दरिद्रतर होता जाता है । अर्वों रुपया रेल में स्वाहा करना पड़ता है । फिर रेलों के परस्पर टकराने और अधिक भींड़ होने के कारण रोग फैलने से सहस्रों की मृत्यु अचानक ही होजाती है । आज कल तीर्थ स्थान हीं समस्त अत्याचार और अधर्मके केन्द्र स्थान बनरहे हैं । भ्रूण हत्याएं, गर्भपात, व्यभिचार मद्य मांस का बाहुल्यता से व्यवहार भी तीर्थ स्थानों में हीं होता है । भोग विलास का सिद्धि सदन तीर्थ स्थानों को ही कहना चाहिये । तीर्थ स्थानों में हीं स्वेत केश मधुरालाप करते हुए पितृवत गुरु गण पुत्री = बेटीं, भगनी और माता तक सम्बोधन करते हुए उन अबला

जनों से तन, मन, धन अर्पण कराते हुए उन के धर्म नाश करने में तनक भी संकुचित नहीं होते हैं ॥

इस ग्रन्थके लिखनेका तात्पर्य केवल एक यही है कि वर्त्तमान काले में जिनको तीर्थ कहा जाता है और जहां धन धर्म्म का नाश होताहै वह न हो और तीर्थके जो सत्यअर्थ हैं वह सभी परभली भांतिसे प्रगट होजावें॥

हस्ताक्षर वी० एन० शर्म्मा

* सम्पादक की अन्तिम प्रार्थना *

प्रिय पाठक गण ! सुनिये—

जैसा देखा शास्त्र में, वैसा किया प्रचार ।
मेरा मत कुछ है नहीं, लीजो यही विचार ॥

इस पुस्तक में मैंने केवल वोही वाक्य दिये हैं जो कि शास्त्रों और सज्जनों से लियेहैं। अपने मत मुताबिक यानी अपनी ओर से एक अक्षर भी नहीं लिखा । पर हां ईश्वर ने चाहा तो अपनी अनुमति को "ब्राह्मण दर्पण ईश्वर अर्पण"नामक पुस्तकमें लिख प्रकाश करूंगा ।

यह पुस्तक मैंने किसी का दिल दुखाने के लिये नहीं लिखा वरंन जगत् उपकार के लिये लिखा है । यदि इतनेपर भी कोई साहब अप्रसन्न होकर अपशब्द निकालेंगे तो मैं धीरधर प्रसन्नता पूर्वक सुन लूंगा क्योंकि मेरा यह सिद्धान्त है । कि— ॥ दोहा ॥

सत्य हेतु संकट परै, जायँ चहे वर मान ।
मन थिर ईश भरोस करि, लखे न शठ अपमान ॥

और सुनिये—   ॥ दोहा ॥

मैं यह निश्चय करि कहूं, सुनहु सकल दै कान ।
बिन त्यागे या कर्म*के, होइहि नाहिं कल्यान ॥

*कर्म=(जड़ वस्तुओं को पूजना और मूर्खों को दान देना)

और भी—

करत सबन सों बतकही, कहि सच्चे शुभ बैन ।
जा तीरथ दर्पण केर, पढ़ो वचन दिन रैन ॥

क्योंकि—

यहि तीर्थ दर्पण ग्रंथ को मनु लायके जो पढ़ै सुनै ।
तजि पक्षपात अनीति बैरहि सत्य को मन में गुनै ॥
करि सत्य साधन,मुक्ति को दमोदर परम पद पाइ हैं ।
मिथ्या अनीति अधर्म के जे भर्म ते मिटि जाइ हैं ॥

और भी—चौपाई——जो यह लेख पढ़ें धरि ध्याना ।
तिनके प्राण होंय कल्याना ॥

आन्तिम वाक्य=सोरठा

पढ़त थके नहि कोय, इमि कारण लिख लेख लघु ।
पाठक अर्पण सोय, आशय लेहु विचार मित ॥

॥ आरती ॥

जय जगदीश हरे । भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे ॥ जो ध्यावे फल पावे दुख विनशे मन का, सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटै तन का ॥ १ ॥ मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किस की, तो बिन और न दूजा, आश करूं जिस की ॥ २ ॥ तुम पूर्ण परमात्मा तुम अन्तर्यामी, परब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ ३ ॥ तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्त्ता, मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्त्ता ॥ ४ ॥ तुम हौ एक अगोचर सब के प्राणपति, किस विधि मिलूं गुसाईं, तुम को मैं कुमति ॥ ५ ॥ दीनबन्धु दुख हर्त्ता, तुम ठाकुर मेरे, अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥६॥ विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा, श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ७ ॥

शांतिपाठ—द्यौःशान्तिरन्तरिक्षᳪशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्ति-
र्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वᳪ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

॥ इति तीर्थदर्पण पण्डा अर्पण समाप्तम् ॥

॥ ओ३म्–खम्ब्रह्म ॥

मोक्ष प्राप्ति के नियम ॥

हे प्रिय पाठको ! यदि आप सुख से रहना और मोक्ष प्राप्ति करना चाहते हो तो निम्न लिखित महर्षि–नियमों पर चलियेगा —

(१)–सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

(२)–ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्यहै ॥

(३)–वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्य्योंका परम धर्म है ॥

(४)–सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागनेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५)–सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्यासत्य को विचार करके करने चाहिये ॥

(६)–संसार का उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देशहै अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नतिकरना ॥

(७)–सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्त्तना चाहिये ॥

(८)–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९)–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०)–सब मनुष्यों को सर्वथा विरोध छोड़कर सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालनेमें परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहैं ॥

दामोदर–प्रसाद–शर्मा–दान–त्यागी

२२ फोर्म = १६४ पेज.

* ओ३म्–खम्ब्रह्म *

पण्डा पुरोहितों का असली काम

यह है। कि–जिसने उन को कुछ देदिया तो उस का यश ऐसा लगतेहैं कि चक्रवर्ती राजा से भी अधिक ऐश्वर्य धारी और राजा से भी विशेष महरानी बना देते हैं और यदि कुछ न मिला तो बांध देते हैं और स्थान २ पर बुराई करते फिरते हैं ॥

सोरठा– दान लेत हरषात, करि विनती बहु भांति सों
जो न मिलत विलखात, शत्रु समझ गाली बकत

नरेन्द्र-छन्द { दें जजमान दान मनमानो यदि उन कहं न रिझावे
आशिर्वचन सुफल के बदले लाखन गारी पावे

पण्डित दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्यागी

मन्त्री–गंगासालिगराम पुस्तकालय मथुरा की बनाई हुई—

पुस्तकों की सूचना ॥

१–बाल विधवा विवाह शास्त्र सम्मति क्यों नहीं ?
२ बाल विधवा विवाह शास्त्र सम्मति अवश्य है
३–भिक्षा–ग्राही–कुलीन–दर्पण
४–भोजन–विचार ....
५–दानदर्पण - ब्राह्मणअर्पण प्रथम भाग } छपरहे हैं.
६–दानदर्पण–ब्राह्मणअर्पण द्वितीय भाग }
७–दानदर्पण–ब्राह्मणअर्पण त्रितीय भाग
८–ब्राह्मणदर्पण–ईश्वरअर्पण } शीघ्र छपेंगे.
९–सीतला दर्पण (पूजा निषेध) }
१०–तीर्थदर्पण–पण्डाअर्पण — —

ता. १–१–१९१० से " दान–दर्पण " नामक एक मा- पत्रभी निकलैगा ॥ पुस्तक मिलने का पता–ठिकाना-

☞ श्रीदत्त–शर्म्मा

पास = दामोदर–प्रसाद–शर्म्मा–दान–त्या

सीतला—पाइसा मथुरा